बाधाओं का तथा उन बाधाओं को पार करने अथवा उनसे बचने के उपायों का ज्ञान भी होना चाहिए। इस के अतिरिक्त गुरु को अपने मत का तात्विक ज्ञान भी उच्च कोटि का होना चाहिए, जिससे वह अपने शिष्य के मन की शकाओ का समाधान कर सके एवं उनके हृदय में विश्वास और श्रद्धा स्थापित कर सके। एक सच्चे गुरु में उच्चकोटि के धार्मिक संस्कार तथा जीवन मे नैतिक आदर्श भी होने उतने ही आवश्यक है। मध्यकालीन संत सम्प्रदायों में जिस प्रकार एक गुरु से इन सारे विशिष्ट गुणों की अपेक्षा की जाती थी उसी प्रकार गुरु द्वारा शिष्यत्व प्रदान करने के पूर्व अपने शिष्य की परीक्षा कर लेना भी आवश्यक समझा जाता था। शिष्य के पूर्ण रूप से योग्य प्रमाणित होने के पश्चात् ही गुरु के रहस्य को समझने का वह अधिकारी माना जाता था। सद्गुरु वही है जो उच्च कोटि के व्यक्तित्व वाला पुरुष हो तथा जिसका जीवन सच्चाई पर आधारित है, जिसकी वाणी और व्यवहार में एकरूपता हो जिसके स्वभाव तथा आचरण में प्रेम एवं करुणा झलकती हो।

गुजरात के वेदांती कवि अखा ने अपनी वाणी मे सदगुरु के सम्बन्ध में अनेक उक्तियाँ कही हैं। मनुष्य का अज्ञान तभी दूर होता है जब उसे सद्गुरु की प्राप्ति होती है। सद्गुरु की कृपा से ही शिष्य के चंचल मन में स्थिरता आती है:—

ए अंध धंध त्यारे टले, ज्यारे गुरु गम होए खरी
ब्रह्मवेत्ता मले ज्यारे, त्यारे मन बेसे ठरी ॥

सदगुरुनुं महात्मय ५

परन्तु सद्गुरु की खोज करते समय ध्यान में रखना चाहिए कि वह स्वयं गुणवान हो एवं अध्यात्म के मर्म को जानने वाला हो। अखा की इस विषय में उक्ति यह है:—

गुण गोई ते गुरु ने शोध्य, जे गुरु आपे तत्वनो वोध;
परले वलग्यो हींड अंध, आंख्यालो नव वलगे खंध ॥

जड़ भक्ति अंग २८३

यदि इस जीवन में ज्ञान के पिपासु को ज्ञानी सदगुरु प्राप्त हो जाय तो अन्तर के कपाट खोल देता है और ईश्वर इस संसार में ही दीख सकता है। जैसा कि अखा ने कहा है—

सद्गुरु जो उघाड़े वार, सखा हरि दीसे संसार।

खलज्ञानी अंग २७०.

ज्ञानी कवि बूटिया ने भी गुरु का महत्व स्वीकार करते हुए कहा कि जिसे ब्रह्म ज्ञानी गुरु संसार मे मिल जाता है उसका जीवन सार्थक ही समझो:—

ब्रह्मवेत्ता गुरू जेने मले वूटीया,
नर देंही ए ज अने अभय पद पामे ।

उमी प्रकार गोपाल ने भी सद्गुरू के गुणों की प्रसंशा करते हुए लिखा है कि गुरू विश्व के व्यापक रूप को तथा ब्रह्म के रूप को हमें समझाता है । एक गुरू अनेक गुणों से युक्त होता है:—

व्यापक विश्व ओलखावे राम
ए ब्रह्मवेता मोहोटां तेनां काम ।
कीधा एक-गुरूना गुण वहु
भेद मती हुं क्यांहां लगी कहुं ॥

कडखुं ३ पंक्ति ३१।३६

गुजराती ज्ञानी कवि नरहरि ने गुरू के प्रति अपार श्रद्धा प्रकट करते हुए यहाँ तक कहा है कि गुरू के चरणों में शीश नवाकर ज्ञान प्राप्त करना चाहिए तथा जिम देश में तत्वज्ञानी न रहते हों वहाँ तो प्रवेश भी नहीं करना चाहिए । अर्थात् ब्रह्मज्ञान के जिज्ञासु के लिए सद्गुरू का कितना महत्व है इसका प्रमाण कवि की इन पंक्तियों में प्राप्त होता है:—

आत्मविचार गुरू थी पामीय सद्गुरु चरणं शीस नामीय,
तत्वज्ञानी होय जांहां नीश्चे रघूपत्य जावूं त्याँहां ।
साधू वृक्ष रहीत जे देश त्यांहांना करवो क्यमि परवेशु ।

वतएनुसार गीता ३२।३३

गुजरात के सत कवियों की तरह राजस्थान के संतों की वाणी भी गुरू की महिमा के गुणगान से भरपूर हैं । सदगुरु की आवश्यकता, सद्गुरु का कार्य सद्गुरु के गुण आदि तत्वों का विस्तृत उल्लेख संत कवियों की वानी में सर्वत्र प्राप्त होता है । राजस्थान के प्रमुख संत दादू दयाल ने जो स्वयं अनेक शिष्यों के वहुश्रुत गुरू थे, गुरु के महत्व को वतलाते हुए अनेक पद लिखे हैं । सद्गुरु की कृपा से परमात्मा का साक्षात्कार मन ही मन हो जाता है । उसके लिए न वन में जाने की आवश्यकता है और न किसी प्रकार का क्लेश सहन करने की । इस सम्बन्ध में दादू ने अपने अनुभव व्यक्त किये हैं:—

वा घरि रह्या ना वनि गया, ना कुछ कीया क्लेस ।
दादू मन ही मन मिल्या, सतगुरु के उपदेश ॥

गुरूदेव को अंग १०.

अन्तर में छाया हुआ भ्रम का परदा गुरु की कृपा मिले तो अपने आप दूर हो जाता है:—

दादू पड़दा भरम का, रह्या सकल घटि छाइ।
गुरू गोविंद कृपा करे, तो सहजे ही मिटि जाइ॥
वही ११.

परन्तु दादू ने साथ-साथ यह भी चेतावनी दी है कि संसार में झूठे गुरू भी बहुत होते हैं जिनके मुख में राम होता है और मन मोह माया में फँसा रहता है।

झूठे अंधे गुर घणे, भरम दिढ़ावे काम।
बन्धे माया मोह सों, दादू मुख सों राम॥
वही २५.

संतों ने अपनी मानव सुलभ दुर्बलताओं को सदा सचाई से स्वीकार किया है। गुरू के बार-बार समझाने पर भी माया मोह में, फँसे जीव को ज्ञान प्राप्त नहीं होता तब उसे इसका पश्चाताप होता है। इस विषय में संत गरीबदास की अभिव्यक्ति उल्लेखनीय है :—

माया मोह मांहि लपटायो, साधु संगति नहिं आयो।
हेत सहित हरिनाम न गायो, विष अमरित करि खायो॥
सद्‌गुरु बहुत भाँति समझायो, सब तज चित नहिं लायो।
पद २.

कुम्हार जिस प्रकार मिट्टी को ठोक-ठोक कर बर्तन बनाता है उसी प्रकार गुरु भी बार-बार शिक्षा देकर शिष्य को योग्य बनाता है। इस सम्बन्ध में सत रज्जब की उक्ति उद्‌धृत की जा सकती है:—

ज्यूँ माटी कूँ कूटे कुँभार, त्यूं सत्‌गुरू की मार विचार॥
पद २३.

तथा:–गुरु ग्याता परजापती, सेवक माटी रूप।
रज्जब रज सूँ फेरिके घड़ि ले कुंभ अनूप॥
साखी १६.

संत वपनाजी ने गुरू को उस वैद्य की उपमा दी है जो शिष्य को रामनाम की औपधि देकर उसके सारे दु:ख दूरकर देता है:–

राम नाम जिन ओपदी सत्‌गुरू दई बताई।
ओषदि खाइर पछि सहै, वपना वेदन जाई॥
साखी ३.

संत पुरुप के लिये सद्‌गुरू की प्राप्ति भाग्य की सबसे बड़ी सफलता है। इससे उसे जितना आनन्द होता है उतना और किसी से नहीं। स्वामी सुन्दरदासजी ने आनन्द के ऐसे ही एक स्वानुभव की अभिव्यक्ति इन शब्दों में की है:——

खोजत खोजत सद्गुरु पाया। भूरि भाग्य जाग्यो शिष आया।
देखत दृष्टि भयो आनन्दा। यह तो कृपा करी गोविन्दा॥

ज्ञान समुद्र ६.

संत की दृष्टि में गुरू का स्थान कितना ऊँचा है इसका प्रमाण सुन्दरदास के इस कथन में प्राप्त होता है। वे कहते हैं कि गुरू के दर्शन करके उन्हें मोक्ष प्राप्ति सा संतोष होता है:—

गुरु को दरसन देखते, शिष पायो संतोष।
कारय मेरौ अव भयो, मन माँहि मान्यो मोष॥

ज्ञान समुद्र ७.

संत के मन में गुरू के प्रति आदर एवं श्रद्धा की चरम सीमा तो तव प्रकट होती है जव सुन्दरदास यह कहते हैं कि गुरू की महिमा का वर्णन करना मैं चाहता हूँ परन्तु क्या करूँ जिह्वा तो एक ही है सो लाचार हूँ:—

सद्गुरू महिमा कहन को, मैं बहुत लुभाया।
मुख में जिह्वा एक ही ताते पछिताया॥

सद्गुरू महिमा निसांनी २०.

इस प्रकार सत के जीवन में सद्गुरू की ज्ञान प्राप्ति के लिए आवश्यकता गुरू के प्रति श्रद्धा एवं प्रेम की भावना तथा गुरू के प्रभाव से जीवन की सार्थकता की उक्तियाँ राजस्थान के तथा गुजरात के भी संत कवियो में समान रूप से मिलती है।

नाम स्मरण:—

संत मत की साधना में सुमिरन अथवा नाम स्मरण को वहुत अधिक महत्व दिया गया है। नाम स्मरण का महत्व सगुण सम्प्रदायों में भी किसी रूप में कम नहीं है परन्तु वहाँ इसके साथ-साथ पूजा, अर्चना, भजन, कीर्तन आदि का उपासना में सहारा लिया जाता है। जब कि निर्गुण सम्प्रदाय मे नाम स्मरण ही साधना में सर्वश्रेष्ठ साधन माना गया है। उस अनन्त ईश्वर के नाम का निरंतर सुमिरन करते रहने से संसार के सब पातक अपने आप नष्ट हो जाते हैं। कवीर के अनुसार राजस्थान के तथा गुजरात के संतों ने भी सुमिरन के लिए राम नाम को स्वीकार किया है। संतों ने राम शब्द का प्रयोग ब्रह्म के अर्थ में ही किया है। नाम स्मरण का अर्थ संतमत की साधना में मुख से केवल नाम रटन ही नहीं है। सुमिरन का अभ्यास योग साधना द्वारा किया जाता है। सुमिरन करते समय संत साधक को न तो हाथ में माला ग्रहण करने की आवश्यकता होती है और नहीं उसे नाम का मुख से वार-वार रटन ही करना पड़ता है। सुमिरन एक प्रकार की ध्यान की अवस्था होती है जिसमें वह राम के नाम का अन्तःकरण मे स्मरण करते-करते उसी में तल्लीन हो जाता है।

कबीर के मतानुसार सुमिरन की अवस्था साधक की एक ऐसी दशा है जिसमें वह वाल प्रभाव से विरक्त होकर अपने अन्तर को भगवान की सुरति के साथ मिला देता है। ऐसी अवस्था में नेत्र के पट खुल जाते हैं। कबीर का यह दोहा उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है:—

सुमिरन सुरति लगाइ के, मुख ते कछू न बोल।
वाहर के पट देइ के, भीतर के पट खोल॥

सं वा. सं पृ. ६६.

सुमिरन का अभ्यास करते-करते साधक क्रमशः उस अवस्था तक पहुंच जाता है जहाँ उसे मुख से नाम स्मरण करने की आवश्यकता नहीं रहती। वह एक ऐसी तन्मयता की दशा होती है जब कि अन्तःकरण वाह्य जगत् से हटकर परमात्मा मे ही केन्द्रित हो जाता है और भीतर ही भीतर राम नाम की रटन लगाया करता है। इस अवस्था का मुख्य आधार प्रेम की भावना होती है। जो उसे परमात्मा के प्रति आकर्षित करती रहती है। इस प्रेम की प्रबलता के कारण साधक का रोम-रोम अपने प्रियतम इष्ट के मिलन की कामना किया करता है; सुमिरन जीवन की एक सहज क्रिया बन जाती है। संत दादू दयाल का कथन इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है:—

अन्तर्गति हरि हरि करे, मुख हाजति नांहि।
सहज धुन्न लागी रहै दादू मन ही मांहि॥

सं. वा. सं. भा. १ पृ. ४४.

निर्गुण सम्प्रदायों में सुमिरन की यह अवस्था मुक्ति की अवस्था ही है। हृदय का राम-मय अथवा ब्रह्म मय हो जाना साधना की बहुत बड़ी सफलता है। प्रेम की जव उसे लौ लगती तव आत्मा परमात्मा में लय हो जाता है। यह लय होने की अनुभूति मोक्ष की अनुभूति है।

राजस्थान के संत कवि दादू ने उस जीव को अपराधी कहा है जिसके मुख से राम नाम को छोड़ और कुछ निकलता हो। ऐसे जीव का तीनों लोक में कहीं भी स्थान नहीं रहता। दादू के शब्दों में यह भाव इस प्रकार व्यक्त हुआ है:—

राम तुम्हारे नांव बिन, जे मुख निकसे और।
तो इस अपराधी जीव को तीनि लोक कत ठौर॥

सुमिरण को अंग ३

साधक उस घड़ी की प्रतीक्षा करता रहता है जब कि उसका मन सुमिरन करते हुए राम में एकाकार हो जाय। यह तभी सम्भव हो सकता है जब कि

मन के सब विकार दूर हो जायें तथा मन नितांत निर्मल हो जाय। इस प्रकार दादू ने सुमिरण के द्वारा मन का निर्मल होना बतलाया है।

दादू का जाणौं कब होइगा हरि सुमिरण इकतार।
का जाणों कब छोड़िहै यह मन विषे विचार॥

वही पद ८.

जब सुमिरन की अवस्था में संत साधक होता है तब उसके अन्तर विरह की ज्वाला प्रज्वलित होती है और परमात्मा से मिलने एवं उसके मुख से वचन सुनने की तीव्र अभिलाषा होती रहती है। संत गरीबदास ने इस सम्बन्ध में अपनी अनुभूति व्यक्त की है :—

जब-जब सुरति आवती मनमें तब-तब विरह अनल परजारे।
नैननि देखों वैन सुनों कबु यहु वेदन जिय मारे॥

पद ४.

संतों ने उपासना की अन्य समस्त रीतियाँ नाम स्मरण के आगे तुच्छ बतलाई हैं। उनके अनुसार भेष धारण करना तीर्थ यात्रा, व्रत रखना दान पुण्य करना आदि पाखंड हैं रज्जब की पंक्तियाँ इस विषय में उल्लेखनीय हैं:—

नाम बिना नाहीं निसतारा। और सबै पाखण्ड पसारा॥
भरम भेद तीरथ व्रत आसा। दान पुन्य सब गल के पासा॥

पद ६.

सन्त वषनाजी ने मन को गर्व छोड़कर राम का सुमिरन करने का उपदेश दिया है। इससे जीवन और मरण दोनों सार्थक होते है। वषनाजी की युक्ति इस प्रकार हैं :—

वषना सुमिरी राम नैं, मन को गर्व गमाइ।
जीवत जगि सोभा घणी, मुवा मुक्ति लिधाइ॥

साखी ३०.

संत मत में नाम स्मरण ही मुक्ति प्राप्त करने का एक मात्र उपाय है इस तथ्य की पुष्टि वषना के उपरोक्त कथन से हो जाती है।

राम का नाम ही मोक्ष दाता है इस बात की पुष्टि संत सुन्दरदास की उक्ति से भी होती है। एक साधक कोसुमिरन में जितना संतोष प्राप्त होता है उतना और कहीं नहीं होता। सुन्दर दास का पद इस सम्बन्ध मे उद्धृत है:—

सुमिरन ही में शील है, सुमिरन में सन्तोष।
सुमिरन ही में पाइये सुन्दर जीवन मोष॥

सुमरण को अंग ५.

साधना के समस्त योगो का शिरोमणी नाम स्मरण योग है। इसी को संतों ने शब्द योग भी कहा है। अपने सद्गुरू के द्वारा दिये गये इस मन्त्र पर सुन्दर दास को पूर्ण विश्वास है:—

सुन्दर सद्गुरू यों कह्या, सकल सिरोमनि नाम।
ताकों निसदिन सुमरिये, सुखसागर सुखधाम॥
वही १.

संत दरिया साहब (मारवाड वाले) ने नाम स्मरण के महत्व को समझाते हुए कहा है कि इस के आगे धर्म की सब क्रियायें तथा शास्त्रों का ज्ञान भी फीका पड़ जाता है। नाम का प्रकाश सूर्य के प्रकाश के समान है जिसके सम्मुख शास्त्र ज्ञान का दीपक मंद पड़ जाता है। दरिया साहब का कथन इस प्रकार है:—

राम बिना फीका लगे. सब किरिया सास्तर ग्यान।
दरिया दीपक कह् करे, उदय भया निज भान॥
सुमिरन का अंग १.

नाम स्मरण में प्रेम का प्रधान स्थान है। मन की मलीनता प्रेम के साबुन और राम नाम के जल से धोने पर दूर हो जाती है तथा मन निर्मल हो जाता है। संत दरिया के शब्दों मे:—

दरिया आतम मल भरा, कैसे निर्मल होय।
साबन लागे प्रेम का, राम नाम जल धोय॥
सुमिरन का अंग ८.

मीरां के काव्य साहित्य में भी ऐसे अनेक पद प्राप्त होते हैं जिन पर संत मत का प्रभाव परिलक्षित होता है। ऐसे स्थानों पर मीरां ने राम के नाम का महत्व स्वीकार किया है। नाम स्मरण का गुण मीरां ने अनेक पदों में गाया है, उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियां उद्धृत की जा सकती है:—

जाको नाम निरंजन कहि. ताको ध्यात धरुँगी हो।
× × × ×
या तन की मैं करूँ कींगरी, रसना नाम रटूँगी हो।
पद ५७२.

गुजराती वेदांती कवि अखाने नाम स्मरण के महत्व को स्वीकार करते हुए राम के नाम का जाप करने की वात कही है। अखाने कहा है कि राम कहाँ है? इस के रहस्य को समझकर उसके नाम का स्मरण करना चाहिए।

रूडयो राम क्यां रहे रे, एनो जपवो जाणी ने जाप।
अक्षर ए उपजे छे क्यांथी, तो शोधी स्वामी ने स्थाप॥
अखानां पद ३१.

अपने मुख को राम का नाम स्मरण करने का बोध अखाने दिया है क्योंकि, वह अनन्त है उसका कभी नाश नहीं होता। अखा के शब्दों में कहें तो:—

अधर राम ओलखो रे जेनो नहिं कोई काले नाश।
त्यां दश चोवीश अनन्त उपजे हेला सेज कला नुं हास्य ॥

वही पद २८.

गुजराती कवि बूटिया ने ज्ञानी सत के लक्षण बतलाते हुए जिन गुणों की अपेक्षा उसमें की है उनमें ध्यान तथा नाम स्मरण की आवश्यकता की ओर भी निर्देश किया है। इस सम्बन्ध में बूटिया की पंक्ति यहाँ उद्धृत है :—

ध्यान धारणा नाम निरंतर, व्यापक आतम चिन्या रे हो।
सुरत नुरत करे धमण धमावी, काम कोयलाने वान्या रे हो ॥

बूटिया के पद

गुजराती ज्ञानी कवि नरहरि ने भी नाम सुमिरन को महत्व दिया है। नाम स्मरण का उल्लेख करते समय उसने इष्ट को हरि के नाम से स्मरण किया है जिससे उस पर वैष्णव धर्म का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। नीचे की पंक्ति के उदाहरण से इस तथ्य की पुष्टि होती है:—

हरी जोतां होये अत्यन्त प्रसन अहरु पहरु धाये नहीं मेन।
हरी शरण मन निश्चल थैं रहे ते हरि हरी निरंतर केहे ॥

पद २३.

नरसिंह मेहता वास्तव में परम वैष्णव भक्त थे जैसा कि हम इस के पूर्व वैष्णव कवियों के विभाग में देख चुके हैं परन्तु उन के कुछ पद उन पर संत मत के प्रभाव को भी स्पष्ट बतलाते है। ऐसे एक पद मे नरसिंह ने नाम की महिमा की ओर संकेत किया है जो इस प्रकार है :—

नाम अमूल्य मारा गुरू ए बताव्युं,
ने ते तो चोट्युं छे मारे हैये।

पद ६८.

सुमिरन की ध्यानस्थ अवस्था मे नरसिंह को परमात्मा के साक्षात्कार का अनुभव हुआ। इस अनुभूति के आनन्द को कविने इन शब्दों में व्यक्त किया है।

सांभल सैयर सुरता धरीने आजमैं एने दीठो रे।
जे दीठो ते दीठा जेवो, अमृत पे अति मीठो रे ॥

पद ६७.

राजस्थान तथा गुजरात के इन कवियों की रचनाओं से उद्धृत पंक्तियों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि साधना मे नाम स्मरण को सब सतो ने तथा

वेदाती कवियों ने समान महत्व दिया है। संतमत के जिन सिद्धान्तो की यहाँ हमने चर्चा की है वे इस साधना मार्ग के प्रमुख सिद्धाँत ही कहे जा सकते है। परन्तु इनके अतिरिक्त अनेक ऐसे तत्व है जो इस मार्ग की साधना के आधार माने गये है और जिनका पालन संतमत के अनुयायी नियमित रूप से अपने जीवन मे करते रहते है। उदाहरणार्थ सहज ज्ञान अथवा सहज भाव एक ऐसा ही तत्व है! **सहज ज्ञानी:**—सहज का तात्पर्य साधकी सहजावस्था से है उपासना में सर्व प्रथम इसकी आवश्यकता का अनुभव किया कबीर ने। ईश्वर की प्राप्ति के लिए क्रिया, कर्मकाण्ड, तीर्थयात्रा, व्रत उपवास आदि की आवश्यकता उतनी नही है जितनी मन की पवित्रता, अन्तकरण की निर्मलता तथा अविरत प्रेम की है। तिलक माला धारण करना तथा विशिष्ट प्रकार के वेष धारण करना केवल आडबर है। साधक जब तक मोह, माया,मद, लोभ आदि का त्याग नही करता और जब तक चित को इस ब्रह्म के ध्यान में केन्द्रित नही करता तब तक केवल बाह्याचार के द्वारा अपने इष्ट को कभी प्राप्त नही कर सकता। मोह माया आदि विकारों का त्याग कर पवित्र तथा निर्मल मन इष्ट के अस्तित्व का अनुभव करना ही साधक की सहजावस्था अथवा सहजज्ञान है। यह एक ऐसा अलौकिक अनुभव होता है जिसका वर्णन स्वयं संत भी शब्दो में नही कर सकता। जो बात केवल दर्शन के ज्ञान अथवा वितर्क से प्राप्त नही होती वह साधक को सहज ज्ञान की अवस्था मे अनायास प्राप्त हो जाती है। इस मे ध्यान तथा चितन की आवश्यकता अवश्य होती है। दादू ने सहजावस्था का वर्णन इन शब्दों मे किया है। इनके अनुसार सहज एक सरोवर है जिसमे प्रेम की तरंग लहराती है और उसमे मन सांई के संग झूलता रहता है:—

दादू सरवर सहज का, तामें प्रेम तरंग।
तहँ मन झूले आतमा, अपने सांई संग॥

वानी ज्ञान सागर पृ. ४ प. ७०

दादू के अनुसार ही भ्रम के भेद को भूलकर चित्त मे जब चैतन्य का ध्यान धरते हैं तक इष्ट का दर्शन सहज ही होता है।

भरम भेद सब भूलिया, चेतन चित लाया।
पारस सूँ परचा भया, उनि सहजि लखाया॥

शब्द २२.

राजस्थान के सत सुन्दरदास ने इस सम्बन्ध मे कहा है कि मैंने न तो हिन्दू मार्ग को अपनाया न मुसलमान के मार्ग को ही। किन्तु मुझे सहजावस्था मे राम और अल्लाह दोनों एक ही दृष्टि गोचर हुए हैः—

हिन्दू की हदि छाड़िकें, तजी तुरक की राह।
सुन्दर सहजै चीन्हियां, एकै राम अलाह ॥

सहजानन्द २.

गुजराती वेदांती कवि अखा ने सहजावस्था के आनन्द का वर्णन अपनी वाणी में यत्रतत्र किया है। मन जब ब्रह्म के ध्यान में लीन हो जाता है तब वह अगोचर भी गोचर हो जाता है। तन और मन में सहजज्ञान का उद्भव होता है।

तिहां हवुं मन लेलीन, जई चैतन्य सभर भयुं ए;
नहिं को दाता दीन तन मन सहजें सज थयुं ए ॥

६.

कहे अखो आनन्द अभुवो ने लेहेवा तणो ए
एहवो पूर्ण परमानन्द नित्य साराऊं अति घणो ए। ८.

परचुरण पद १४६.: अखानी वाणी:

सहज ज्ञान के अतिरिक्त वैराग्य, विरह तथा मुक्ति भी ऐसे तत्व हैं जिनका उल्लेख संतो की वाणी में प्राप्त होता है। वैराग्य के सम्बन्ध में संतों के विचार से मन का वैराग्य ही सच्चा वैराग्य है। वैराग्य का वाह्य आडंबर आवश्यक नहीं होता। संसार के क्षणिक सुखों के प्रति मन में स्वाभाविक विरक्ति होना सच्चा वैराग्य है। इसके लिए घरवार छोड़कर वन में जाने की आवश्यकता नहीं होती। गुजराती ज्ञानी कवि अखाने इस विषय में स्पष्ट कहा है।

जै वैराग देखाड़ करी ए तो मन केरो मश्करी
पलके पलके पलटे ढंग ए तो अखा माय्याना रंग।

तथा ज्यां उपजे साचो निर्वेद नोहे अखा त्यां भेदाभेद।

वैराग्य अंग २६, २७.

विरह संत साधना का एक प्रमुख अंग है। साधक परमात्मा के प्रेम में सदा तल्लीन बना रहता है। उससे मिलने की व्याकुलता में अहर्निश नाम का स्मरण करता रहता है। संत साधक की एक मात्र अभिलाषा आत्मा को परमात्मा में विलीन करने की रहती है। दादू ने राम के वियोग में व्यथित हो लिखा है।

पीव के विरह वियोग तन की सुधि नहीं हो।
तलफि तलफि जिव जांई मृतक हैरही हो ॥

पद ४६.

रज्जवजी ने लिखा है:—

राम बिन सावण सह्यो न जाइ।

पद १४.

अथवा मोक्ष के सम्वन्ध में यह उल्लेखनीय है कि संतो ने कभी वैष्णव भक्तों की तरह ईश्वर से मोक्ष की याचना नहीं की। उनके लिए सहजानन्द की अनुभूति ही मुक्ति की अवस्था है। ध्यानावस्था में साधक को अथवा संत को प्रभु से मिलने की अनुभूति होती है। एक अलौकिक आनन्द का साक्षात्कार होता है। वही मुक्तावस्था है।

इस प्रकार गुजरात तथा राजस्थान के संत कवियों की वाणी से हमें उसकी साधना एवं उनके प्रमुख सिद्धाँतो का सुन्दर परिचय प्राप्त होता है। इस सम्बन्ध में दोनों प्रदेशों के संतों की विचारधारा एवं उपासना पद्धति में समानता दृष्टिगोचर होती है जो उन के समान प्रभाव एवं समान भावों का प्रमाण है।

चतुर्थ परिच्छेद

भक्ति एवं संतमतान्तर्गत विभिन्न सम्प्रदाय

चतुर्थ परिच्छेद—

भक्ति एवं संत मतान्तर्गत विभिन्न सम्प्रदाय

जहाँ तक भक्तिमार्ग तथा संत मत के सम्प्रदायों की स्थापना तथा प्रचार-प्रसार का सम्बन्ध है, राजस्थान तथा गुजरात दोनों प्रदेशों की स्थिति में थोड़ा अन्तर रहा है। गुजरात के मध्यकाल के वैष्णव भक्तों मे से अधिकांश ऐसे हुए हैं जिन्होंने स्वतन्त्र रूप से भगवान की उपासना की है अर्थात् वे किसी सम्प्रदाय विशेष के अनुयायी नहीं हुए। किन्तु इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं कि यहाँ सम्प्रदाय हुए ही नहीं। हमारे आलोच्यकाल की प्रथम दो शताब्दियों में वैष्णव भक्ति का प्रभाव गुजरात में अत्यधिक रहा हैं, समस्त भारत में उस समय भक्ति-आन्दोलन प्रचलित था, यह तो सर्वविदित है। विशेषत: दक्षिण भारत में वैष्णवमार्गी विभिन्न प्रसिद्ध सम्प्रदाय अपने-अपने प्रवर्तकों के मार्गदर्शन में भक्ति का प्रचार करने में सलग्न थे, गुजरात पर तत्कालीन आचार्यो में से सर्वाधिक प्रभाव वल्लभाचार्य तथा रामानन्द का पड़ा था। गुजरात के पश्चिमी समुद्र तट पर स्थित द्वारिकाधीश प्राचीन काल से ही समस्त भारत के वैष्णव भक्तों का तीर्थधाम रहा है, इसके अतिरिक्त जूनागढ़ के समीप गिरनार की पर्वतमालाएं भारत के सिद्ध साधु-सन्तों की तपोभूमि के रूप में शताब्दियों से प्रसिद्ध रही हैं, इसीलिए संत-भक्तों का आवागमन यहाँ सतत होता रहा है। गुजरात के भक्तजनों पर वैष्णव भक्ति के प्रभाव का मुख्य कारण इन सन्त-पुरुषों का सत्संग था। स्वयं वल्लभाचार्य का सं० १५६५ के पूर्व गुजरात मे तीन बार आगमन हो चुका था और सं० १५८५ में पुन: वे द्वारिका की यात्रा के लिए आये थे[1]। उधर कबीर के पद और उनकी निर्गुण भक्ति का प्रसार भी गुजरात में पर्याप्त मात्रा में हो चुका था। ब्रजभाषा के अष्टछाप के कवियों में से कृष्णदास स्वयं गुजरात के निवासी

१—गुजराती साहित्यनुं रेखादर्शन—श्री के० का० शास्त्री पृ०—६२

थे, बंगाल के कवि शिरोमणि जयदेव के गीतगोविन्द ने भी गुजरात के कृष्ण भक्त कवियों को अत्यन्त प्रभावित किया था। इस काल में अर्थात् १६वीं शताब्दी में अनेक कृष्ण भक्तों ने वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्गी सम्प्रदाय में दीक्षा लेकर शिष्यत्व ग्रहण किया था किन्तु हमारे आलोच्य विषय में अधिकांशतः ऐसे थे जो किसी सम्प्रदाय विशेष से प्रत्यक्ष रूप से संलग्न नही थे। उन पर वल्लभाचार्य सम्प्रदाय का अथवा रामानन्दी विचारधारा का अप्रत्यक्ष प्रभाव अवश्य पड़ा था, ये स्वतंत्र रूप से काव्य में अपनी भक्ति भावना की अभिव्यक्ति करते थे, जहाँ तक वैष्णव धर्म की व्यापकता का सम्बन्ध है गुजरात में लगभग प्रत्येक प्रमुख नगर में एवं कस्बों में वैष्णव मन्दिर आज भी विद्यमान है, इनमे द्वारिकाधीश के प्रसिद्ध मन्दिर के अतिरिक्त जनागढ़ के दामोदर का मन्दिर तथा डाकोर का मन्दिर वैष्णवों के प्रमुख केन्द्र है।

गुजरात में ज्ञानाश्रयी चिन्तनधारा का दर्शन हमें पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दी के वैष्णव भक्तों के काव्य में अंशतः होता है परन्तु वास्तव में वेदान्ती भक्ति का अर्थात् निर्गुणपंथी उपासना का उदय यहाँ बाद में हुआ है, नरसिंह, भालण, मीरां प्रभृति सगुण, वैष्णव भक्तों की रचनाओं में भी हमें निर्गुण ब्रह्म की उपासना के प्रति समान भाव एवं उदार दृष्टि का परिचय अवश्य मिलता है किन्तु निर्गुणोपासना का जो व्यापक प्रभाव सत्रहवीं शताब्दी में और उसके पश्चात अखा, गोपाल, बूटियो इत्यादि कवियों की रचनाओं में दृष्टिगोचर होता है वह इसके पूर्व नहीं। गुजरात मे वैष्णव भक्तों की तरह निर्गुण भक्त भी स्वतन्त्र रूप से उपासना करने वाले हुए हैं। यही कारण है कि यहाँ गुजरात में हमें सम्प्रदायों का प्रचार राजस्थान की तुलना के में कम मिलता है, यहाँ के वेदान्ती कवियों की विचारधारा पर रामानन्द तथा कबीर के सिद्धान्तों का प्रभाव पड़ा।

कबीर नरसी के समकालीन थे तथा नरसी के जीवनकाल में ही कबीर की प्रसिद्धि गुजरात में हो चुकी थी[1]। यहाँ के निर्गुणोपासकों पर दक्षिण के सन्तो का प्रभाव भी बहुत अधिक रहा है, दक्षिण भारत मे नामदेव तथा ज्ञानदेव की ज्ञानमयी साधना चतुर्दिक प्रसारित हो रही थी। गुजराती भक्तों तथा सन्तों की रचनाओं पर भी दक्षिण भारतीय संतों की विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। गुजरात के अनेक नगरों में कबीर मन्दिर तथा साधु-संतों की गद्दियां आज भी विद्यमान हैं, परन्तु इस पंथ में दीक्षित कोई साधु-कवि या महान् प्रवर्तक के रूप में

१—गुजराती साहित्यनुं रेखा दर्शन—श्री के० का० शास्त्री पृष्ठ—८०

प्रसिद्ध हुआ हो, ऐसी सम्भावना नहीं है। जिस समय भारत में नाथ-सिद्धों का अत्यधिक प्रभाव था उस समय गुजरात के कच्छ प्रदेश में नाथ सम्प्रदाय के प्रमुख केन्द्र थे। जूनागढ़ के पास गिरनार में भी बड़े-बड़े सिद्ध पुरुष तप-साधना के लिए निवास करते थे। गिरनार की तराई में आज भी प्रति वर्ष कार्तिक सुदी ११ तथा शिवरात्रि के दिन बडे भारी मेले लगते हैं जिसमें देश-देश के विभिन्न भागों से साधुओं का आगमन होता है। इससे इस प्रदेश के जन समुदाय पर नाथ सिद्धों के परम्परागत प्रभाव की पुष्टि होती है। इसके अतिरिक्त जामनगर में प्रणामी सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र है, स्वामी प्राणनाथ जी द्वारा प्रसारित इस सम्प्रदाय का एक मन्दिर 'खीजड़ा मन्दिर' के नाम से यहाँ विख्यात है। कबीर मत के अनुयायी तथा निर्गुण उपासना के महान् प्रवर्तक संत दादू दयाल की जन्मभूमि भी गुजरात ही मानी गई है, यद्यपि उन्होंने धर्मोपदेश तथा पंथ स्थापना राजस्थान में की। सारांश यह है कि गुजरात के निर्गुण मत के सम्प्रदायों की स्थापना एवं प्रसार एकाध पंथ को छोड़कर विशेष नहीं हुआ है, परन्तु संत मत का प्रभाव यहाँ के भक्त जनों पर पर्याप्त पड़ा है इसमें कोई सदेह नहीं। निर्गुण भक्ति के सम्प्रदायों में से कबीर पंथ का प्रचार गुजरात में अधिकांशत: हमारे अलोच्यकाल के पश्चात् हुआ है. वर्तमान समय में भी गुजरात तथा सौराष्ट्र के कई नगरों में कबीर मन्दिर हैं तथा गुजरात की अनेक जातियों के लोग इनके भक्त भी हैं, इनमें से सूरत का कबीर मन्दिर सबसे प्राचीन माना जाता है यहाँ जितने निर्गुण पंथी लोक संत हुए हैं वे विशेष रूप से अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी में ही हुए हैं। हमारे आलोच्य विषय के निर्धारित समय में वे नहीं आते, इसीलिए प्रस्तुत निबन्ध में उनकी चर्चा नही की गई है।

राजस्थान मे संत सम्प्रदायों की स्थापना तथा प्रचार गुजरात की तुलना में अधिक हुआ है, रामानन्द तथा कबीर की विचार परम्परा को यहाँ के जन सम्प्रदाय ने भी ग्रहण किया। वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग तथा रामानुज एवं निम्बार्काचार्य की सगुण भक्तिमार्ग ने भी यहाँ के जन मानस को सिक्त किया। किन्तु जैसा कि हम इसके पूर्व देख चुके हैं, सोलहवी शताब्दी में राजस्थान में निर्गुण भक्ति के सम्प्रदायों का जितना प्रचार हुआ उतना वैष्णव भक्ति का नहीं। यद्यपि मीरां, कृष्णदास, पयहारी, प्रभृति कवि सगुण भक्ति में ही प्रवृत्त थे, तथापि इस काल में यहाँ निर्गुण भक्ति के सम्प्रदायो का जितना व्यापक प्रसार हुआ उतना सगुण सम्प्रदायो का नहीं। निर्गुण पंथों में दादूपथ, विश्नोई सम्प्रदाय, निरजन सम्प्रदाय, लालदासी पन्थ इत्यादि विभिन्न सम्प्रदाय यहाँ स्थापित हुए एवं व्यापक रूप मे प्रसारित भी हुए।

प्रस्तुत परिच्छेद में हम इन दोनों प्रदेशो में प्रचलित विभिन्न सम्प्रदायों के सम्बन्ध मे अलग-अलग विचार करेंगे। सुविधा के लिए भक्ति के समस्त सम्प्रदायो को जो हमारे आलोच्यकाल में यहाँ प्रचलित थे, हम सगुण तथा निर्गुण के दो विभागो मे विभाजित कर सकते है।

दादू पंथ:—

इस पंथ के प्रवर्तक संत दादूदयाल थे, राजस्थान एवं गुजरात दोनी से इनका निकट सम्बन्ध रहा है, इस सम्प्रदाय का नाम पहले ब्रह्म सम्प्रदाय अथवा परब्रह्म सम्प्रदाय था। किन्तु कालान्तर मे दादू के नाम से ही सम्प्रदाय प्रसिद्ध हुआ, दादू के जीवन चरित्र के सम्बन्ध मे विस्तृत विचार कवि परिचय के प्रकरण मे किया गया है इसलिए यहाँ केवल उनके सम्प्रदाय एव सिद्धातों पर ही प्रकाश डालने का प्रयास करेंगे। परन्तु दादू के जन्मस्थल के विषय मे विद्वानो मे बहुत मतभेद है इसलिये उसका किंचित् विचार यहाँ करना आवश्यक प्रतीत होता है। पंडित सुधाकर द्विवेदी ने इनका जन्मस्थान जौनपुर बतलाया है, जब कि हिंन्दी के अधिकाश विद्वानों के विचार से इनका जन्म गुजरात के अहमदाबाद नगर मे हुआ था। डॉ० रामकुमार वर्मा, पं० पशुराम चतुर्वेदी तथा डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, प्रभृति विद्वानों ने उनका जन्मस्थान अहमदाबाद ही स्वीकार किया है। गुजराती के प्रसिद्ध विद्वान् श्री के० का० शास्त्री ने भी दादू का जन्म अहमदाबाद होना स्वीकार किया है। दादू के शिष्य जनगोपाल ने दादू के जीवन चरित्र मे भी इस बात की पुष्टि की है, दादू पंथ के अनुयायी भी उनका जन्म-स्थान अहमदाबाद ही मानते हैं। एक किंवन्दती के अनुसार वे साबरमती मे बहते पाये गये थे और लोदीराम नामक ब्राह्मण ने उन्हे ले जाकर पालन पोषण किया। परन्तु डा० मोतीलाल मेनारिया ने इनके अहमदाबाद मे जन्म लेने की बात को भावुक भक्तों की कल्पना कहा है। उनके मतानुसार दादू का जन्म म भर अथवा उसके आसपास किसी ग्राम मे हुआ है[1]। दादू की वाणी में राजस्थानी के साथ साथ गुजराती के रूप भी मिलते हैं। अत: गुजरात से इनका सम्बन्ध होने की संभावना नितात असंभव नही हो सकती। सारांश यह है कि दादू के जीवन का गुजरात तथा राजस्थान दोनों से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है, चौदह वर्ष की अवस्था मे ही ये राजस्थान की ओर चले गये तथा वही एक संत के रूप में प्रसिद्ध हुए।

१— राजस्थान का पिंगल साहित्य—डा० मोतीलाल मेनारिया पृ०—१८३

कबीर पंथ के अनुसार दादू सम्प्रदाय में भी ईश्वर की उपासना निर्गुण ब्रह्म के रूप में की जाती है। जातिगत भेद-भाव को मिटाकर सहज भाव से निराकार ब्रह्म की साधना करने का उपदेश दादू ने अपने अनुयायियों को दिया है, इस सम्प्रदाय की स्थापना सम्वत् १६११ में हुई और दादू के जीवनकाल में ही इसका बहुत व्यापक प्रचार राजस्थान में और बाहर भी हो चुका था। इनके अनेक शिष्य बने जिनमें से १५२ प्रधान शिष्य माने जाते हैं। दादू का देहोत्सर्ग नराणा मे हुआ था, और यही दादू पंथ का मुख्य केन्द्र है, इसे दादू-द्वारा भी कहते हैं। कबीर की भाँति दादू ने भी उपासना में आत्मानुभूति एवं सहज भक्ति पर विशेष जोर दिया है। संकुचितता, भेदभाव तथा बाह्याडंबर की अनावश्यकता के प्रति दादू ने निर्देश किया है, परन्तु कबीर एवं दादू की उपदेश पद्धति में अन्तर है। दादू ने अपना विरोध सदा विनम्रता से, प्रेम से तथा सरलता से प्रकट किया है, कबीर की भाँति उन्होंने वाणी के कठोर प्रहार के द्वारा खंडन नहीं किया। दादू ने सरलता से एवं प्रेमपूर्वक अपनी वाणी म अपनी स्वानुभूति, शाश्वत सत्य एवं परम तत्व की सहज रूप से अभिव्यक्त की है[1]। दादू पंथ में मूर्ति पूजा पर विश्वास नहीं किया जाता। ईश्वर की उपासना निराकर, निर्गुण ब्रह्म के रूप में की जाती है, वैष्णव पंथों की भाँति कंठी, तिलक इत्यादि आचार धर्म के उपादानों को दादू पंथ में निरर्थक समझा जाता है, सहज रूप से किये गये ध्यान तथा नाम स्मरण को ही उपासना का श्रेष्ठ साधन माना जाता है। दादू की रचनाओं में प्रेम भक्ति की जो उत्कृष्ट अभिव्यक्ति मिलती है, वह सम्भवत: सूफीवाद का प्रभाव लक्षित करती है। मुसलमान होने के नाते वे तत्कालीन सूफी फकीरों के सत्सग में आये हों ऐसा सम्भव है[2]। दादू निर्गुण भक्त थे किन्तु उनकी साधना में प्रेम का जो उत्कृष्ट स्वरूप देखा जाता है वह सगुणोपासना की भक्ति से किसी भी प्रकार कम नहीं है। शुद्ध निर्गुण भक्त होते हुए भी सगुण-निर्गुण के प्रति दादू का दृष्टिकोण समन्वयात्मक था। सगुण निर्गुण के विवाद को निस्सार बतलाते हुए दादू ने नाम स्मरण को ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण बतलाया है उदाहरणार्थ दादू की ये पक्तियाँ उद्घृत हैं:—

सरगुन निरगुन वे रहै, जैसा तैसा लीन्ह।
हरि सुमिरन लव लाईए, का जानों का कीन्ह॥

दादू की बानी भाग-१ पृ०-१८

कबीर की भाँति दादू ने भी हिन्दू मुसलमान के भेदभाव को संकुचितता एवं

१—राजस्थानी भाषा और साहित्य—डॉ० हीरालाल माहेश्वरी पृ०—८४
२—निर्गुण साहित्य- सांस्कृतिक पृष्ठभूमि—डॉ० मोतीसिंह पृ०—१३१

पाखण्ड माना है। दादू पन्थ में हिन्दू मुस्लिम तथा छूत अछूत के भेद की सीमा से ऊपर उठ कर मानव मात्र के लिये भक्ति के द्वार खुले रहते है। यही कारण है कि दादू के शिष्यों में समस्त वर्गो के लोगों को समान स्थान प्राप्त हुआ है। उसमें हिन्दू भी थे, मुसलमान भी थे तथा समाज की निम्न जाति के लोग भी थे। इस प्रकार जातिगत तथा धर्मगत भेदभाव को निरर्थक बतला कर दादू ने अपने सम्प्रदाय के द्वारा हिन्दू मुसलमान की एकता का तथा निम्न जातियों के उद्धार का स्तुत्य प्रयास किया है।

दादू पंथ मे भक्त और परमात्मा के बीच अद्वैतभाव की अनिवार्यता को बहुत अधिक महत्व दिया जाता है। इस अभिन्नता के भाव का विकास करने का उपदेश दादू ने अपने अनुयायियों को दिया है। इसके लिए भक्त को अपने अहंभाव का त्याग करके इष्ट के चरणों मे सर्वस्व समर्पण कर देना चाहिए। दादू ज्ञानमार्गी सन्त कवि थे। तथापि उन्होंने अपने सिद्धान्तों को समझाने के लिए खडनात्मक वृत्ति का सहारा नही लिया। उन्होंने सरलता एव प्रेम के बल पर अपने मत का प्रतिपादन किया है। दादू ने अपनी सहानुभूति के द्वारा प्राप्त सत्य को ही सत्य माना है। परानुभव की बाते उन्होंने स्वीकार नही की। इसीलिए परमात्मा तथा परम सत्य के सम्बन्ध में दादू की अभिव्यक्ति बहुत मार्मिक हो सकी है। दादू पन्थ में ईश्वर को सर्व व्यापक सत्य के रूप मे देखा गया है। सहज भक्ति से एवं प्रेम पूर्ण दृष्टि से उसे विश्व में सर्वत्र देखा जा सकता है। उस परब्रह्म मे तादात्म्य स्थापित करने के लिये भक्त को आत्मसमर्पण करने की आवश्यकता होती है[1]।

दादू पन्थ मे गुरु का स्थान ऊँचा है। बिना सतगुरु की शिक्षाके भक्त को ईश्वर की प्राप्ति कभी नही हो सकती। गुरु के महत्व तथा 'गुरु के प्रति श्रद्धा के सम्बन्ध में दादू और कबीर के विचारों में बहुत साम्य है। स्वय दादू ने अपनी रचनाओं में कबीर का उल्लेख बड़ी श्रद्धा के साथ किया है। दादू के गुरु का नाम वृद्धानन्द बताया जाता है, और ये वृद्धानन्द कबीर की शिष्य परम्परा के ही एक सन्त माने जाते है परन्तु इनके जीवन वृत्त के सम्बन्ध मे कोई प्रामाणिक जानकारी नही दीगई। सम्भव है गुरु का यह नाम परब्रह्म का ही कल्पित नाम हो। दादू के गुरु के सम्बन्ध में यह भी कहा गया है कि वे सहज रूप से विचरण करने वाल है और उनका कोई

१—निरमें नाउं हेत हरि दीजइ, दरसन परसन लाल।
दादू दीन लीन करि लीजे, मेटहु सब जंजाल॥

दादूदयाल की बानी—भाग २, पृ०—५६,

ठौर ठिकाना नहीं है[1] । दादू पन्थ में परब्रह्म को ही आदि गुरु माना गया है। इसीलिये इस पन्थ का नाम पहले परब्रह्म रखा गया था । वास्तव में दादू इस पंथ भेद तथा धर्म भेद को निरर्थक मानते थे। उन्होंने इस बात की स्पष्ट घोषणा करदी थी कि राम और अल्लाह में कोई भेद नहीं है । जब प्रकृति मनुष्य-मनुष्य के बीच में भेद भाव नहीं रखती तो हम क्यों वैसा करके उस परम सत्य के खंड करें । भिन्न भिन्न धर्म और पक्ष बनाकर हम ब्रह्म के ही टुकड़े करते हैं[2] । दादू ने तथा उनके अनुयायी संतों ने ब्रह्म को सृष्टि में सवत्र एक समान रूप में देखा है, उस तत्व की उपमा एक ऐसे सरोवर से की है जिसमें निरंजन पानी है और मन मीन है तथा प्रेम की तरगें सदा लहराती रहती हैं । दादू पन्थ में ब्रह्म को राम सहज शून्य, परम पद, निर्वाण इत्यादि अनेक नाम दिये हैं ब्रह्म और जगत के परस्पर सम्बन्ध के विषय में दादू ने तथा उनके शिष्यों ने सर्वात्मवाद के सिद्धान्त को स्वीकार किया है । अर्थात् ब्रह्म जगत्मय है और जगत ब्रह्ममय है, इस तथ्य को सुन्दरदास ने इन शब्दों में स्पष्ट किया है:—

> जगत कहें ते जगत हैं सुन्दर रूप अनेक ।
> ब्रह्म कहे ते ब्रह्म हैं, वस्तु विचारे एक ।।
>
> सुन्दर ग्रन्थावली--आत्मानुभव को अंग- पद

दादू के महान ओजस्वी व्यक्तित्व ने तथा उनके सरल एवं उदात्त दृष्टिकोण ने बहुत बड़े जनसमुदाय को आकर्षित एवं प्रभावित किया । उनके मत को स्वीकार करने वाला अनेक शिष्य बने ! जैसा कि इसके पूर्व उल्लेख किया जा चुका है, उनके १५२ प्रधान शिष्य हुए जिनमें से १०० शिष्य एकान्तवासी थे । शेष ५२ शिष्यों ने भिन्न-भिन्न स्थानों में दादू मत का प्रचार किया तथा उनकी परम्परा को आगे बढ़ाया। परवर्ती काल में दादू सम्प्रदाय पाँच विभिन्न शाखाओं में विभक्त हो गया । यद्यपि इन पाँच सम्प्रदायों के नाम विभिन्न रखे गये तथापि सम्प्रदाय के मूल सिद्धातों में एवं दादू के प्रति उनके सन्मान एवं श्रद्धा में कोई अन्तर नहीं पड़ा । इन पाँच शाखाओं के नाम इस प्रकार है:—

१—खालसा २—नागा ३—विरक्त ४—खाकी ५—उत्तरागढ़ी ।

---

1. उत्तरी भारत की संत परम्परा—श्री परशुराम चतुर्वेदी पृ०–४३६
2. खंडि खंडि ब्रह्म को, पखि पखि लीया बाँटि ।
   दादू पूरण ब्रह्म तजि, बँधे भरम की गाँठि ।।
   दादूदयाल की बानी—साँच को अंग पृ.—१६२

डॉ० मोतीलाल मेनारिया[1] ने तथा स्वामी मंगलदास जी[2] ने केवल चार शाखाओं नाम दिये हैं, डॉ० मेनारिया ने अपने ग्रन्थ राजस्थानी भाषा और साहित्य में उत्तराढ़ी नाम नहीं दिया शेष वे ही हैं जब कि दूसरे ग्रन्थ राजस्थान का पिंगल साहित्य में 'खाकी' नाम निकाल दिया है तथा उत्तराढ़ी के बदले उत्तराध्वी नाम दिया है। पं० परशुराम चतुर्वेदी[3] डॉ० रामकुमार वर्मा[4] तथा डॉ० हीरालाल माहेश्वरी[5] ने पाँच शाखाओं मे परस्पर सैद्धान्तिक कोई मतभेद नहीं है, जो अन्तर है वह रहन-महन एवं स्थान भेद ही है। इन पाँचों शाखाओं के अनुयायी नराणा के दादू द्वारा को अपने सम्प्रदाय का मुख्य केन्द्र मानते हैं। दादू के प्रमुख ५२ शिष्यों की गद्दियाँ है वहाँ उनके थाँभे बने हैं जो उनके नाम से प्रसिद्ध हैं। उपरोक्त पाँच शाखाओं की अलग-अलग विशिष्टताएँ हैं।

खालसा:—

दादू पन्थ की प्राचीन गद्दी नराणा में हैं। उसके उत्तराधिकारियों की शाखा खालसा शाखा कहलाती है। अन्य शाखाओं के अनुयायियों में इस शाखा के प्रति विशेष सम्मान है, इसके अनुयायी पहले कटि-वस्त्र, टोपी और चोला पहनते थे परन्तु अब कोट, धोती तथा साफा पहनते हैं। अध्ययन, अध्यापन की ओर विशेष रुचि रहती है। जयपुर में स० १६७७ से एक दादू महा-विद्यालय चल रहा है जिसका संचालन खालसा शाखा के द्वारा होता है।

नागा:—

इस शाखा के प्रवर्तक दादू के शिष्य सुन्दरदास थे। इस शाखा का एक स्थान (थांभा) नराने में भी है तथा अन्य सात थांभे जयपुर राज्य के आसपास के शाखों में हैं। इसके अनुयायी वस्त्र बहुत सादे पहनते है और एक दूसरे से मिलने पर सतनाम कहकर अभिवादन करते है। नागा शिष्य शस्त्र चलाने मे तथा युद्धविद्या मे बहुत कुशल होते है। अंग्रेजो के शासनकाल में ये जयपुर राज्य की सेना में सेवा करते थे। आजकल ये लोग अधिकांशत: खेती और व्यापार करते हैं।

विरक्त:—

विरक्तशाखा के अनुयायी वैरागी साधु होते है। ये कभी एक स्थान पर रहते

१—राजस्थानी भाषा और साहित्य तथा राजस्थान का पिंगल साहित्य— डॉ० मोतीलाल मेनारिया।

२—दादू सम्प्रदाय का संक्षिप्त परिचय—स्वामी मंगलदास जी।

३—उत्तरी भारत की संत परम्परा—पं० परशुराम चतुर्वेदी।

४—हि० सा० का० आ० इतिहास—डा० हीरालाल माहेश्वरी।

५—राजस्थानी भाषा और साहित्य—डॉ० हीरालाल माहेश्वरी

नहीं हैं। शरीर पर केवल एक कापाय वस्त्र धारण करते हैं तथा हाथ में कमन्डल रखते हैं। रुपये पैसे या धन का स्पर्श नहीं करते और भिक्षा पर अपना निर्वाह करते हैं। ये हमेशा घूमते रहते हैं और चातुर्मास में जब एक स्थान पर ठहरना पड़ता है तब नित्य एक बार दादू वाणी का पाठ करना इनका नियम होता है। विरक्त साधु अधिकांश टोली में निकलते हैं अकेले नहीं और गृहस्थ अनुयायियों को उपदेश देते हैं।

खाकी:—

खाकी साधु शरीर पर भस्म लगाये जमात में घूमते रहते हैं। विरक्त साधु की भाँति ये भी कभी एक स्थान पर ठहरते नहीं। इनका विश्वास होता है कि पवित्र जीवन जीने के लिए साधु को हमेशा भ्रमण करते रहना चाहिए। ये शरीर पर बहुत कम वस्त्र धारण करते हैं और जटा भी बढ़ाते हैं। खाकी साधु शारीरिक साधना भी करते हैं।

उत्तराढ़ी—

डॉ० मोतीलाल मेनारिया ने इस उपसम्प्रदाय का नाम उत्तराधा दिया है। उनके मतानुसार जो दादू पंथी राजस्थान को छोड़कर उत्तर में पंजाब की ओर चले गये और अपने पंथ का प्रचार करने लगे वे उतराधा शाखा के कहलाये[1]. इनका मुख्य केन्द्र हिसार जिले का रमिया गाँव है। इस शाखा के अधिकांश अनुयायी दिल्ली, पटियाला, हिसार, रोहतक इत्यादि स्थानो मे होते हैं। ये लोग वैद्यक तथा लेन-देन का काम करते हैं। इस उप-सम्प्रदाय की एक शाखा गोपालदास जी ने हरिद्वार में की थी। इस शाखा के मूल प्रवर्तक बनवारी लाल अथवा रज्जबजी माने जाते हैं[2]।

इस प्रकार दादू पंथ का प्रचार राजस्थान तथा उसके उत्तर में अर्थात पंजाब, दिल्ली, हरिद्वार इत्यादि स्थानों में हुआ। दादू के प्रमुख शिष्य उत्तराधिकारी हुए। इनके अतिरिक्त बनवारीजी, जनगोपाल, रज्जबजी, जगजीवन भी परम्परा मे थे। गुजरात में दादू के सम्प्रदाय की स्थापना नहीं हुई परन्तु गुजरात के संत भक्तों पर कबीर पंथ तथा प्रणामी संप्रदाय के अतिरिक्त जिन संत सम्प्रदायों का प्रभाव पड़ा है उनमें से दादू पंथ भी एक मुख्य सम्प्रदाय है[3]।

प्रणामी सम्प्रदाय:—

जिस प्रकार दादू सम्प्रदाय राजस्थान का प्रमुख सम्प्रदाय रहा है उसी प्रकार

---

१. राजस्थान का पिंगल साहित्य—डॉ० मोतीलाल मेनारिया पृ०-१८०
२. उत्तरी भारत की संत परंपरा—पं० परशुराम चतुर्वेदी पृ०-४१७
३. वैष्णव धर्म नो संक्षिप्त इतिहास—श्री दुर्गाशंकर के० शास्त्री

गुजरात में संत सम्प्रदाय के रूप में प्रमुख स्थान प्रणामी सम्प्रदाय को दिया जा सकता है । इस पंथ के मूलसंस्थापक देवचन्द्रजी अथवा निजानन्द जी थे परन्तु इसका व्यापक प्रचार उनके शिष्य स्वामी प्राणनाथ जी ने किया है । इसलिये सम्प्रदाय के मुख्य प्रवर्तक इन्हीं को माना जाता है । इस सम्प्रदाय का प्रचार सौराष्ट्र, गुजरात के अतिरिक्त पन्ना बुन्देलखण्ड में भी हुआ है । निजानन्द स्वामी प्राणनाथ के गुरु थे । मूलत: वे मथुरा के निवासी थे परन्तु उनका देहोत्सर्ग जामनगर में हुआथा । जब कि स्वामी प्राणनाथ का जन्म जामनगर में हुआ था । उनके पिता खेमजी यहां के धर्मी जमींदार थे ।

प्रणामी सम्प्रदाय को धामी सम्प्रदाय तथा सौराष्ट्र में खीजड़ा सम्प्रदाय भी कहते हैं । डा० रामकुमार वर्मा के मतानुसार जो शिष्य स्वयं प्राणनाथ जी से दीक्षित हुए और जो जाति-पाँति के भेदभाव को नहीं मानते, वे प्रणामी कहलाते है और प्राणनाथ जी के अनुसार अनुयायी जो जाति-पाँति के भेदभाव मानते हैं वे धामी कहलाते है[1] । खीजड़ा सम्प्रदाय नाम खीजड़ा नामक वृक्ष पर से पड़ा होना चाहिये, इस नामका वृक्ष जामनगर में स्वामी निजानन्द जी की समाधि के पास है जो प्राणनाथ जी के नाम महाराज ठाकुर पर से पड़ा है । मैराज महाराज का ही अपभ्रंश ज्ञात होता है ।

विभिन्न जातियों में भेद भाव मिटाकर एकता स्थापित करने का प्रयास तो प्राणनाथ से पूर्व कबीर तथा उनके समकालीन संतो ने भी किया था, परन्तु विभिन्न धर्मों का गहन अध्ययन कर उनमे से सैद्धान्तिक एकता को ढूँढ़कर प्रमाणित करने का कार्य स्वामी प्राणनाथ ने किया । ईसाई, यहूदी, पारसी, हिन्दू इत्यादि विभिन्न धर्मों के ग्रन्थो का अध्ययन व अवलोकन कर उन्होंने अपने ज्ञान का बहुत विकास किया था । प्राणनाथ ने बचपन से ही अपने घर का त्याग कर दिया था और साधु महात्माओं के साथ भारत के विभिन्न प्रदेशों में भ्रमण करते रहे । अपने भ्रमण-काल मे उन्होंने हिन्दी, संस्कृत, फारसी, अरबी आदि भाषाओं का अध्ययन भी किया तथा भारत में बसे हुए भिन्न-भिन्न धर्मावलाम्बयों के धर्म ग्रन्थों का मनन भी किया । भारत के विभिन्न धर्मों के बीच समन्वय स्थापित करने का उनका प्रयत्न श्लाघनीय थी ।

प्राणनाथ के गुरु और प्रणामी सम्प्रदाय के आदि संस्थापक निजानन्द जी ने भी विविध धर्मों का अध्ययन करने के उद्देश्य से देश में यात्रा की थी । वे भ्रमण

१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा पृ० -२७६

वस्तुत: प्रेम-पन्थ ही था। प्रेम को उन्होंने परमात्मा का पूर्ण स्वरूप माना है। मूर्ति पूजा पर ये विश्वास नहीं करते परन्तु इनके अनुयायी माला और तिलक आवश्यक लगाते हैं। इस पन्थ के अनुयायियों के लिए मांस मदिरा तथा जातिवाद का निषेध किया गया है। इनके अनुयायी सत्यनामी कहलाते है। ध्यान और नाम स्मरण के द्वारा जो अलौकिक आनन्द की अनुभूति होती है उसी को ये ईश्वर का परम पद अथवा परमधाम मानते हैं। इसी के आधार पर इनके सम्प्रदाय का नाम धामी पन्थ भी पड़ा। अर्थात् प्रेम भक्ति के द्वारा इस सम्प्रदाय में ईश्वर के परम-धाम की प्राप्ति की जाती है। इस सम्प्रदाय में जाति भेद अथवा धर्म भेद को कोई स्थान नहीं है। हिन्दू, मुसलमान तथा ऊँच नीच सभी वर्ग के लोग एक साथ वैठ कर भोजन कर सकते हैं। पन्ना बुन्देलखण्ड में, तथा गुजरात में, जामनगर में प्रतिवर्ष एक बार इस सम्प्रदाय के मन्दिरों में बड़ा भारी उत्सव मनाया जाता है। उस अवसर पर पन्थ के सभी अनुयायी बहुत बड़ी संख्या में एकत्रित होते हैं। इस अवसर पर भजन, कीर्तन, महात्माओं के उपदेश तथा समूह भोजन के कार्यक्रम होते हैं। इस सम्प्रदाय के अनुयायी नेपाल में भी है। प्राणनाथ एकेश्वरवादी थे। उनके सम्प्रदाय के मुख्य अंग सन्नीति, चरित्र शुद्धि, परोपकार, मानव सेवा, दया इत्यादि हैं[1]।

जैसा कि इसके पूर्व उल्लेख किया जा चुका है गुजरात मे इनके दो मुख्य केन्द्र हैं। जामनगर और सूरत। जामनगर के आस-पास के गांवों में तथा गुजरात भर में इस पन्थ के अनुयायी बहुत बड़ी संख्या में हैं। गुजरात की पाटीदार, कायस्थ, वनिया, राजपूत, भाट, सुनार, दरजी, गोलाराज तथा कोली जातियों में इस सम्प्रदाय का प्रचार बहुत अधिक है[2]।

स्वामी प्राणनाथ ने लगभग २४ ग्रन्थों की रचना की है, आकार में अधिकांश ग्रन्थ छोटे-छोटे हैं। इन ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं:—

१—कलजमें शरीफ	५—प्रकाश ग्रन्थ
२—कयामता नामा	६—षट् ऋतु
३—कलस	७—सम्बन्ध
४—रास ग्रन्थ	८—किरतन

१—मध्य युगकी साधना धारा—श्री क्षितिमोहन सेन पृ०—८०

२—हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय-डा० पीताम्बरदत्त वड़थ्वाल पृ०—१३४

९—खुलास	१७—ब्रह्म बानी
१०—खेलवात	१८—बीस गिरोहों का बाब
११—प्रकरण इलाही दुल्हन	१९—बीस गिरोहों की हकीकत
१२—सतार सिंगार	२०—प्रेम पहेली
१३—बड़े सिंगार	२१—तारतम्य
१४—सिंधि भाषा	२२—राज विनोद
१५—मारफत सागर	२३—विराट चरितामृत
१६—प्रकट बानी	२४—पदावली

इन ग्रन्थों में से "कलजमें शरीफ" इस पन्थ का धर्म ग्रन्थ है, सम्प्रदाय के केन्द्र स्थानों में प्रस्तुत ग्रन्थ की पूजा की जाती है। इसमें विभिन्न धर्म-ग्रन्थों के सार तत्व को प्रस्तुत करते हुए एक समन्वयात्मक मार्ग का निर्देश किया गया है। इम्पीरियल गजेटियर आफ इन्डिया में इसकी एक महातरियाल नामक रचना का उल्लेख है। डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने इसे कलजमें शरीफ का ही दूसरा नाम कहा है[1]। कलजमें शरीफ का अर्थ है मोक्ष की धारा। हिन्दी में यह नाम कुलजम-स्वरूप हो गया है। इस ग्रन्थ में १४ भाग हैं, जिनमें से ४ गुजराती हैं, १ हिन्दी में तथा ९ हिन्दी भाषा में हैं।

'कलस' की रचना प्राणनाथ जी ने सूरत में अपनी यात्रा के समय की थी। इस रचना की भाषा गुजराती है।

"कयामत नामा" में कुरान, इंजिल तथा तोरैत की तरह संसार के अन्तिम दिन का वर्णन किया है। और यह सिद्ध करने का प्रयास भी किया है कि संसार का अन्तिम महापुरुष अथवा उद्धारक हिन्दू होगा।

प्राणनाथ जी के ग्रन्थों की भाषा मिश्रित भाषा है। उसमें हिन्दी, गुजराती, अरबी, फारसी, सिन्धी आदि विविध भाषा के शब्दों का प्रयोग किया है, सम्भवतः उन्होंने अपने विभिन्न भाषा-भाषी अनुयायियों को अपना मत समझाने के लिए एक सामान्य भाषा के प्रयोग के उद्देश्य से ऐसा किया हो।

प्राणनाथ प्रारम्भ से कवि नहीं थे। पद्य रचना का अभ्यास उन्हें जीवन की उत्तरावस्था में ही हुआ था। इसलिए काव्य कला की दृष्टि से उनकी रचना उत्कृष्ट कोटि की न हो तो आश्चर्य नहीं किन्तु वे निःसंदेह एक उच्चकोटि के विद्वान् तथा

१-हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय—डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल पृ०-१३३

संत पुरुष थे। विविध धर्म-ग्रन्थों के अध्ययन की रुचि तथा उनके लिये तत्-तत् भाषा का ज्ञान प्राप्त करना ही उनकी पिपासा एवं विद्वता के प्रमाण है। वे एक कुशल वक्ता भी थे। उनके व्याख्यानोंका सभाजनों पर बहुत प्रभाव पड़ता था। इनके प्रसिद्ध शिष्यों मे महाराज छत्रसाल के अतिरिक्त उनके भतीजे पंचमसिंह तथा जीवन मस्ताना भी थे। प्राणनाथ जी का देहावसान सं० १७५१ में हुआ था।

विश्नोई सम्प्रदाय—

यह राजस्थान का एक प्रसिद्ध संत-सम्प्रदाय है जिसकी स्थापना जांभोजी ने सं० १५४२ में की थी। इनका जन्म स० १५०८ में भादों वदि ८ को जोधपुर राज्य में नागोर इलाके के पंवासर गाँव में हुआ था। इनका नाम जमनाथ था किन्तु अपने चमत्कारों अर्थात् अचंभों के कारण जंभाजी कहलाये। पंथ के नाम पर से इसका विष्णु के साथ सम्बन्ध होने का भ्रम हो सकता है किन्तु यहाँ विश्नोई शब्द का प्रयोग बीस और नौ के अर्थ में हुआ है। वास्तव में इसका विष्णु अथवा वैष्णव धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। जाम्भोजी प्रारम्भ में गूंगे थे और देवी की कृपा से इन्हें वाचा प्राप्त हुई थी। ये गुरु गोरखनाथ को ही अपना गुरु मानते थे। किसी अन्य गुरु से शिक्षा लेने का कही उल्लेख प्राप्त नही होता।

विश्नोई सम्प्रदाय की साधना में संत-मत की साधना का ही रूप मिलता है। परमात्मा को निरंजन निराकर ब्रह्म के रूप में माना जाता है। ईश्वर के साथ तादात्म्य स्थापित करने के लिये अजपा जाप तथा नाम सुमिरन सर्वश्रेष्ठ साधन माना गया है। गुरु की कृपा से तथा स्वानुभाव से नाम का मन्त्र प्राप्त होता है। साधक उस परम ज्योति का ध्यान धर के परम सत्य को देख सकता है। परमात्मा सर्वत्र व्याप्त है, उसकी शरण मे सर्वस्व अर्पण करके ही साधक मुक्ति का वरण कर सकता है।

श्री परशुराम चतुर्वेदी ने जांभोजी पर कबीर के सिद्धान्तों का प्रभाव बतलाया है परन्तु डॉ० हीरालाल माहेश्वरी ने उनके इस विचार का खंडन करते हुए लिखा है कि जांभोजी के सिद्धान्त हिन्दू-समाज में प्रचलित उपासना के नियमों पर आधारित है[1]। चाहे जो भी हो, इतना अवश्य है कि ब्रह्म के स्वरूप तथा उसकी उपासना से सम्बन्धित विचारों में कबीर तथा जांभोजी में बहुत कुछ समानता है। डॉ०माहेश्वरी के मतानुसार विश्नोई सम्प्रदाय में जहाँ तक तत्वज्ञान योग-साधना तथा साधना प्रणाली का प्रश्न है। जांभोजी ने नाथ पंथ से प्रेरणा ग्रहण की है क्योंकि उनकी पारिभाषिक शब्दावली भी वैसी ही है। इसी प्रकार सम्प्रदाय के आचार, व्यवहार

१—राजस्थानी भाषा और साहित्य-डॉ० हीरालाल माहेश्वरी पृ०—२७७

पूजा उपासना आदि के नियम हिन्दू धर्म के प्रचलित नियमों में से जो उन्हें अच्छे लगे वे ही लिये हैं। जांभोजी ने आचार, व्यवहार सम्बन्धी २९ धर्म नियम बनाये हैं जिनका पालन करना सम्प्रदाय के अनुयायियों के लिये नितांत आवश्यक होता है। अन्य संतों की भांति जांभोजी ने भी हिन्दू और मुसलमानों के भेदभाव को मिटाकर दोनों में एकता स्थापित करने के लिए प्रयास किये हैं। सम्प्रदाय के धर्म नियम इस प्रकार हैं:—

१—प्रातःकाल स्नान करना। २—शील, शौच तथा सन्तोष का पालन करना। ३—दोनों काल सन्ध्या करना। ४—सायंकाल आरती तथा ईश्वर का गुणगान करना। ५—हवन करना। ६—जल तथा दूध वस्त्र से छानकर पीना। ७—सत्य बोलना। ८—निन्दा अपमान सहते हुए भी धर्म का पालन करना ९—इन्धन छाना बिन कर लेना। १०—जीवों पर दया करना। ११—चोरी न करना। १२—निन्दा न करना। १३—मिथ्या भाषण न करना और बिना कारण विवाद न करना। १४—अमावस का उपवास करना। १५—विष्णु की सेवा करना १६—परमात्मा की प्राप्ति तथा अनर्थ के निवारणार्थ सुपात्र को दान देना। १७—हरे वृक्ष को न काटना। १८—काम, क्रोध मोह, लोभ आदि का दमन करना। १९—असंस्कृत के हाथों अन्न जल ग्रहण न करना। २०—परोपकारी पशुओं की रक्षा करना २१—बैल को नपुंसक न करना। २२—अफीम न खाना। २३—तम्बाकू न पीना। २४—भांग न पीना। २५—मद्य पान न करना। २६—मांस न खाना। २७—नीला वस्त्र धारण न करना। २८—एक मास तक जनन-सूतक मानना। २९—रजस्वला होने पर पांच दिनों तक स्त्री का गृहकार्य से अलग रहना। इसके अतिरिक्त उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों में एकता लाने की दृष्टि से तीन नियम बनाये :—

१—मरने पर शव को गाढ़ना। २—सिर मूंडना।
३—दाढ़ी रखना।

जांभोजी की वाणी कुछ संग्रहों में बिखरी पाई गई है और मौखिक रूप से प्रचलित है। जांभोजी ने अपने पंथ का प्रचार राजस्थान के बाहर भी किया था। उत्तर प्रदेश के बरेली, मुरादाबाद, बिजनौर आदि नगरों में तथा पंजाब में उनके अनुयायी हैं। गुजरात में इनके मत का प्रचार संभवतः नहीं हुआ। इस मत के मानने वाले अधिकांशतः राजस्थान में ही हैं। विषय की दृष्टि से इनकी वाणी में योगाभ्यास, भक्ति, जीव और ब्रह्म के सम्बन्ध तथा हिन्दू मुसलमानों के आडंबर पूर्ण आचार धर्म पर प्रहार इत्यादि की प्रमुख रूप से चर्चा की गई है। भाषा

इनकी रचनाओं में राजस्थानी है उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियां देखी जा सकती हैं:—

सुण रे काजी सुण रे मुल्ला, सुण रे बकर कसाई।
किण री थरपी छाली रोसी, किणरी गाडर गाई॥
× × ×
धवणा धूजे पाहण पूजे, वे फरमाई खुदाई।
गुरु चेले के पाए लागे, देखो लोग अन्याई॥

श्री जम्भगीता पृ. २७४.

जांभोजी के प्रमुख शिष्यों में से हावली-पावली, लोहा पागल, दत्तनाथ एवं मालदेव इनके जीवनकाल में ही हुए थे। अन्य शिष्यों में सुरजनदासजी तथा बील्हाजी भी हैं। श्री सुरजनदासजी का ने जांभोजी जीवन चरित लिखा है।

जांभोजी का देहोत्सर्ग बीकानेर के लालासर नामक गाँव के जंगल में संवत् १५६३ की माघशीर्ष कृष्णा नवमी को हुआ।

निरंजनी सम्प्रदाय—

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक का नाम हरिदास जी था। इनके जीवन वृत के सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। सम्प्रदाय के अनुयायियों में इनके जीवन सम्बन्धी जो धारणा प्रचलित है उसके अनुसार इनका जन्म राजस्थान के डीडवाणे परगने के कापडोद ग्राम में हुआ था। इनके जन्म संवत् का उल्लेख प्राप्त नहीं है किन्तु इतना निश्चित है कि इनका जीवनकाल सोलहवीं शताब्दी के अन्त-भाग से सत्रहवीं शताब्दी के मध्यकाल तक का रहा है। साधु देवदास द्वारा इनका मृत्यु संवत् १७०० दिया गया है[1]।

इनका मूल नाम हरिसिंह था। इनका जीवन प्रारम्भ में बहुत सामान्य कोटि का था। पहले ये एक साधारण गृहस्थ थे। अकाल के समय परिवार के निर्वाह की कठिनाई उपस्थित होने पर ये जंगल में जाकर यात्रियों को लूटने-खसोटने लगे। परन्तु कहते हैं भगवान ने गोरखनाथ के रूप में आकर इन्हें डकैती करने से रोका और भगवद् भक्ति का उपदेश दिया। उसी समय से इन्होंने लूट-पाट छोड़ दी तथा किसी गुफा में जाकर तपस्या करने लगे तथा बाद में सत्य की खोज में भ्रमण करते रहे। कुछ समय पश्चात् जब ये पुनः डीडवाणे में आये तब तक पूर्ण वैरागी एवं

१—श्री हरि पुरुष जी की वाणी—सं० साधु देवदास

ज्ञानी संत हो गये थे। वहाँ जाने के पश्चात् वे ज्ञान एवं साधना का उपदेश देने लगे और इनकी प्रतिभा एवं व्यक्तित्व से प्रभावित होकर कई लोग इनके शिष्य बन गये। तब इन्होंने अपना एक नया पंथ प्रचलित किया जो निरंजनी पंथ के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

निरंजनी सम्प्रदाय के प्रसिद्ध ग्रन्थ श्री हरि पुरुष जी की वाणी में पंथ प्रवर्तक के रूप में जिन हरिदास जी की जीवनी दी गई है वह उपरोक्त अनुसार ही है परन्तु डॉ० माहेश्वरी तथा अन्य कुछ विद्वानों के मतानुसार पंथ के मूल संस्थापक थे हरिदास (हरीसिंह) नहीं थे। मूल संस्थापक हरिदास अन्य थे। इन्होंने (हरीसिंह) अपने गुरु के नाम से ही निरंजनी पंथ को आगे बढ़ाया। और उसका प्रचार एवं विकास किया[1]।

जिन हरिदास जी का नाम निरंजनी सम्प्रदाय के मूल प्रवर्तक के रूप में लिया जाता है उनका रचना काल श्री जगद्धर शर्मा ने सं० १५६७ दिया है[2]। इसके अतिरिक्त दादू के शिष्य संत सुन्दर दास ने हरिदास निरंजनी को कबीर, गोरखनाथ, दत्तात्रय, भरथरी, कंथड, इत्यादि की कोटि में रखते हुए उनके प्रति बड़ी श्रद्धा और आदर प्रकट किया है[3]। पुरोहित हरिनाराण जी ने भी हरिदास निरंजनी का वृक्ष देते हुए लिखा है कि वे पहले प्रागदास जी के शिष्य हुए, फिर दादू के, तत्पश्चात् कबीर तथा गोरखनाथ के शिष्य बने और अन्त में उन्होंने अपना अलग पंथ स्थापित किया[4]। पुरोहितजी के इस कथन से दादू पन्थी सम्मत होते हैं। निरंजनी सम्प्रदाय वाले नहीं।

उपरोक्त मतों का विचार करते हुए यही युक्ति युक्त लगता है कि हरिदास निरंजनी संत सुन्दरदास से भी पूर्व कोई महापुरुष हुए होंगे जिनका विस्तृत प्रामाणिक जीवन वृत्त प्राप्त नहीं है। और हरीसिंह ने हरिदास के नाम से ही निरंजनी पंथ का प्रचार करके अपने गुरु के प्रति श्रद्धा प्रकट की होगी। तात्पर्य यह है कि दोनों हरिदास भिन्न भिन्न प्रतीत होते हैं।

डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल के मतानुसार निरंजनी पंथ वस्तुतः नाथ पंथ का ही विकसित रूप है। जिसमें योग तथा वेदांत का समन्वय हुआ है।

१—राजस्थानी भाषा और साहित्य—डॉ० हीरालाल माहेश्वरी पृ०--२६२
२—नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका (सं० १९९७) पृ०—७७
३—सुन्दर ग्रन्थावली—सं० पुरोहित हरिनारायण (द्वितीय खंड) पृ०--३८५
४—सुन्दर ग्रन्थावली—सं० पुरोहित हरिनारायण (प्रथम खंड) पृ०--६२

इनके अनुसार यह संप्रदाय नाथ पंथ एवं निर्गुण पंथ का मध्यवर्ती है[1]। किन्तु डॉ० माहेश्वरी ने इस कथन का खंडन किया है। इनके विचार में हरिदास जी की विषय वस्तु, शैली और साधना के आधार पर उन्हें संत परम्परा से अलग नहीं किया जा सकता[2]। सही बात तो यह है कि डॉ० बड़थ्वाल ने अपने उपरोक्त कथन के अंत में आगे स्वयं स्पष्ट कर दिया है कि निरंजनी पंथ तथा निर्गुण पंथ में असमानता बहुत कम है।

हरिदास जी की वाणी "श्री हरि पुरुष जी की वाणी" नामक ग्रन्थ में संग्रहीत है। यद्यपि कई रचनाओं की पाठ शुद्धि एवं प्रामाणिकता के सम्बन्ध मे संशय होता है तथापि ज्ञान एवं वर्ण्य विषय को देखते हुए रचनाकार की सुन्दर प्रतिभा का पता लगता है। पद रचना झूलना, कुंडलिया तथा साखियों मे हुई है, शैली में सरलता एवं गंभीरता भी है। विषय की दृष्टि से इनमे योग साधना, ज्ञान, भक्ति, सदाचार धार्मिक सहिष्णुता इत्यादि की चर्चा भी है, भाषा अधिकांशतः राजस्थानी ही है। उदाहरणार्थ हरिदास जी का ईश्वर सम्बन्धी विचार इस पद में स्पष्ट होता है :—

> अचल अधर सब सुख को सागर, घट घट सबरा मांही रे।
> जन हरिदास अविनाशी ऐसा कहे तिसा हरि नाहीं रे॥

वाणी अकथनीय

इनकी वाणी में इसके अतिरिक्त वैराग्य तथा बाह्याडंबर, निस्सारता का भी वर्णन है। विषय को प्रस्तुत करने की इनकी शैली मौलिक एव आकर्षक है। पुरोहित हरिनारायण जी ने अपनी सुन्दर ग्रन्थावली के जीवन चरित्र वाले अंश में हरिदास जी द्वारा रचित नौ ग्रन्थों की सूची दी है। जो इस प्रकार हैं :—

१—भक्त विरदावली
२—भरथरी संवाद
३—साखी
४—पद
५—नाम माला
६—नाम निरूपण
७—ब्याहलो
८—जोग ग्रन्थ
९—टोडरमल जोग ग्रन्थ

जोधपुर के साधु देवदास जी ने इनकी वाणी का संग्रह 'श्री हरि पुरुष जी की वाणी' के नाम से प्रकाशित किया है।

१—हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय—डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल पृ०—८.
२—राजस्थानी भाषा और साहित्य—डॉ० हीरालाल माहेश्वरी पृ०—२९३

जसनाथ जी ने अपनी वाणी में पशुहिंसा का विरोध जीव-ब्रह्म की एकता तथा संसार की क्षणिकता के विषयों की चर्चा की है ।

दरिया पन्थ—

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक मारवाड़ के दरिया साहब थे। इनका जन्म संवत् १७३३ में जैतारण में हुआ था। दरिया जी की जाति के सम्बन्ध में विद्वानों में बहुत मत भेद है। डॉ० रामकुमार वर्मा,[१] पं० परशुराम चतुर्वेदी,[२] श्री क्षितिमोहन सेन[३] तथा डॉ०पीताम्बरदत्त बड़थ्थ्वाल[४] प्रभृति विद्वानों ने इन्हें मुसलमान जाति का धुनियां होना बतलाया है। इसके प्रमाण में सभी विद्वानों ने दरिया साहब की वाणी के ही निम्नलिखित पद को उद्घृत किया है :—

जो धुनियाँ तो भी मैं राम तुम्हारा,
अधम कमीन जाति मति हीना।
तुम ही हो सिरताज हमारा॥

दरिया साहिब की बानी पृ०--५७

किन्तु डॉ० मोतीलाल मेनारिया ने इस कथन का तीव्र विरोध किया है[५]। इसके प्रणाम में वे दरिया पथ के अनुयायियों का यह विश्वास बतलाते हैं कि वे दरिया पंथी उन्हें मानने को बिल्कुल तैयार नहीं। इसके अतिरिक्त डॉ० मैनारिया ने दरिया साहब का एक पद उदाहरणार्थ दिया है। जिसमें उनके माता पिता के नाम दिये है। और जो स्पष्ट हिन्दू नाम लगते हैं। वह पद इस प्रकार है :—

पिता भानजी जान गीगां महतारी।
त्रिविध मेरण ताप आप लियो अवतारी॥

दरियावजी की वाणी पद—७

जोधपुर राज्य की सन् १८९१ ई० की सैन्सन रिपोर्ट में भी दरियाव जी को मुसलमान बतलाया हैं जो डॉ० मैनारिया के अनुसार उनकी भूल है। वास्तव में वे किस जाति के थे यह बतलाने में सम्प्रदाय के अनुयायी असमर्थ है। कहं. है दरियाव जी दादू के ही अवतार थे। डा० मैनारिया के अनुसार दरिया पंथ रामसनेही

१—हि० सा० का आ० इतिहास।
२—उत्तरी भारत की सन्त परम्परा।
३—मध्ययुग नी साधना धारा।
४—हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय।
५—राजस्थान का पिंगल साहित्य तथा राजस्थानी भाषा और साहित्य।

की ही एक शाखा है। राजस्थान में रामसनेही पंथ की धारा तीन स्थानों मे अलग-अलग विकसित हुई। एक शाहपुरा की, दूसरी खेड़ापा की तथा तीसरी रैंण की। रैंण शाखा दरिया पंथ के रूप मे प्रसिद्ध हुई। इस शाखा के अनुयायी दरियाव जी को अपना गुरु मानते हैं। दरिया साहब के गुरु प्रेमदयाल नामक संत थे। दरिया साहब बड़े सरल एवं कोमल हृदय के व्यक्ति थे, इसका प्रमाण उनकी सरलता एवं प्रसाद गुणों से युक्त वाणी है।

दरिया पंथ में उपासना के क्षेत्र में नाम स्मरण को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। ईश्वर की आराधना ये निराकार ब्रह्म रूप में करते हैं। सुमिरन के लिये राम-नाम को स्वीकार किया है परन्तु राम का नाम अविनाशी ब्रह्म के अर्थ मे लेते हैं। दरिया साहब के सिद्धान्तानुसार परमात्मा अनादि, अगम और अगोचर है। वह सर्वत्र व्याप्त है। यह माया स्वरूप दृश्य जगत भी उसी ब्रह्म के अन्तर्गत है। केवल मुख से रामनाम के जाप का उनकी दृष्टि में कोई महत्व नहीं है। शुद्ध मन से अर्थात् अन्तः करण से राम नाम के ध्यान में तल्लीन होना सच्चा सुमिरन है। अपनी वाणी के 'नाद परचे का अंग' में उन्होंने नाम-स्मरण की, साधना की पद्धति समझायी है। परमात्मा का नाम स्मरण तथा उससे प्राप्त होने वाले आनन्द को दरिया साहब ने साधना की सिद्धि तभी मानी है जब साधक के अंग-अंग में परिवर्तन हो जाय। इस भाव को इन पंक्ति के द्वारा उन्होंने स्पष्ट किया है :—

पारस परसा जानियो, जो पलटे अंग अंग।
अंग अंग पलटे नहीं तो है झूठा संग॥

दरिया साहब की बानी पृ०—३३.

दरिया साहब के मतानुसार ईश्वर के साथ तादात्म्य स्थापित करने के लिये साधक का कपट रहित एवं सरल हृदय होना आवश्यक है। फिर वह चाहे गृहस्थी हो चाहे साधु। उनके सम्प्रदाय में गृहस्थ तथा उदासी दोनों प्रकार के अनुयायी होते हैं।

दरिया साहब ने फुटकर पद लिखे हैं जो दरिया साहब की बानी के नाम से प्रकाशित हुए हैं। इस सम्प्रदाय का प्रचार भी राजस्थान में ही हुआ है।

लालदासी सम्प्रदाय—

इस पंथ के प्रवर्तक संत लालदास थे। ये अलवर राज्य के निवासी थे। इनकी जाति मेवा थी और पहले ये लकड़हारे का काम करते थे। ये बिल्कुल पढ़े

लिखे नहीं थे। परन्तु साधुओं के सत्संग से इन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ था। इनका जन्म स० १७६७ में धौली धूप नामक गाँव में हुआ था। ये गृहस्थी थे। इन्हें एक पुत्र और एक कन्या थी! ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् ये लोगों को उपदेश देते थे तथा जनसेवा में रत रहते थे। इनके उपदेश से प्रभावित होकर कई लोग इनके शिष्य होगये, जिनमें हिन्दू और मुसलमान दोनों थे। अपने विरोधियों की ओर से तथा तत्कालीन शास्त्रों की ओर से इन्हें बहुत कष्ट सहने पड़े थे, किन्तु फिर भी ये अपने भक्ति प्रचार एवं परोपकार के कार्य से विरत नहीं हुए।

इस सम्प्रदाय में नाम स्मरण एवं कीर्तन को बहुत महत्व दिया जाता है। इनके अनुयायी निर्गुण ब्रह्म के उपासक हैं। परमात्मा को राम के नाम से स्मरण करते है। इस दृष्टि से यह पंथ कबीर पंथ तथा दादू पंथ के निकट जा सकता है। हिन्दू मुसलमान के भेद-भाव तथा ऊँच-नीच के भेद-भाव को ये स्वीकार नहीं करते। लालदासी पंथ में जीवन को पवित्रता तथा आचरण की शुद्धता पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इस पंथ में भिक्षा मांगना हेय समझा जाता है लालादासजी ने अपने अनुयायियो को स्वावलंबी बनने का उपदेश दिया था। इस सम्बन्ध में उनका यह पद प्रसिद्ध है :—

लाल जी साधु ऐसा चाहिए, धन कमाकर खाये।
हिरदे हर की चाकरी, घर-घर क्यूं न जाय॥

सात्विक जीवन एवं सत्य आचरण इस पंथ के मुख्य सिद्धान्त हैं।

लालदास जी अपने शिष्यों को प्रेम-श्रद्धा एवं पवित्रता से जीवन जीने तथा दृढ़ चरित्र-बल प्राप्त करने का उपदेश देते थे। इनका मानना था कि साधु को भी स्वयं परिश्रम करके अपना निर्वाह करना चाहिए। ज्ञान एवं शक्ति का गर्व नहीं करना चाहिए। त्याग और परोपकार मनुष्य के जीवन का आदर्श होना चाहिए।

लालदास जी बड़े चमत्कारी संत थे। एक बार शासकों के द्वारा इन्हें विषैले कुए का पानी पीने की आज्ञा हुई। कहते हैं इनके स्पर्श से ही कुऐ का पाना मीठा हो गया था। वह कुआं आज तक भी मीठा कुआं के नाम से प्रसिद्ध है। एक वार एक कुष्ठ रोग से पीड़ित किसी धनिक को इन्होंने आशीर्वाद से स्वस्थ कर दिया था। परन्तु वदले में उसकी सारी संपत्ति साधुओं में वितरित करवा दी थी।

संत लालादास का देहांत संवत १७०५[1] में हुआ। अलवर की सीमा के निकट भरतपुर राज्य में नगला नामक स्थान पर इनकी समाधि है। जो इस पंथ के अनुयायियों का वड़ा भारी तीर्थ स्थान माना जाता है। इनके अनेक शिष्य हुए, जिनमें विभिन्न जातियों के लोग थे। परन्तु आज मेवा अथवा मेओ जाति में इस पंथ का अधिक प्रचार है। लालदास की वाणियाँ लालदास की चेतावणी नामक ग्रन्थ में संग्रहीत हैं जिसकी हस्तलिखित प्रति जयपुर के पुरोहित हरिनारायण जी के पुस्तकालय में सुरक्षित है। इस पंथ का प्रचार भी राजस्थान मे ही विशेषत: अलवर के आसपास अधिक हुआ है।

उक्त संत सम्प्रदायों के अतिरिक्त नाथ-पंथ, रामानन्द-सम्प्रदाय एवं कवीर सम्प्रदाय का भी प्रचार हुआ है। ये तीनों ऐसे है जिनकी स्थापना हमारे आलोच्य विषय से सम्बन्धित क्षेत्र से वाहर हुई है। किन्तु इनकी शाखाए राजस्थान-गुजरात में भी फैली तथा यहाँ के अन्य संप्रदायों पर उनका प्रभाव व्यापक रूप मे पड़ा। इसलिये नाथ-रामानन्द एवं कवीर पंथ के प्रमुख सिद्धान्तों तथा उनके प्रभाव का यहाँ विचार करना उपयुक्त प्रतीत होता है।

नाथ सम्प्रदाय—

हमारे आलोच्यकाल में राजस्थान के सिद्ध जसनाथजी को छोड़कर अन्य किसी संत कवि पर नाथपंथ का प्रत्यक्ष प्रभाव परिलक्षित नही होता, किन्तु मध्यकाल के समस्त सन्तों की योग साधना पर नाथ पंथ का पूर्ण प्रभाव है। इस तथ्य को सम्भवत: कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। राजस्थान एवं कच्छ में नाथ योगियों के कई मठ थे, जिनके अनुयायी अपनी साधना एवं चमत्कारों से सवको प्रभावित करते रहते थे। जूनागढ़ के निकट गिरनार में आज भी नाथ पंथी साधुओं का मेला प्रति वर्ष लगता है। उससे यह प्रतीत होता है कि वहाँ कभी नाथ पंथ का विशेष प्रचार रहा होगा। राजस्थान में जोधपुर तथा गुजरात में कच्छ विभाग नाथ योगियों के कभी प्रसिद्ध केन्द्र थे।[1]

नाम सम्प्रदाय के आदि गुरु गोरखनाथ माने जाते हैं, इनके जन्म संवत् का कोई निश्चित उल्लेख नहीं, मिलता परन्तु अधिकाश विद्वान उनका विक्रम की ११वीं शताब्दी में होना वतलाते हैं। इसी प्रकार जन्म स्थान के सम्बन्ध मे भी केवल अनुमान ही लगाया गया है। श्री परशुराम चतुर्वेदी ने इन्हे पश्चिमी भारत अथवा

१—मध्य युग की साधना धारा—श्री क्षितिमोहन सेन पृ--३६

पंजाब के किसी भाग होना स्वीकार किया है[1]। नाथ सम्प्रदाय में गुरु गोरखनाथ के ब्रह्म तथा जगत सम्बन्धी विचार हमारे वेदान्ती एवं अद्वैतवादी सिद्धान्त के अनुसार ही है। अन्तर केवल योग साधना सम्बन्धी विचारों में एवं साधना पद्धति में है। वेदान्त ज्ञान प्राप्ति के द्वारा तथा तत्व दर्शन द्वारा मोक्ष प्राप्ति के मार्ग को स्वीकार करते है, किन्तु नाथ योगी ज्ञान के साथ-साथ योग साधना को भी नितांत आवश्यक मानते है। योग साधना के द्वारा बिना इन्द्रिय-निग्रह किये साधना सफल नहीं हो सकती, ऐसा उनका विश्वास है। जिसको गोरखनाथ ने समाधि-स्थिति कहा है उसे प्राप्त किये बिना मुक्ति सम्भव नहीं होती। आत्मा इनकी दृष्टि में सर्व व्याप्त होती है। साधक को अजपा जाप द्वारा तथा आत्म ज्ञान के द्वारा मन को नियंत्रित रखने का उपदेश गोरखनाथ ने दिया है। इनके मतानुसार निरंतर सच्चे हृदय से राम में तल्लीन होने से ही परम निधान वा ब्रह्म पद उपलब्ध होता है। गोरखनाथ के पूर्व भारत में बौद्ध धर्म का विशेष प्रभाव था, जो शनैः शनैः क्षीण होता जा रहा था। गोरखनाथ ने बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म की साधनाओं तथा योग की क्रियाओं के साथ शंकराचार्य के अद्वैतवाद का समन्वय करके अपने मत का प्रतिपादन किया जो नाथ-पंथ के नाम से प्रचलित हुआ।

हमे यह देखना है कि परवर्तीकाल में प्रवर्तित नवीन सन्त सम्प्रदायों पर गोरखनाथ के विचारों का एवं उनकी साधना प्रणाली का कितना अधिक प्रभाव पड़ा है। गोरखनाथ के शिष्यों के द्वारा चारों ओर सम्प्रदायों का जो प्रचार हुआ उसके कारण भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों में पन्थ की १२ शाखायें मुख्य रूप से स्थापित हुई। इनमें से धर्मनाथ द्वारा चलाया हुआ धर्मनाथ-पन्थ कच्छ में स्थापित हुआ तथा राजस्थान के जोधपुर में माननाथी-पन्थ की स्थापना हुई। इसके अतिरिक्त मध्यकाल में कबीर-पंथ, रामानन्दी-पन्थ, दादू-पन्थ तथा प्रणामी संप्रदाय पर भी किसी न किसी रूप में नाथ-पन्थ की निर्गुण साधना तथा योग साधना का प्रभाव पड़ा।

इसके अतिरिक्त नाथ-परम्परा के शिष्य असंख्य साधु-संत राजस्थान तथा गुजरात के विभिन्न भागों में विशेषतः पहाड़ी प्रदेशों में एकांतिक साधना में लीन रहते थे, एवं आज भी कहीं-कहीं पाये जाते है।

कबीर पन्थ—

मध्यकाल में गुजरात एवं राजस्थान के भक्त-जन-समुदाय को कबीर की

१. उत्तरी भारत की संत परम्परा—श्री परशुराम चतुर्वेदी पृ०-६०

की विचारधारा ने सर्वाधिक प्रभावित किया है। यहाँ प्रवर्तित सन्त सम्प्रदायों में से अधिकांश सम्प्रदाय कबीर की शिष्य परम्परा के ही सन्तों के द्वारा संस्थापित हैं। वस्तुतः सन्तमत के नाम से हम जिस चिन्तन प्रणाली एवं साधना धारा से परिचित हैं वह कबीर के द्वारा ही प्रवाहित हुई है।

इसके अतिरिक्त कबीर के नाम से ही पन्थ का स्थापना इन दोनों प्रदेशों में व्यापक रूप से हुई है। प्रमाण स्वरूप गुजरात एवं राजस्थान के लगभग प्रत्येक प्रमुख नगरों में कबीर मन्दिर आज भी विद्यमान हैं। जिनके अनुयायियों में ब्राह्मण तथा वणिक जाति को छोड़कर अन्य जाति के गृहस्थ होते हैं। विशेष उल्लेखनीय तथ्य यह है कि इन दोनों प्रदेशों में कबीर मन्दिरों की स्थापना तथा प्रस्तुत पन्थ का इस रूप में प्रचार १७ वीं तथा १८ वीं शताब्दी में होने लगा था। १७ वीं शताब्दी तक यहाँ कबीर पंथ का प्रसार सन्तमत के प्रभाव के रूप में ही रहा है। गुजरात में कबीर पन्थ के शिष्यों में लुहाणा, सुनार, सुथार, कुम्हार, नाई, धोबी, राज, काछिया, कणबी, कोली आदि जाति के लोग हैं[1]। श्री किशनसिंह चावडा के मतानुसार कबीर का सं० १५६४ में गुजरात में आगमन हुआ था। परन्तु इस बात का कोई प्रमाण प्राप्त नहीं होता[2]। गुजरात में कबीर पंथ आगे चलकर दो शाखाओं के रूप में प्रचलित हुआ। ये शाखायें राम कबीरिया तथा सन्त कबीरिया नाम से प्रसिद्ध हैं। परन्तु इनका प्रसार हमारे आलोच्यकाल के पश्चात् हुआ है, उसकी विस्तार पूर्वक चर्चा यहाँ आवश्यक होगी।

कबीर पंथ अथवा कबीर मन्दिरों की स्थापना गुजरात में कबीर के पश्चात् हुई है परन्तु कबीर वाणी का प्रभाव यहाँ बहुत पहले आ चुका था। नरसी तथा अन्य भक्त कवियों के ज्ञान वैराग्य के पदों पर कबीर का ही प्रभाव है ऐसा मत श्री आनन्दशंकर ध्रुव ने व्यक्त किया था। उधर राजस्थान में तो दादू आदि प्रसिद्ध संत कबीर की शिष्य परम्परा के ही थे।

कबीर मत का प्रसार सर्वत्र इतने व्यापक रूप में हुआ उसका कारण उनका विशाल दृष्टिकोण तथा साधना का सहज रूप था। कबीर ने अपने समय मे प्रचलित विभिन्न उपासना-पंथों के सार तत्व को ग्रहण कर एक समन्वयात्मक सरल मार्ग प्रशस्त किया था। कबीर ने वेदांत के अद्वैतवाद, नाथ-पंथियों की योग साधना, वैष्णवों की भक्ति तथा सूफियों के प्रेम तत्व को लेकर एक नवीन, सहज रूप का

१—वैष्णव धर्म नो संक्षिप्त इतिहास—श्री दुर्गाशङ्कर के० शास्त्री पृ०--४०७

२—वैष्णव धर्म नो संक्षिप्त इतिहास—श्री दुर्गाशंकर के० शास्त्री पृ०--४०७

निर्माण किया। विभिन्न पंथों में फैले हुए आडंबर तथा निरर्थक आचार विचारों का तीव्र विरोध किया। जातिगत तथा धर्म गत भेदभावों की निस्सारता का भंडाफोड़ किया। मनुष्य मात्र को परमात्मा की शरण में समान अधिकार की घोषणा की। हिन्दू और मुसलमानों के धर्म गुरु पंडित और मुल्लाओं की घमण्ड पूर्ण स्वार्थपरक नीति पर कठोर प्रहार किये। हिन्दू समाज के निम्न जाति के भक्तों को भी उपासना में उच्चकोटि का स्थान दिया।

कबीर के जीवन काल का समय लगभग १५ वीं शताब्दी था। स्वामी रामानन्द का शिष्यत्व प्राप्त करने का सौभाग्य उन्हें मिला। वेदशास्त्रों की विधिवत शिक्षा-दिक्षा का तो उन्हें अवसर ही नहीं मिला, किन्तु उनका अनुभव का ज्ञान अत्यन्त विशाल था। कबीर का व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभाव शाली था। उनमें सरलता, स्पष्टवादिता एवं निर्भीकता थी। सत्यान्वेषण के सम्बन्ध मे होने वाली अनुभूतियों को वे स्पष्ट शब्दों में व्यक्त कर देते थे।

कबीर निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे। नाम स्मरण के लिये उन्होंने राम को स्वीकार किया है। परन्तु कबीर का राम निराकार ब्रह्म का स्वरूप है। उन्होंने भक्ति और ज्ञान दोनो को समान स्थान दिया है। ज्ञान के द्वारा मनुष्य अपने भ्रम का निवारण कर सकता है, अंध विश्वासों का खंडन तथा सत्य की दृष्टि प्रदान करता है। माया का आवरण जो मनुष्य को परमात्मा के साथ तादात्म्य स्थापित करने में बाधा पहुँचाता है, ज्ञान के सहारे ही नष्ट किया जा सकता है। कबीर की इन पंक्तियों मे यह बात स्पष्ट हो गई है:—

संतो भाई ! आई ज्ञान की आँधी रे।
भ्रम की टाटी सबै उड़ाणी माया रहे न बाँधी रे॥[1]

कबीर ने अपनी वाणी में तर्क-वितर्क के द्वारा बाह्याचारों की निरर्थकता प्रमाणित की है। कर्मकांड, मूर्तिपूजा, माला, तिलक कंठी, व्रत, तीर्थ इत्यादि केवल आडंबर है। इनके द्वारा सच्ची भक्ति असभावित है। स्वानुभव एवं सहज भाव ही भक्ति का सच्चा मार्ग है। इन बातों का प्रतिपादन कबीर ने ज्ञान की सहायता से ही किया है, किन्तु कबीर के तर्कों का सहारा लेकर भी इन आध्यात्मिक विषय के सम्बन्ध में कोई उलझन पैदा नही होती है। ब्रह्म, जीव, जगत्, माया, आचार, धर्म इत्यादि तत्वों को समझाने के लिये उन्होंने सरल, सुबोध तर्क दिये है। उनकी शैली बड़ी मार्मिक किन्तु व्यंग्यात्मक होती है। आध्यात्मिकता की बड़ी गंभीर, गूढ बातों

१—कबीर ग्रन्थावली पृ०--९३

को एक सामान्य सांसारिक मनुष्य भी सरलता से समझ सके इसका ध्यान कबीर के सम्पूर्ण रूप से रखा है।

कबीर के राम निर्गुण ब्रह्म है। किन्तु उन्होंने अपने इष्ट को-उस परम सत्य को-सगुण, निर्गुण से परे शब्दातीत कहा है। वह अगम्य, अगोचर है। फिर भी प्रेम की दृष्टि से वह प्रत्येक के अन्तर में देखा जा सकता है। वह वर्णनातीत है। उसका भक्ति और प्रेमपूर्ण हृदय में अनुभव किया जा सकता है,किन्तु वर्णन नहीं। वह सर्वत्र व्याप्त है। सगुण और निर्गुण के भ्रम में पड़कर हम सच्चे मार्ग को भूल बैठते हैं। कबीर इस तथ्य को समझाते हुए लिखा है :—

संतो धोका कासूं कहिये।
गुण में निरगुण निरगुण में गुण है बाट छाँड़ि क्यूं बहिये ॥[१]

इस प्रकार कबीर ने ज्ञान के साथ प्रेम की आवश्यकता का अनुभव किया है। कबीर ने अपने युग में सगुण, निर्गुण, ज्ञान, भक्ति, आचार, धर्म, इत्यादि के सम्बन्ध में फैली हुई परस्पर विरोधी भावनाओं एव विश्वासों के बीच में से एक स्पष्ट सहज सर्वसम्मत मार्ग ढूँढ़ निकाला, और सत्य की प्राप्ति के लिए ज्ञान एवं प्रेम को जीवन में एक साथ लेकर चलने का आह्वान किया।

राजस्थान में दादू, सुन्दरदास, लालदास, मीरां तथा गुजरात में अखा एवं नरसी ने भी कबीर की ज्ञान एवं प्रेममयी वाणी का तथा उनके संतमत के विचारों का प्रभाव ग्रहण किया था,जिसका प्रमाण हमें इन संत-भक्त कवियों की रचनाओं में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

वैष्णव सम्प्रदाय—

मध्यकाल में गुजरात तथा राजस्थान में वैष्णव भक्ति का प्रचार कितने व्यापक रूप में हुआ था। इस पर विचार करने के पश्चात् हमें यह देखना है कि यहाँ के वैष्णव भक्तों पर कौन-कौन से संप्रदायों का प्रभाव पड़ा था। सर्वप्रथम उल्लेखनीय बात तो यह है कि यहाँ के अधिकांश भक्त-कवि संप्रदाय मुक्त ही रहे हैं अर्थात् न तो उन्होंने किसी प्रचलित सम्प्रदाय में दीक्षा ली थी और न किसी सम्प्रदाय का प्रचार किया था। इसलिये इन प्रदेशों में जिन सम्प्रदायों की स्थापना हुई थी उनका प्रचार कार्य सामान्य जन समुदाय तक ही सीमित रहा। तत्कालीन प्रसिद्ध भक्त कवियों में से अधिकांश इन संप्रदायों से अलग ही रहे हैं।

१—कबीर ग्रन्थावली पृ०—१४९

राजस्थान तथा गुजरात में वैष्णव सम्प्रदायों में से तीन का प्रभाव यहाँ के भक्तों की उपासना पद्धति पर विशेष दिखाई देता है। ये तीन क्रमशः वल्लभाचार्य का पुष्टि सम्प्रदाय, रामानुजाचार्य का रामानुज सम्प्रदाय तथा निम्बार्क का निम्बार्क सम्प्रदाय हैं। इनमें से वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग का प्रचार एवं प्रभाव विशेष दृष्टि-गोचर होता है।

इसलिये इन तीनों सम्प्रदायों के सिद्धान्तों का तथा उनके प्रभाव का यहाँ विचार कर लेना उपयुक्त जान पड़ता है।

वल्लभ सम्प्रदाय अथवा पुष्टिमार्ग—

इस सम्प्रदाय के मुख्य प्रवर्तक विष्णु स्वामी माने जाते हैं, किन्तु देश व्यापी प्रचार वल्लभाचार्य ने ही किया था इसलिए इस पन्थ के प्रमुख आचार्य वल्लभ ही माने जाते हैं। इनका जन्म संवत् १५३५ में हुआ था। इनके माता-पिता आन्ध्र-प्रदेश के निवासी थे। पिता का नाम लक्ष्मण भट्ट तथा माता का वल्लभागारु था। वे तैलंग ब्राह्मण थे। वे अधिकांशतः काशी में रहते थे। एक बार काशी छोड़कर दक्षिण की ओर जा रहे थे, तभी रामपुर जिले के चम्पारन नामक स्थान पर इनका जन्म हुआ था। बाल्यावस्था से ही अध्ययन काल में आध्यात्मिकता की ओर इनकी रुचि प्रवृत्त हुई थी। आगे चलकर उन्होंने अपने चिन्तन को पुष्टिमार्ग के रूप में प्रसारित किया। ये प्रखर विद्वान एवं उच्चकोटि के भक्त थे। तत्कालीन बड़े-बड़े शासकों को भी इन्होंने अपने व्यक्तित्व एवं विचारों से प्रभावित किया था। विजय-नगर के महाराज कृष्णदेव तथा दिल्ली के बादशाह सिकंदर लोदी वल्लभाचार्य के ज्ञान एवं सिद्धि से अत्यन्त प्रभावित हुए थे।

वल्लभाचार्य के इस सम्प्रदाय को शुद्धाद्वैती सम्प्रदाय भी कहते हैं। विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि इस सम्प्रदाय का सबसे अधिक प्रचार उत्तर प्रदेश के अतिरिक्त गुजरात एवं राजस्थान में ही हुआ है। स्वयं वल्लभाचार्य जी एवं उनके पुत्र विट्ठलनाथजी गुजरात में अनेक बार आ चुके थे। पुष्टि सम्प्रदाय के व्यापक प्रचार का श्रेय वल्लभाचार्य जी के पश्चात् विट्ठलनाथ जी को ही है। ये सम्प्रदाय की गद्दी पर संवत् १६२० में पदारूढ़ हुए। इनके सात पुत्र थे जिनको इन्होंने सम्प्रदाय के विस्तार के लिए बाहर भेज दिया था। इनमें से यदुनाथ जी ने सूरत में तथा गिरिधर जी ने कोटा में, गोविन्दराय जी ने नाथद्वारा में, एवं बालकृष्ण जी ने काँकरोली में सम्प्रदाय की व्यवस्था का कार्य किया। गुजरात, सौराष्ट्र तथा राजस्थान के विभिन्न भागों में, विशेषकर दक्षिण-पूर्व राजस्थान में पुष्टिमार्ग के

मन्दिर स्थापित हुए जो आज भी विद्यमान हैं । इन प्रदेशों में ब्राह्मण तथा व्यापारी वर्ग के लोग इस सम्प्रदाय के अनुयायी विशेष होते हैं ।

दर्शन सिद्धान्त की दृष्टि में यह संप्रदाय 'शुद्धाद्वैत' कहलाता है । इनके मतानुसार जगत् का कारण ब्रह्म माया से अलिप्त एवं नितान्त शुद्ध है[1] । इसके अतिरिक्त शंकराचार्य के अद्वैतवाद से भिन्नता दिखलाने के लिये भी उन्होंने अपने मत को शुद्ध विशेषण देकर शुद्धाद्वैत नाम दिया है ।

वल्लभाचार्य के मतानुसार ब्रह्म विरुद्ध धर्मों का आश्रय है । इसके दोनों ही रूप सत्य है । वह कठोर भी है और करुणामय भी है । वह सर्वभाव धारण करता है । अविकृत होते हुए भी भक्तजनों पर कृपा करता है । वह निर्गुण भी हैं और सगुण भी । शक्तियों की बाह्य अभिव्यक्ति के कारण वह पुरुषोत्तम कहलाता है, तथा आनन्द की अभिव्यक्ति के कारण वह परमानन्द स्वरूप भी कहा जाता है । पुष्टिमार्ग में श्रीकृष्ण ही परब्रह्म स्वरूप है ।

जीव के सम्बन्ध में वल्लभाचार्य ने कहा है कि ब्रह्म स्वयं रमण करने की इच्छा से अपने आनन्द आदि गुणों को छोड़कर जीव रूप धारण करता है । इनके मतानुसार ब्रह्म से जीव का आविर्भाव उसी प्रकार होता है जैसे अग्नि से स्फुलिंगों का होता है । जीव के तीन प्रकार बतलाये गये हैं, वे क्रमशः शुद्ध, संसारी एवं मुक्त होते हैं । जब तक जीव का अविद्या से अथवा माया से संसर्ग नहीं होता तब तक वह शुद्ध जीव होता है । अविद्या के सम्बन्ध से जीव संसारी बन जाता है । और पुष्टिमार्ग के अनुसार जब जीव सेवा से भगवान को प्रसन्न कर लेता है एवं उनकी कृपा प्राप्त कर लेता है तब वह पुनः मुक्त हो जाता है । अर्थात् अविद्या से मुक्त होकर आनन्द को प्राप्त करता है ।

जगत् के सम्बन्ध में वल्लभाचार्य का सिद्धान्त अविकृत परिणामवाद कहलाता है । इस सिद्धान्त से उनका तात्पर्य यह है कि ब्रह्म स्वयं इस सृष्टि को उत्पन्न करता है किन्तु वह विकार नहीं उत्पन्न होता जिस प्रकार सुवर्ण आभूषण रूप में परिणत होने पर भी सुवर्ण ही रहता है । इसी प्रकार ब्रह्म सृष्टि रूप में परिणत होने पर भी अविकृत रहता है । पुष्टि सम्प्रदाय में जगत् और संसार को भिन्न माना है । जगत्

१—मायासम्बन्धरहितं शुद्धमित्युच्यते बुधैः ।
कार्यकारणरूपं हि शुद्धं ब्रह्म न मायिकम् ॥ —२८.

—शुद्धाद्वैत मार्तण्ड

सत्य है जब कि संसार अनित्य है। संसार अविद्या के योग से बना कल्पित पदार्थ है। जगत् में ब्रह्म अंश है।

भगवान् के अनुग्रह को पुष्टि मार्ग में बहुत महत्व दिया गया है। अनुग्रह ही जीव को मुक्ति दिला सकता है। अनुग्रह प्राप्त करने के लिये जीव को भक्ति करनी चाहिए। भक्ति में वल्लभाचार्य ने ऊंच नीच के भेद नहीं माने। भक्ति करते समय फल की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। निरपेक्ष भक्ति से भगवान स्वयं जीव पर दया करके अपना अनुग्रह व्यक्त करता है।

पुष्टिमार्ग के इन सिद्धान्तों का दर्शन हम नरसी, मीरां तथा अन्य सगुण भक्तों की रचनाओं में कर सकते हैं। गुजरात एवं राजस्थान के अधिकांश वैष्णव भक्तों की उपासना पद्धति वल्लभाचार्य के इस शुद्धाद्वैत सिद्धान्त पर ही आधारित है। यद्यपि ये सम्प्रदाय के शिष्य नहीं बने तथापि उपासना का मार्ग उन्होंने यही स्वीकार किया है इसमें किसी को सन्देह नहीं हो सकता।

रामानंदी सम्प्रदाय—

इस सम्प्रदाय को रामानन्दी सम्प्रदाय और वैरागी सम्प्रदाय भी कहते हैं। इसके प्रवर्तक मध्यकाल के प्रसिद्ध गुरु रामानन्द जी थे। प्रारम्भ में रामानन्द रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा में राघवानन्द जी के शिष्य थे तथा रामानुज अथवा श्री सम्प्रदाय के अनुयायी थे। तथा रामानुज की भक्ति को दक्षिण भारत से उत्तर में लाने का श्रेय रामानन्द को ही है, जो कि इस प्रसिद्ध दोहे से ज्ञात होता है:—

भक्ति द्राविड़ ऊपजी लाये रामानन्द।
प्रकट कियो कबीर ने सप्त द्वीप नव खंड॥

रामानुज सम्प्रदाय में खान-पान सम्बन्धित नियम बड़े कठोर थे। जातिगत भेद भाव उसमें बहुत प्रचलित थे। रामानन्द अपने देशाटन के काल में इन कठोर नियमों का पालन करने में असमर्थ थे। इसके उपरांत एक भक्त के लिये इन नियमों की निरर्थकता का अनुभव भी उन्हें होने लगा था। उनका दृढ़ मत था कि ईश्वर की दृष्टि में सब मनुष्य बराबर हैं इसलिये भक्ति का सबको समान अधिकार है। छूत अछूत के भेद निरर्थक हैं। उनके इस व्यापक दृष्टिकोण तथा उदार धर्म-भाव के कारण उन्हें रामानुज सम्प्रदाय से अलग हो जाना पड़ा था। उनके साथ ही अन्य कई शिष्य सम्प्रदाय को छोड़ चुके थे। और तब रामानन्द ने अपना मत "रामावत"

अथवा वैरागी सम्प्रदाय के नाम से प्रवर्तित किया। वास्तव में यह वैष्णव सम्प्रदाय ही की एक शाखा है।

रामानन्द अपने युग के गुरु थे उनका समय सन् १४०० से १४७० के लगभग माना गया है[१]। रामानन्द ने रामानुज के उस आचार प्रधान पंथ को छोड़ कर प्रेम-भक्ति का एक सहज मार्ग अपनाया। धर्मगत एवं जातिगत बन्धनों का उन्होंने अस्वीकार किया। निम्न जाति के लोगों को भी अपना शिष्यत्व दिया तथा अपने मत के प्रचार-कार्य के लिये संस्कृत के स्थान पर हिन्दी भाषा का का उपयोग किया।

रामानन्द ने तत्कालीन प्रचलित वैष्णव उपासना पद्धति में थोड़ा परिवर्तन किया। उन्होंने कृष्ण के स्थान पर राम को अपना इष्ट मान कर राम नाम का आश्रय लिया। उन्होंने वैष्णवों के द्वादशाक्षर मन्त्र के स्थान पर रामषडाक्षर मन्त्र का प्रचार किया। रामानन्द ने अपने शिष्यों को लक्ष्मण एव सीता सहित रामचन्द्र जी का ध्यान धरने का उपदेश दिया है। विद्वानो का कहना है कि त्रिमूर्ति की उपासना का यह सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत के तत्व त्रय सिद्धान्त के अनुरूप ही है। त्रिमूर्ति में सीता प्रकृति तत्व, लक्ष्मण जीव तत्व तथा राम ईश्वर तत्व के द्योतक है।

रामानन्द ने भक्ति के क्षेत्र में धार्मिक कट्टरता का विरोध किया था, इस बात को श्री बलदेव उपाध्याय स्वीकार नही करते। उनके मतानुसार रामानन्द धर्म-बन्धनों को मानने वाले थे। किन्तु दक्षिण भारत एवं उत्तर भारत की स्थिति में ही अन्तर था। उत्तर भारत में पहले से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैष्णवों को वेदाध्ययन का अधिकार प्राप्त था[२]। चाहे कुछ भी हो इतना अवश्य है कि रामानन्द के प्रमुख शिष्यो मे विभिन्न जाति के लोग थे और उनमे निम्न कही जाने वाली जाति के शिष्य भी थे। रविदास, कबीर, धन्ना, सेना, पीपा, प्रभृति प्रसिद्ध अनुयायी समाज की विभिन्न जातियों में से आये थे।

रामानन्द जी अपने शिष्यों को राम की पूजा-अर्चना का उपदेश देते थे। किन्तु वे यह भी मानते थे कि ईश्वर हमारे हृदय-मन्दिर में विद्यमान है। वह सर्व-व्यापी है। केवल मन्दिरों में जाने से ही वह नही मिलता।

१—मध्ययुग नी साधना धारा—क्षितिमोहन सेन पृ०--३६

२—भागवत संप्रदाय—श्री बलदेव उपाध्याय पृ०--२६०

रामानन्द ने मुक्ति का साधन भक्ति को माना है। भगवान राम की अनुराग पूर्ण अविरत भक्ति ही एक मात्र मोक्ष दिला सकती है।

रामानन्द जी के प्रमुख शिष्यों में कबीर, सेन, धन्ना इत्यादि के अतिरिक्त अनन्तानन्द, सुरसुरानन्द प्रभृति सात शिष्य थे।

राजस्थान में रामानन्द की शिष्य परम्परा के भक्त अनंतानन्द जी के शिष्य कृष्णदास पयहारी हुए। इन्होंने रामानन्द के इस वैरागी अथवा रामावत सम्प्रदाय को बहुत आगे बढ़ाया। इनके शिष्यों में अग्रदास इत्यादि उच्चकोटि के भक्त एवं कवि हुए हैं। रामनन्द के प्रमुख शिष्यों में से पीपा भी राजस्थान के थे वे बहुत उच्चकोटि के भक्त थे। वे अपने जीवन की उत्तरावस्था में गुजरात में द्वारिका में आ कर रहे थे।

गुजरात में हमारे आलोच्य काल के भक्त कवियों में से प्रसिद्ध कवि भालण ने भी राम की उपासना की है। यद्यपि वे रामानन्दी अथवा किसी अन्य सम्प्रदाय के शिष्य नहीं बने थे तथापि वैष्णव भक्ति के इस युग में जब कि अधिकांश कवियों ने कृष्ण को इष्ट माना था भालण ने राम को इष्ट मानकर उपासना एवं काव्य रचना की है। तात्पर्य यह कि राजस्थान एवं गुजरात पर वल्लभ सम्प्रदाय के पश्चात् अधिक प्रभाव रामानन्दी समुदाय का कहा जा सकता है।

इसके अतिरिक्त अन्य वैष्णव सम्प्रदायों में से निम्बार्क तथा रामानुज सम्प्रदाय का भी थोड़ा बहुत प्रभाव यहाँ के भक्तों के जीवन पर पड़ा है।

रामानुज सम्प्रदाय—

इस पंथ के प्रवर्तक श्री रामानुजाचार्य थे। इनका समय ई० सन् १०१७ से ११३७ का माना गया है। इनका सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत के नाम से प्रसिद्ध है। इनके सम्प्रदाय को श्री सम्प्रदाय भी कहते हैं। इस सम्प्रदाय के मुख्य केन्द्र दक्षिण भारत में ही स्थापित हुए हैं। इसलिये गुजरात तथा राजस्थान में इस सम्प्रदाय का प्रभाव मुख्यतः सिद्धान्तों के रूप में ही पड़ा है। और यहाँ इनके जो अनुयायी हैं वे भी रामानन्दी शाखा के हैं।

इस सम्प्रदाय के मतानुसार ईश्वर सदा सगुण है वह निर्गुण हो ही नहीं सकता रामानुज ने ब्रह्म के सम्बन्ध में उपनिषदों के विचार स्वीकार किये हैं। चित, अचित तथा ईश्वर ये तीन सृष्टि के पदार्थ माने गये हैं। चित तत्व जीव है, अचित जगत् और ईश्वर दोनों में अंतर्यामी के रूप रहता है। संसार के समस्त पदार्थ गुण विशिष्ट ही है। ईश्वर स्वयं अपनी लीला से जगत् की सृष्टि करता है, और वह स्वरचित पदार्थों के साथ लीला भी करता है।

जीव ईश्वर पर आश्रित रहता है। इस सम्प्रदाय के अनुसार जीव ब्रह्म का वैसा ही अंश है जैसा चिनगारी अग्नि का अंश है। जीव एक ऐसा चित तत्व है जो निर्विकार, नित्य तथा आनन्दरूप होता है। वह देह, इन्द्रिय तथा बुद्धि से विलक्षण तत्व है। अन्य संप्रदायों में इसी चित तत्व को आत्मा भी कहते हैं।

अचित् तत्व का दूसरा नाम माया अथवा अविद्या है। वह ज्ञान शून्य एवं विकारास्पद वस्तु है। अचित तत्व तीन प्रकार के हैं। एक स व शून्य दूसरा मिश्र सत्व और तीसरा शुद्ध सत्व। शुद्ध सत्व रज या तम गुण से रहित है। सिद्ध एवं मुक्त पुरुषों के शरीर की रचना इस तत्व त होती है। मिश्र रज, तम आदि गुणों से मिश्रत होता है, यही माया अथवा अविद्या है, तथा सत्व शून्य काल को कहते हैं। रामानुजाचार्य के मतानुसार आत्मा विना शरीर के कभी रह ही नहीं सकती।

इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत उपासना की पद्धति के सम्बन्ध में जो मार्ग वतलाया गया है वह शेष शेपिभाव की उपासना कही जाती है। अर्थात् जीव शेप अथवा सेवक है और ईश्वर शेपी अर्थात् स्वामी है। जीव को अनन्य भाव से परमात्मा की तथा उनके भक्तों की सेवा में निरत रहना चाहिए। विना भक्तों की सेवा किये भगवान की सेवा भी अपूर्ण मानी जाती है। इस प्रकार श्री सम्प्रदाय में दास्यभाव की भक्ति स्वीकार की गई है।

श्री दुर्गाशंकर शास्त्री के मतानुसार रामानुज सम्प्रदाय के कुछ ग्रन्थ मध्यकाल में लिखे हुए गुजरात में से प्राप्त हुए हैं। इससे प्रतीत होता है कि इसका थोड़ा वहुत प्रचार यहाँ तव अवश्य रहा होगा[1]।

निम्वार्क सम्प्रदाय—

रामानुज सम्प्रदाय के पश्चात् निम्वार्क सम्प्रदाय का प्रचार गुजरात एवं राजस्थान में मध्यकाल मे हुआ है। गुजरात में प्राचीन ग्रन्थ भंडारों में से इस सम्प्रदाय के धार्मिक ग्रन्थ भी प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त वारडोली विभाग में निम्वार्क के अनुयायी वर्तमान युग में भी हैं। गुजरात में इसके प्रचार और प्रसार के अन्य कोई प्रमाण प्राप्त नहीं है। गुजरात में राजस्थान में संवत् १५५० के आसपास निम्वार्क सम्प्रदाय के एक शिष्य प्रसिद्ध कवि हुए हैं। जिनका उपनाम तत्ववेता था इनके मूल नाम का उल्लेख नहीं मिलता है। अजमेर, जयपुर, जैतारण, आदि स्थानों में इनकी गद्दियाँ

१—वैष्णव धर्म नो संक्षिप्त इतिहास—श्री दुर्गाशंकर के० शास्त्री पृ०--३८८

आज भी विद्यमान हैं। अपने समय में इन्होंने अनेक शिष्यों को सम्प्रदाय की दीक्षा दी थी[1]।

तात्पय यह है कि राजस्थान एवं गुजरात दोनों प्रदेशों में इस सम्प्रदाय का प्रचार मध्य युग में अवश्य हुआ है। इसमें सन्देह नहीं। इस दृष्टि से इस पंथ के सिद्धान्तों पर विचार करना यहाँ उपयुक्त ही होगा।

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक निम्बार्काचार्य थे। इनके जीवन चरित्र के विषय में प्रामाणिक जानकारी प्राप्त नहीं है किन्तु विद्वानों के मतानुसार ये दक्षिण भारत के बेलारी जिला के एक तैलंग ब्राह्मण थे। डॉ० भंडारकर ने इनका समय ई० सन् ११६२ बतलाया है परन्तु वह केवल गुरु परम्परा के आधार पर अनुमानित होने से पूर्ण प्रमाणित नही कहा जा सकता।

निम्बार्क सम्प्रदाय तत्कालीन अन्य वैष्णव सप्रदाय में अति प्राचीन माना जाता है। इस संप्रदाय का केन्द्र भी वृन्दावन है, मथुरा मंडल में एक ग्राम निम्बार्क संप्रदाय का प्रधान स्थान बतलाया जाता है। सिद्धान्तों की दृष्टि से भी यह संप्रदाय बहुत प्राचीन है क्योंकि निम्बार्क ने औडुलोमि और आश्मरथ्य के भेदाभेदवादी मत को स्वीकार किया है। इसी को द्वैताद्वैत का सिद्धान्त कहते है। इस मत में जीव ब्रह्म से भिन्न भी है और अभिन्न भी है। साँसारिक अवस्था में जीव तथा ब्रह्म में भेद होता है जब कि मुक्ति की अवस्था में जीव ब्रह्म से भिन्न होता है।

जीव के सम्बन्ध मे निम्बार्क का मत है कि वह ज्ञान तथा भोग की प्राप्ति के लिये ब्रह्म पर आश्रित है। ईश्वर नियंता है जब कि जीव नियम्य है। निम्बार्क ने रामानुज की तरह चित, अचित तथा ईश्वर आदि तीन पदार्थ स्वीकार किये हैं। परन्तु जीव और ब्रह्म के परस्पर सम्बन्ध के बारे में दोनों में अन्तर है।

इस संप्रदाय में अचित् तत्व जगत् को कहा है। काल भी अचेतन पदार्थ माना गया है। काल अखंड होता है तथापि वह परमेश्वर पर आश्रित है।

ब्रह्म अथवा ईश्वर निम्बार्क मत में सगुण है। वह ज्ञान, शक्ति तथा कल्याण आदि के गुणों से युक्त है। जगत् में वह सर्वत्र व्याप्त है[2]। उसको अनेक नाम है। कृष्ण, पुरुषोतम भगवान, नारायण आदि एकही ब्रह्म के नाम हैं।

१—राजस्थानी भाषा और साहित्य—डॉ० मोतीलाल मेनारिया।

२—यच्चकिंचिज्जगत्यस्मिन् दृश्यते श्रूयतेपि वा।
　अन्तर्बहिश्च तत् सर्वं व्याप्य नारायण: स्थित:॥

निम्बार्क के उपास्य देव कृष्ण है। इन्होंने अपने भक्तों को कृष्ण की चरण सेवा का ही आदेश दिया। निम्बार्क ने कृष्ण और राधा की उपासना के साथ-साथ राधा की उपासना पर विशेष जोर दिया है। राधा माधुर्य की मूर्ति तथा शक्ति रूपा है। भक्तों की कामना को पूर्ण करने की शक्ति राधा में है।

आज गुजरात तथा राजस्थान के अनेक प्रमुख नगरों में राधावल्लभी उपासना प्रचलित है। हिन्दू समाज के उच्च वर्ण के लोग इसके अनुयायी तथा भक्त होते हैं। यह राधावल्लभी संप्रदाय की स्थापना निम्बार्क संप्रदाय के प्रभाव से ही वृन्दावन में बाद में हुआ। क्योंकि राधावल्लभी संप्रदाय में राधा को प्रधानता दी जाती है, और यही भाव निम्बार्क संप्रदाय में भी प्रवर्तित है।

सारांश यह है कि हमारे आलोच्यकाल में अर्थात् १५ वीं व १७ वीं शताब्दी के बीच गुजरात तथा राजस्थान में उक्त वैष्णव संप्रदायों का प्रभाव सर्वत्र किसी न किसी रूप में परिलक्षित होता है।

पंचम् परिच्छेद

गुजरात एवं राजस्थान के संत-भक्त कवि

(ई० सन् १४०० से १७००)

पंचम् परिच्छेद—

गुजरात एवं राजस्थान के संत–भक्त कवि

(ई० सन १४०० से १७००)

मध्य काल में समस्त भारत में भक्ति की जो लहर फैली हुई थी, उससे राजस्थान एवं गुजरात की भूमि भी अलिप्त नहीं थी। इस भूमि पर भी अनेक संत-भक्तों का आविर्भाव सम्प्रति-काल में हुआ। इनमें से अधिक संत-कवि निर्गुण सम्प्रदाय के ही थे। परन्तु कुछ ऐसे संत महात्मा भी यहाँ हुए जिनकी वाणी में निर्गुण और सगुण दोनों शाखाओं के परस्पर समभाव की प्रवृति दृष्टि गोचर होती है।

इस विषय में अध्ययन करते हुए हमें यह ज्ञात होता है कि इधर गुजरात में हमारे आलोच्य काल के पूर्व भाग में अर्थात् १५ वीं शदी में सगुण भक्ति की प्रवृत्ति विशेष दृष्टिगोचर होती है। नाथों और सिद्धों की निर्गुण भक्ति धारा का प्रभाव जो इस काल के पूर्व यहाँ प्रवर्तित था क्रमश: सगुण भक्ति के वेग में दब-सा गया, परन्तु सत्रहवीं शती के उत्तरार्ध में भक्ति की इस धारा में पुन: परिवर्तन आता है। जिसके प्रमाण हमें भक्त अखा की वाणी में दृष्टिगोचर होते हैं। तथा हमारे आलोच्य काल के पश्चात् भी अर्थात् १८वीं शती में पुन: इस प्रदेश में ज्ञान मार्गी संतों का आविर्भाव होता है। विशेषत: इस काल में सौराष्ट्र में अनेक लोक संतों का प्रादुर्भाव हुआ, जिनकी वाणी यद्यपि ग्रन्थ रूप में नहीं प्राप्त होती तथापि आज सौराष्ट्र एवं गुजरात में इन लोक संतों की वाणी अनेक भजनिकों के द्वारा गाँव-गाँव में गायी जाती है। ऐसे अनेक संतों की वाणियों का संग्रह स्व. झवेरचन्द मेंघाणी ने 'सोरठी संत वाणी' में तथा माणेकलाल राणा ने 'गुजरात ना भक्तों' में प्रकाशित किया है। ऐसे संत हमारे प्रबन्ध के आलोच्य काल में न होने से उनका उल्लेख एवं परिचय यहाँ दिया नहीं जा सका है।

दूसरी तरफ राजस्थान में १५ वीं शती के पूर्व नाथ-सिद्धों का प्रभाव ही दृष्टि गोचर होता है। इतना ही नहीं १५वीं शती में भी या तो चारणों का वीररसात्मक चारण काव्य-साहित्य प्राप्त होता है या सिद्ध महात्माओं की वाणी के पद। मुख्य रूप से इस प्रदेश में भक्ति का प्रादुर्भाव १६ वीं शती में ही हो सका है। विशेषत: हमारा ध्यान आकर्षित करने वाली बात यह है कि राजस्थान में सगुण भक्ति की धारा १७ वीं शती में जितना वेगगामी रूप धारण नहीं करती उतना उसके पश्चात् अर्थात् १८ वीं शती में करती है। यह १६ वी तथा १७ वीं शती में निर्गुण एवं सगुण भक्ति की धाराएं समान रूप से साथ-साथ बहती हुई आगे बढ़ रही थी। इस प्रकार गुजरात में जहाँ निर्गुण धारा के प्रवर्तक के उपरान्त सगुण धारा का प्रादुर्भाव तीव्र गांमी रूप धारण करता है और पुन: उसका पर्यवसान निर्गुण रूप में हो जाता है वहाँ राजस्थान में स्थिति इसके प्रतिकूल दिखाई देती है।

इस प्रकरण में जब हम गुजरात तथा राजस्थान के मध्ययुगीन संत और भक्त कवियों का संक्षिप्त परिचय देने का प्रयत्न करते हैं तो एक बात और भी उल्लेखनीय दिखाई पड़ती है कि यद्यपि हमारे साहित्य के मध्य युग का प्रारम्भ सं० १४५० से हो जाता है और इस काल में भारत के अन्य भागों में संत भक्ति का प्रचार प्रसार पर्याप्त मात्रा में हो भी चुका था तथापि राजस्थान में एवं गुजरात में जिन संत भक्त कवियों का आविर्भाव हुआ है उनमें से अधिकांश का आविर्भाव सं० १५०० के बाद हुआ ज्ञात होता है।

गुजराती के संत भक्त कवि (१५ वीं शती)

१—नर्षि
२—नरसी मेहता
३—मयरण
४—भालण
५—भीम
६—मांडण वंधारो
७—कर्मण मन्त्री

(१६ वीं शती)

१—केशवदास
२—नाकर
३—कीकुवसही
४—मीरां
५—भीम वैष्णव
६—चतुर्भुज
७—ब्रह्मदेव
८—वासण दास
९—वजियो
१०—जुगनाथ

११—उद्धव
१२—सुरदास
१३—वस्तो कोडियो
१४—काशी सुत शेध जी
१५—लक्ष्मी दास
१६—रामदास सुत
१७—संत
१८—फुढ
१९—गोपाल दास वणिक

(१७ वीं शती)

१—देवीदास गान्धर्व
२—रामभक्त
३—शिवदास
४—कृष्णदास
५—भाउ
६—भगवानदास कायस्थ
७—अविचलदास
८—हरजी सुत कहृति
९—महावदास
१०—वैकुंठदास
११—परमानन्द
१२—नरहरिदास
१३—फांग
१४—पांचो
१५—माधवदास
१६—ईसरदास (इसर बारोट)
१७—धनराज
१८—नारायण
१९—अदोभक्त
२०—गोविन्द मोरसुत
२१—बूटिया
२२—गोपाल
२३—भाणदास
२४—प्रेमानन्द
२५—रत्नेश्वर
२६—प्राणनाथ
२७—आनन्दधनजा

~~~~~~~~

१. नर्षि—

इस कवि ने गुजराती में फागु काव्य की रचना की है। पाटण के पास घणेज गाँव में इस काव्य की रचना हुई है। इस कवि के नाम के सम्बन्ध में मतभेद है। श्री क०मा० मुन्शी इनका नाम नतर्षि होना बतलाते हैं। इसका आधार उनके अनुसार फागु काव्य का अन्तिम श्लोक है जो इस प्रकार है—

पौराणे: कीर्तितो देव त्वामेव भुवनाधिपः ।
नर्तर्षिः श्रीजगतवन्धो ज्ञानी ध्यानी गुणी कविः ।।
~~~~~~~~

परन्तु श्री के० का० शास्त्री के अनुसार यहाँ नतर्षि शब्द कवि का नाम नहीं परन्तु 'नमन करनां' के अर्थ में आना होना चाहिये[१]। इसी फागु काव्य से मिलती जुलती एक रचना 'वसंत विलास' नामक मिली है। जिसकी हस्त प्रति सं०१५०८ की लिखी है। इन दोनों में भाषा पद भाव आदि मे समानता है इसलिये दोनों का रचयिता एक ही होना सम्भव है। इसकी मध्यकालीन गुजराती है। इनके जन्म सम्वत् के सन्बन्ध में भी मत भेद है। श्री जगदीश गुप्त ने मुन्शी के मतानुसार इनका समय सं० १४९५ (सन् १४३९) माना है। परन्तु शास्त्री ने इनका समय सं० १४५० और १५०० के बीच माना है। ये नर्यषि जैन कवि थे और कीर्तिमेरु के शिष्य थे। इन्होंने अपने फागु में कृष्ण की रासलीला का सुन्दर वर्णन किया है। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि फागु अथवा वसन्त विलास के रचयिता नर्यषि अथवा नतर्षि नाम के कवि थे जिसका आविर्भाव सं० १४५० और १५०० के बीच हुआ और जो जैन कवि होते हुए भी कृष्ण के परम भक्त थे।

२ नरसी मेहता—

भक्त नरसी का नाम गुजराती के आदि कवि के रूप में सुविदित है। इस कवि का जन्म सौराष्ट्र के एक प्राचीन सुप्रसिद्ध नगर जूनागढ़ के पास के एक ग्राम तलाजा में हुआ था। इनके जन्म संवत् के सम्बन्ध में दो मत हैं। एक तरफ कवि नर्मदाशंकर इच्छाराम देसाई, श्री कांटावाला तथा श्री के० का० शास्त्री प्रभृति 'वृद्धमान्य' समय को मानने वाले विद्वानों के अनुसार संवत् १४६९-७० इनका जन्म समय माना जाता है[३]। जब कि दूसरी तरफ श्री क० मा० मुन्शी तथा श्री नरसिंहराव दीवटिया प्रभृति विद्वानों ने नरसी का समय संवत् १५३० के बाद माना है। श्री जगदीश गुप्त ने भी क० मा० मुन्शी के मतानुसार उनका समय सं० १५३० के बाद ही मानना उचित समझा है। परन्तु श्री मुन्शी तथा अन्य विद्वानों के तर्क नरसी के काल को इतना पीछे ले जाने के लिये पूर्ण आधारभूत नही लगते। उनके तर्को में केवल धारणा ही प्रमुख है जैसे श्री ध्रुव के नरसिंह का समय। इस लिये उनकी भक्ति पर चैतन्य का प्रभाव परिलक्षित होता है और उनके काव्य में राधा की कुछ सखियों के ऐसे नामो का उल्लेख है जो नाम चैतन्य के अनुयायी रूप

१—कवि चरित--के० का० शास्त्री पृ०--१०

२—गुजराती और व्रजभाषा कृष्ण काव्य— डा० जगदीश गुप्त पृष्ठ—९

३— कवि चरित—के० का० शास्त्री

गोस्वामि की रचना विदग्ध माधव में भी आये हैं उधर श्री के०का०शास्त्री के उल्लेख में जो प्रमाण हैं वे ऐतिहासिक अधिक है। जैसे सं० १५१२ में जूनागढ़ के राजा मांडलिक ने नरसी को कैदकर उनकी भक्ति की परीक्षा ली थी जिसका वर्णन नरसी ने स्वयं अपने शब्दों में किया है। इसके अतिरिक्त खंभात के एक कवि श्री विष्णुदास (संवत् १६२४ से १६५६) ने मामेरं की रचना की है। इससे यह प्रमाणित है कि १६०० सवत् तक नरसी कवि का नाम सौराष्ट्र से खंभात तक लोगों में प्रसिद्ध हो गया था। भक्ति के सम्बन्ध में भी नरसी पर चैतन्य अथवा अन्य किसी सम्प्रदाय का प्रभाव मानना उचित नहीं। क्योंकि गुजरात और सौराष्ट्र में नरसी के पूर्व भी अनेक भक्तों का अलग-अलग रूप से आगमन होता चला आया है। सौराष्ट्र के पश्चिमी किनारे पर भारत के प्रसिद्ध तीर्थ द्वारका में अनेक संत महात्मा आते रहते थे। इसके कारण भक्ति का प्रसार स्वाभाविक रूप से इस प्रदेश में होता रहा है। और नरसी की भक्ति भी ऐसी एक स्वयं प्रेरित भक्ति है। नरसी की रचना में कहीं-कहीं आख्यान पद्धति का जो रूप दिखाई देता है उसके आधार पर भी श्री मुन्शी ने उनको सं० १६०० के बाद रखना उचित माना है परन्तु श्री शास्त्री के अनुसार नरसी की अधिकांश रचनाएं हरिगीत और सवैया छंद में रचित हैं और आख्यान का रूप है वहाँ पर भी सीधी सरल आख्यान पद्धति है। उसमें प्रौढ़त्व नहीं हैं[1]। अतः इसे नरसी के पूर्ववर्ती जयदेव के गीत गोविन्द का प्रभाव माना जा सकता है। इसके कारण नरसी को वल्लभाब्द समय से पीछे ले जाने की आवश्यकता नहीं लगती।

इस प्रकार भक्त नरसी को १५ वीं शताब्दी का कवि मानना हमें उचित लगता है। उनकी भक्ति का स्वरूप उनका अपना विशिष्ट रूप है। जिसमें सगुण भक्ति तथा वेदांत के ज्ञान का भी सम्बन्ध है और इसीलिये नरसिंह को दी गई आदि कवि की उपमा भी उचित जान पड़ती है।

२. भदण—

इस कवि का जन्म सं० १४५० से १५०० के आस-पास होना माना गया है। यद्यपि इनके जन्म-समय का कोई स्पष्ट उल्लेख कहीं मिलता नहीं है तथापि इनके काव्य की भाषा के स्वरूप के आधार पर श्री क० मा० मुन्शी एवं श्री के० का० शास्त्री ने सं० १५०० के आस पास इनका जीवित होना बतलाया है। इनकी प्राप्त रचना भदण छन्द नामक काव्य है। जिसमें राधा कृष्ण के संयोग शृंगार का

1—कवि चरित—के० का० शास्त्री पृ०-४३

वर्णन है। काव्य की भाषा पर अवहट्ठ का प्रभाव है[1]। इस कवि का नाम मयण होने का प्रमाण स्वयं इनकी रचना में उनके नाम का उल्लेख है जैसे:—

मयणवंय तु नत्थि इम।

तथा मानिनि मयण इम उच्चरई ॥

मयणवंय नाम के आधार पर इनका ब्राह्मण जाति का होना संभावित है।

४. भालण—

मध्यकाल के प्रसिद्ध एवं समर्थ आख्यानकार कवि भालण के जन्म काल के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। गुजराती भाषा को गुर्जर भाषा का नाम देने वाले ये प्रथम कवि थे[2]। श्री के० का० शास्त्री ने इनका जन्म संवत् १५१५-२० के लगभग माना है परन्तु इस विषय में वे स्वयं भी असंदिग्ध नहीं है क्योंकि उनके अनुसार भक्ति की कादम्बरी भाषा तीसरी भूमिका की भाषा अर्थात् सं० १६२५ के आस पास की गुजराती है इस प्रकार भालण के जन्म संवत् के बारे में स्वयं उन्हें शंका है। श्री रा० चू० मोदी ने भालण का समय सं० १४६० से १५७० सं० के बीच का माना है परन्तु इसका मृत्यु समय सं० १५४५—४६ देते हैं। श्री क० मा० मुन्शी ने इनका समय ई० सन् १४२६ से १५०० के बीच माना है। परन्तु वे स्वयं भी इस विषय में संदिग्ध है[3]।

श्री कृष्णलाल मो० झवेरी ने भालण का समय सं० १४६३ से १५६५ माना है। परन्तु इस तरह एक सौ वर्ष का दीर्घ काल निश्चित समय जानने में सहायक कैसे हो सकता है[4] ?

इस सम्बन्ध में अन्तरिक्ष्य के रूप में भालण की रचना 'बीजूं' 'नलाख्यान' में एक पद मिलता है जिसमें रचना काल के संवत् का उल्लेख इस प्रकार है :—

पंदरसें पीसतालीस माँहि गाया नलगुण - ग्राम जी।

पद्य एकशत ने सात कर्या छे हरिजनना विश्राम जी ॥

(बीजूं नलाख्यान—२८)

इसके अनुसार उनके इस काव्य का प्रणयन सं० १५४५ में होना चाहिए। परन्तु इसके विषय में भी विद्वानों में शंका इसलिए है कि यह पद नलाख्यान की एक

---

१. कवि चरित—श्री के० का० शास्त्री पृ०--६१
२. कवि चरित—श्री के० का० शास्त्री पृ०--१५०
३. गुजरात एन्ड इट्स लिटरेचर—क० मा० मुन्शी पृ०--११६
४. गुजराती साहित्य ना मर्मसूचक स्तंभो- पृ०--४१

प्रति में मिलता है। जब कि दूसरी प्रति में नहीं मिलता। दूसरी बात यह है कि इस काव्य की रचना भालरण ने ही की है अथवा अन्य किसी का रचा हुआ है इस सम्बन्ध में भी कोई प्रमाण नही है। इसलिए इस पद में निर्दिष्ट संवत् के आधार पर भी भालण की जन्म तिथि निश्चित नहीं की जा सकती। भालरण के नलाख्यान की जो-जो प्रतियां मिलती हैं उनमें भाषा के रूप विभिन्न युगों के मिलते हैं इसलिए उसके आधार पर भालण की जन्म तिथि का निर्णय नहीं किया जा सकता। भालण के जन्म स्थान के विषयों में भी पहले मतभेद था। कुछ विद्वान सिद्धपुर को उसका जन्म स्थान मानते थे। परन्तु स्व० नारायण भारती द्वारा की गई खोज के आधार पर यह असंदिग्ध रूप से मान लिया गया है कि भालण का जन्म स्थान पाटण था, ऐसा माना जाता है। हरिलीला तथा प्रबोध-प्रकाश का रचयिता भीम भालण का शिष्य था। इसका आधार यह है कि प्रबोध प्रकाश में गुरु का नाम उसने पुरुषोत्तम महाराज बतलाया है जो नाम भालण का ही था ऐसा कुछ लोगों का कहना है परन्तु इसके विषय में कोई ठोस ऐतिहासिक प्रमारण नहीं है[1]।

श्री शास्त्री के अनुसार भालण के समय का निर्णय करने में दो आधार सबसे अधिक सहायक है एक तो भालण की 'कडवाबद्ध' आख्यान पद्धति और दूसरा उसके द्वारा रचित ब्रज भाषा के कुछ पद जो कि अष्ट छाप के भक्त कवियों की सुप्रसिद्ध भाषा थी। इसके आधार पर उन्होने भालण का समय सं० १५५० के बाद अर्थात् नरसी मेहता के वृद्धमान्य समय के पश्चात् प्रथम पचीसी माना है[2]। परन्तु इस सम्बन्ध में श्री जगदीश गुप्त ने अपने शोध प्रबन्ध में लिखा है कि ये ब्रज भाषा में रचित चार-छः पद स्वयं भालण के ही है या नहीं, इसके विषय में भी कोई प्रमाण नही मिलता इसलिए उनके आधार पर भी भालण के समय-निर्णय में कोई सहायता नहीं मिलती[3]। अब तक मिले प्रमाणों के आधार पर सुनिश्चित रूप से यही कहा जा सकता है कि यह कवि ई० सन् की १५ वीं शताब्दी में जीवित था और लच्छा प्रसिद्ध कृष्ण भक्त कवि था।

५. भीम:—

'हरिलीला-षोडशकला' तथा 'प्रबोध प्रकाश' के रचयिता कवि भीम के जन्म संवत् का यद्यपि कही उल्लेख प्राप्त नहीं होता, तथापि उनके रचना काल के सम्बन्ध

१—कवि चरित भाग १-२—के० का० शास्त्री पृ०--२२८

२—कवि चरित ,, के० का० शास्त्री पृ०--१५४

३—गुजराती और व्रजभाषा का कृष्ण काव्य—श्री जगदीश गुप्त पृ०--५

दूसरी तरफ राजस्थान में १५ वीं शती के पूर्व नाथ-सिद्धों का प्रभाव ही दृष्टि गोचर होता है। इतना ही नहीं १५वीं शती में भी या तो चारणों का वीररसात्मक चारण काव्य-साहित्य प्राप्त होता है या सिद्ध महात्माओं की वाणी के पद। मुख्य रूप से इस प्रदेश में भक्ति का प्रादुर्भाव १६ वीं शती, में ही हो सका है। विशेषत: हमारा ध्यान आकर्षित करने वाली बात यह है कि राजस्थान में सगुण भक्ति की धारा १७ वीं शती में जितना वेगगामी रूप धारण नहीं करती उतना उसके पश्चात् अर्थात् १८ वीं शती में करती है। यह १६ वी तथा १७ वीं शती में निर्गुण एवं सगुण भक्ति की धाराएं समान रूप से साथ-साथ बहती हुई आगे बढ़ रही थी। इस प्रकार गुजरात में जहाँ निर्गुण धारा के प्रवर्तक के उपरान्त सगुण धारा का प्रादुर्भाव तीव्र गामी रूप धारण करता है और पुन: उसका पर्यवसान निर्गुण रूप में हो जाता है वहाँ राजस्थान में स्थिति इसके प्रतिकूल दिखाई देती है।

इस प्रकरण में जब हम गुजरात तथा राजस्थान के मध्ययुगीन संत और भक्त कवियों का संक्षिप्त परिचय देने का प्रयत्न करते हैं तो एक बात और भी उल्लेखनीय दिखाई पड़ती है कि यद्यपि हमारे साहित्य के मध्य युग का प्रारम्भ सं० १४५० से हो जाता है और इस काल में भारत के अन्य भागों में संत भक्ति का प्रचार प्रसार पर्याप्त मात्रा में हो भी चुका था तथापि राजस्थान में एवं गुजरात में जिन संत भक्त कवियों का आविर्भाव हुआ है उनमें से अधिकांश का आविर्भाव सं० १५०० के बाद हुआ ज्ञात होता है।

गुजराती के संत भक्त कवि (१५ वीं शती)

१—नर्षि
२—नरसी मेहता
३—मयण
४—भालण
५—भीम
६—मांडण वंधारो
७—कर्मण मन्त्री

(१६ वीं शती)

१—केशवदास
२—नाकर
३—कीकुवसही
४—मीरां
५—भीम वैष्णव
६—चतुर्भुज
७—ब्रह्मदेव
८—वासण दास
९—वजियो
१०—जुगनाथ

११—उद्धव
१२—सुरदास
१३—वस्तो कोडियो
१४—काशी सुत शेध जी
१५—लक्ष्मी दास
१६—रामदास सुत
१७—संत
१८—फुङ
१९—गोपाल दास वणिक

(१७ वीं शती)

१—देवीदास गान्धर्व
२—रामभक्त
३—शिवदास
४—कृष्णदास
५—भाउ
६—भगवानदास कायस्थ
७—अविचलदास
८—हरजी सुत कहति
९—महावदास
१०—वैकुंठदास
११—परमानन्द
१२—नरहरिदास
१३—फांग
१४—पांचो
१५—माधवदास
१६—ईसरदास (इसर वारोट)
१७—धनराज
१८—नारायण
१९—अदोभक्त
२०—गोविन्द मोरसुत
२१—वूटिया
२२—गोपाल
२३—भाणदास
२४—प्रेमानन्द
२५—रत्नेश्वर
२६—प्राणनाथ
२७—आनन्दघनजा

~~~~~~~

१. नयर्षि—

इस कवि ने गुजराती में फागु काव्य की रचना की है। पाटण के पास घणेज गांव मे इस काव्य की रचना हुई है। इस कवि के नाम के सम्बन्ध में मतभेद है। श्री क०मा० मुन्शी इनका नाम नतर्षि होना बतलाते हैं। इसका आधार उनके अनुसार फागु काव्य का अन्तिम श्लोक है जो इस प्रकार है—

पौराणेः कीर्तितो देव त्वामेव भुवनाधिपः।
नर्तार्षः श्रीजगतवन्धो ज्ञानी ध्यानी गुणी कविः॥
~~~~~~~

परन्तु श्री के० का० शास्त्री के अनुसार यहाँ नतर्षि शब्द कवि का नाम नहीं परन्तु 'नमन करना' के अर्थ में आना होना चाहिये[1]। इसी फागु काव्य से मिलती जुलती एक रचना 'वसंत विलास' नामक मिली है। जिसकी हस्त प्रति सं०१५०८ की लिखी है। इन दोनों में भाषा पद भाव आदि में समानता है इसलिये दोनों का रचयिता एक ही होना सम्भव है। इसकी मध्यकालीन गुजराती है। इनके जन्म सम्वत् के सम्बन्ध में भी मत भेद है। श्री जगदीश गुप्त ने मुन्शी के मतानुसार इनका समय सं० १४९५ (सन् १४३९) माना है। परन्तु शास्त्री ने इनका समय सं० १४५० और १५०० के बीच माना है। ये नर्षि जैन कवि थे और कीर्तिमेरु के शिष्य थे। इन्होने अपने फागु में कृष्ण की रासलीला का सुन्दर वर्णन किया है। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि फागु अथवा वसन्त विलास के रचयिता नर्षि अथवा नतर्षि नाम के कवि थे जिसका आविर्भाव सं० १४५० और १५०० के बीच हुआ और जो जैन कवि होते हुए भी कृष्ण के परम भक्त थे।

२ नरसी मेहता—

भक्त नरसी का नाम गुजराती के आदि कवि के रूप में सुविदित है। इस कवि का जन्म सौराष्ट्र के एक प्राचीन सुप्रसिद्ध नगर जूनागढ़ के पास के एक ग्राम तलाजा में हुआ था। इनके जन्म संवत् के सम्बन्ध में दो मत हैं। एक तरफ कवि नर्मदाशंकर इच्छाराम देसाई, श्री कांटावाला तथा श्री के० का० शास्त्री प्रभृति 'वृद्धमान्य' समय को मानने वाले विद्वानों के अनुसार संवत् १४६९-७० इनका जन्म समय माना जाता है[3]। जब कि दूसरी तरफ श्री क० मा० मुन्शी तथा श्री नरसिंहराव दीवटिया प्रभृति विद्वानों ने नरसी का समय संवत् १५३० के बाद माना है। श्री जगदीश गुप्त ने भी क० मा० मुन्शी के मतानुसार उनका समय सं० १५३० के बाद ही मानना उचित समझा है। परन्तु श्री मुन्शी तथा अन्य विद्वानों के तर्क नरसी के काल को इतना पीछे ले जाने के लिये पूर्ण आधारभूत नही लगते। उनके तर्कों में केवल धारणा ही प्रमुख है जैसे श्री ध्रुव के नरसिंह का समय। इस लिये उनकी भक्ति पर चैतन्य का प्रभाव परिलक्षित होता है और उनके काव्य में राधा की कुछ सखियों के ऐसे नामो का उल्लेख है जो नाम चैतन्य के अनुयायी रूप

१—कवि चरित—के० का० शास्त्री पृ०—१०

२—गुजराती और ब्रजभाषा कृष्ण काव्य—डा० जगदीश गुप्त पृष्ठ—९

३—कवि चरित—के० का० शास्त्री

गोस्वामि की रचना विदग्ध माधव में भी आये हैं उधर श्री के०का०शास्त्री के उल्लेख में जो प्रभाव हैं वे ऐतिहासिक अधिक है। जैसे स० १५१२ में जूनागढ़ के राजा माँडलिक ने नरसी को कैदकर उनकी भक्ति की परीक्षा ली थी जिसका वर्णन नरसी ने स्वयं अपने शब्दों में किया है। इसके अतिरिक्त खंमात के एक कवि श्री विष्णुदास (संवत् १६२४ से १६५६) ने मामेरु की रचना की है। इससे यह प्रमाणित है कि १६०० सवत् तक नरसी कवि का नाम सौराष्ट्र से खंभात तक लोगों में प्रसिद्ध हो गया था। भक्ति के सम्बन्ध में भी नरसी पर चैतन्य अथवा अन्य किसी सम्प्रदाय का प्रभाव मानना उचित नहीं। क्योंकि गुजरात और सौराष्ट्र में नरसी के पूर्व भी अनेक भक्तों का अलग-अलग रूप से आगमन होता चला आया है। सौराष्ट्र के पश्चिमी किनारे पर भारत के प्रसिद्ध तीर्थ द्वारका में अनेक संत महात्मा आते रहते थे। इसके कारण भक्ति का प्रसार स्वाभाविक रूप से इस प्रदेश में होता रहा है। और नरसी की भक्ति भी ऐसी एक स्वयं प्रेरित भक्ति है। नरसी की रचना में कहीं-कहीं आख्यान पद्धति का जो रूप दिखाई देता है उसके आधार पर भी श्री मुन्शी ने उनको सं० १६०० के बाद रखना उचित माना है परन्तु श्री शास्त्री के अनुसार नरसी की अधिकांश रचनाएं हरिजीत और सवैया छंद में रचित हैं और आख्यान का रूप है वहाँ पर भी सीधी सरल आख्यान पद्धति है। उसमें प्रौढ़त्व नहीं हैं[1]। अत: इसे नरसी के पूर्ववर्ती जयदेव के गीत गोविन्द का प्रभाव माना जा सकता है। इसके कारण नरसी को वृद्धमान्य समय से पीछे ले जाने की आवश्यकता नहीं लगती।

इस प्रकार भक्त नरसी को १५ वीं शताब्दी का कवि मानना हमें उचित लगता है। उनकी भक्ति का स्वरूप उनका अपना विशिष्ट रूप है। जिसमें सगुण भक्ति तथा वेदांत के ज्ञान का भी सम्बन्ध है और इसीलिये नरसिंह को दी गई आदि कवि की उपमा भी उचित जान पड़ती है।

३. मयण—

इस कवि का जन्म सं० १४५० से १५०० के आस-पास होना माना गया है। यद्यपि इनके जन्म-समय का कोई स्पष्ट उल्लेख कहीं मिलता नहीं है तथापि इनके काव्य की भाषा के स्वरूप के आधार पर श्री क० मा० मुन्शी एवं श्री के० का० शास्त्री ने सं० १५०० के आस पास इनका जीवित होना बतलाया है। इनकी प्राप्त रचना मयण छन्द नामक काव्य है। जिसमें राधा कृष्ण के संयोग शृंगार का

१—कवि चरित--के० का० शास्त्री पृ०-४६

वर्णन है। काव्य की भाषा पर अवहट्ठ का प्रभाव है[1]। इस कवि का नाम मयण होने का प्रमाण स्वयं इनकी रचना मे उनके नाम का उल्लेख है जैसे:—

मयणवंय तु नत्थि इम।
तथा मानिनि मयण इम उच्चरई ॥

मयणवंय नाम के आधार पर इनका ब्राह्मण जाति का होना संभावित है।

४. भालण—

मध्यकाल के प्रसिद्ध एवं समर्थ आख्यानकार कवि भालण के जन्म काल के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। गुजराती भाषा को गुर्जर भाषा का नाम देने वाले ये प्रथम कवि थे[2]। श्री के० का० शास्त्री ने इनका जन्म संवत् १५१५-२० के लगभग माना है परन्तु इस विषय में वे स्वयं भी असंदिग्ध नहीं है क्योंकि उनके अनुसार भक्ति की कादम्बरी भाषा तीसरी भूमिका की भाषा अर्थात् सं० १६२५ के आस पास की गुजराती है इस प्रकार भालण के जन्म संवत् के बारे में स्वयं उन्हें शंका है। श्री रा० चू० मोदी ने भालण का समय सं० १४६० से १५७० सं० के बीच का माना है परन्तु इसका मृत्यु समय सं० १५४५—४६ देते हैं। श्री क० मा० मुन्शी ने इनका समय ई० सन् १४२६ से १५०० के बीच माना है। परन्तु वे स्वयं भी इस विषय में संदिग्ध है[3]।

श्री कृष्णलाल मो० झवेरी ने भालण का समय सं० १४६३ से १५६५ माना है। परन्तु इस तरह एक सौ वर्ष का दीर्घ काल निश्चित समय जानने में सहायक कैसे हो सकता है[4]?

इस सम्बन्ध में अन्तरिक्ष्य के रूप में भालण की रचना 'वीजूं' 'नलाख्याण' में एक पद मिलता है जिसमें रचना काल के संवत् का उल्लेख इस प्रकार है:—

पंदरसें पीसतालीस मांहि गाया नलगुण - ग्राम जी।
पद्य एकशत ने सात कर्या छे हरिजनना विश्राम जी ॥
(वीजूं नलाख्यान—२८)

इसके अनुसार उनके इस काव्य का प्रणयन सं० १५४५ में होना चाहिए। परन्तु इसके विषय में भी विद्वानों में शंका इसलिए है कि यह पद नलाख्यान की एक

१. कवि चरित—श्री के० का० शास्त्री पृ०--६१
२. कवि चरित—श्री के० का० शास्त्री पृ०--१५०
३. गुजरात एन्ड इट्स लिटरेचर—क० मा० मुन्शी पृ०--११६
४. गुजराती साहित्य ना मर्मसूचक स्तंभो- पृ०--४१

प्रति में मिलता है। जब कि दूसरी प्रति में नहीं मिलता। दूसरी बात यह है कि इस काव्य की रचना भालण ने ही की है अथवा अन्य किसी का रचा हुआ है इस सम्बन्ध में भी कोई प्रमाण नहीं है। इसलिए इस पद में निर्दिष्ट संवत् के आधार पर भी भालण की जन्म तिथि निश्चित नहीं की जा सकती। भालण के नलाख्यान की जो-जो प्रतियां मिलती हैं उनमें भाषा के रूप विभिन्न युगों के मिलते हैं इसलिए उसके आधार पर भालण की जन्म तिथि का निर्णय नहीं किया जा सकता। भालण के जन्म स्थान के विषयों में भी पहले मतभेद था। कुछ विद्वान सिद्धपुर को उसका जन्म स्थान मानते थे। परन्तु स्व० नारायण भारती द्वारा की गई खोज के आधार पर यह असदिग्ध रूप से मान लिया गया है कि भालण का जन्म स्थान पाटण था, ऐसा माना जाता है। हरिलीला तथा प्रबोध-प्रकाश का रचयिता भीम भालण का शिष्य था। इसका आधार यह है कि प्रबोध प्रकाश में गुरु का नाम उसने पुरुषोत्तम महाराज बतलाया है जो नाम भालण का ही था ऐसा कुछ लोगों का कहना है परन्तु इसके विषय में कोई ठोस ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है[1]।

श्री शास्त्री के अनुसार भालण के समय का निर्णय करने में दो आधार सबसे अधिक सहायक हैं एक तो भालण की 'कडवाबद्ध' आख्यान पद्धति और दूसरा उसके द्वारा रचित व्रज भाषा के कुछ पद जो कि अष्ट छाप के भक्त कवियों की सुप्रसिद्ध भाषा थी। इसके आधार पर उन्होंने भालण का समय सं० १५५० के बाद अर्थात् नरसी मेहता के वृद्धमान्य समय के पश्चात् प्रथम पचीसी माना है[2]। परन्तु इस सम्बन्ध में श्री जगदीश गुप्त ने अपने शोध प्रबन्ध में लिखा है कि ये व्रज भाषा में रचित चार-छः पद स्वयं भालण के ही हैं या नहीं, इसके विषय में भी कोई प्रमाण नहीं मिलता इसलिए उनके आधार पर भी भालण के समय-निर्णय में कोई सहायता नहीं मिलती[3]। अब तक मिले प्रमाणों के आधार पर सुनिश्चित रूप से यही कहा जा सकता है कि यह कवि ई० सन् की १५ वीं शताब्दी में जीवित था और लच्छा प्रसिद्ध कृष्ण भक्त कवि था।

५. भीमः—

'हरिलीला-षोडशकला' तथा 'प्रबोध प्रकाश' के रचयिता कवि भीम के जन्म संवत् का यद्यपि कहीं उल्लेख प्राप्त नहीं होता, तथापि उनके रचना काल के सम्बन्ध

१—कवि चरित भाग १-२—के० का० शास्त्री पृ०--२२८

२—कवि चरित ,, के० का० शास्त्री पृ०--१५४

३—गुजराती और व्रजभाषा का कृष्ण काव्य—श्री जगदीश गुप्त पृ०--५

में विद्वानों का कोई मतभेद नहीं है क्योंकि स्वयं कवि ने अपने दोनों काव्यों में उनकी रचना के वर्ष का उल्लेख कर दिया है जो शुद्ध एवं प्रामाणिक लगता है। हरिलीला-षोड़शकला की रचना सं० १५४१ में हुई[1]। प्रबोध प्रकाश की रचना संवत् १५४६ में हुई[2]। भीम के जन्म स्थान तथा निवास स्थान के सम्बन्ध में कोई विश्वसनीय प्रमाण नहीं मिलता परन्तु ऐसा माना जाता है कि उनका जन्म स्थान सौराष्ट्र में स्थित प्रभास पाटण था तथा उनके काव्य प्रणयन की भूमि गुजरात का सिद्धपुर नगर रही है।[3]

स्व० अंबालाल बुलाखीदास जानी के अनुसार भीम के पिता का नाम नरसिंह व्यास था। परन्तु श्री के० का० शास्त्री के अनुसार भीम, पुरुषोत्तम एवं नरसिंह व्यास नामक दो व्यक्तियों के सम्पर्क में भीम अधिक आये थे। और जैसा कि उनके प्रबोध प्रकाश के एक पद में लिखा है उस में दोनों से प्रसाद पाने का उल्लेख है। इसलिए दोनों उनके गुरू हों ऐसा भी सम्भव है अथवा दोनों से ज्ञान प्राप्ति की हो यह भी सम्भव है[4]। भीम कृष्ण के परम भक्त थे। विशेषत: द्वारिकाधीश के प्रति उनकी अनन्य भक्ति थी। उनका कहना है कि गुरु कृपा से ही उन्हें भक्ति एवं कवित्व शक्ति प्राप्त हुई है।

तु मई जाणी अक्षर युगति पाम्यु केशवतणी हूँ भगति।

(हरिलीला कला—१)

इस प्रकार १५ वीं शताब्दी में इस भक्त कवि ने अपने काव्यों से गुजराती साहित्य को समृद्ध किया है।

१—संवत् पंदर रुद्रनी बीस वरस ऊपरि एक च्यालीस।

(हरिलीला-फलश्रुति)

२—संवत् पंदर रुद्रनी वीस षट आगलां वरस च्यालीस।

(प्रबोध-प्रकाश अंक ६)

३—गुजराती साहित्य ना मर्म सूत्रक स्तम्भो पृ०-४१

४—अधीत सकल शास्त्र सिद्धान्त प्रेम अधिक ऊपरि वेदान्त।
श्री पुरुषोत्तम तणा प्रसाद कीधु एक कथा अनुवाद॥

(प्रबोध-प्रकाश अंक-६) तथा प्रबोध चंद्रोदय

स्याहं यथाबुद्धि विवेचनम्।
श्री नृसिंह प्रसादेन करिष्ये नातिविस्तरम्॥

(प्रबोध प्रकाश के आरम्भ से)

६. मांडण बंधारो:—

१५ वीं शती का यह वेदान्ती ज्ञानी कवि था जिसने आध्यात्मिक ज्ञान को अपनी रचनाओं का विषय बनाया। वह शिरोही का निवासी था। स्व० अंबालाल बुलाखीदास जानी ने उसे उना-शिहोर का बतलाया है। परन्तु शास्त्री के मतानुसार वह शिरोही का था। उसके जन्म काल तथा रचना काल के सम्बन्ध में भी कोई उल्लेख नहीं मिलता परन्तु विद्वानों के मतानुसार वह १५ वीं शती का कवि था। उसके द्वारा रचित एक काव्य "रुकमांगद कथा" की हस्त प्रति सं० १५७४ की प्राप्ति हुई है। उसके गुरु का नाम मदन जोशी था। जैसा कि वह स्वयं लिखता है—

जोशी मदनतणाँ शिशि पंडित सूरा देस।
आदरि ग्रन्थ सुणाविउं तु पाम्युं उपदेश॥

ज्ञान मार्गी भक्ति के सिद्धान्तों से परिपूर्ण उसकी प्रसिद्धि रचना प्रबोध बत्रीशी है। जिसमें आध्यात्मिक ज्ञान की चर्चा की गई है। उसकी रामायण के आधार पर रची गई एक अन्य रचना "रामायण" भी प्राप्त है। सारांश यह है कि गुजराती में काव्य के जिस तत्व ज्ञान के दर्शन हमें १७ वीं शती में अखा के पद में होते हैं। उसका मूल १५ वीं शती के माण्डण की रचनाओं में प्राप्त होता है।

७. कर्मण मंत्री—

इसका रचना काल सम्वत् १५२६ के लगभग माना गया है यद्यपि कवि के रूप में कर्मण मन्त्री का कोई विशिष्ट स्थान नहीं है तथापि हमारे इस प्रबन्ध में उसका नाम उल्लेखनीय इसलिए लगता है क्योंकि वह शास्त्री के मतानुसार राजस्थान का निवासी था और उसने काव्य की रचना गुजराती में की है। जैसा कि उसके साथ मन्त्री शब्द लगा हुआ है, उससे ऐसी सम्भावना है कि वह पद्मनाभ का सहयोगी रहा होगा और झालोर का मन्त्री भी रहा होगा। उसके काव्य की भाषा भी मध्यकालीन गुजराती उस भूमिका की है जो राजस्थानी से मिलती जुलती अर्थात् उसके निकट की रचना की थी। काव्य में राम तथा सीता के प्रति जो आदर एवं श्रद्धा का भाव व्यक्त हुआ है उससे उसका राम भक्त होना प्रतीत होता है।

रचना:—"सीता हरण अर्थात् राम कथा"

८. मीरां—

मीरांबाई का परिचय हमने राजस्थान के कवियों के विभाग में दिया है क्योंकि मीरां की जन्म भूमि राजस्थान में होने से वहाँ के कवियों के साथ उसका परिचय देना उपयुक्त लगता है । और यहाँ उसका उल्लेख कर देना इसलिये उचित जान पड़ता है कि वह गुजरात में रही तथा उसके काव्य गुजराती में भी प्राप्त एवं प्रसिद्ध है । अस्तु ।

१६ वीं शताब्दी (सं० १५५० से १६५०)

९. केशवदास—

कृष्ण क्रीड़ा काव्य के रचयिता प्रसिद्ध भक्त कवि केशव दास के जन्म संवत् का उल्लेख तो कही नहीं मिलता परन्तु उनके रचना काल का उल्लेख स्वयं उनके एक पद में उन्होंने किया है जो इस प्रकार है:—

तिथि संवत निधि दसका दोय ।
संवत्सर शोभने कृत होय ॥
दक्षिणायन शरद ऋतुसार ।
आशवनि शुक्ल पक्ष गुरुवार ॥
तिथि द्वादशी ब्रली वृद्धि योग ।
शत तारके त्रिप्रहरनो भोग ॥

पृ० सं० ३१०.

इसके आधार पर प्रथम पंक्ति का अर्थ विद्वानो ने भिन्न-भिन्न लिया है । मुन्शी के अनुसार 'दसका दोयनिधि' का अर्थ १५२९ होता है और कच्छ से प्राप्त कृष्ण क्रीड़ा काव्य की स० १७८७ की एक हस्तप्रत में भी संवत १५२९ ही लिखा है । इसके अतिरिक्त लीलुभाई चु० मजूमदार ने भी अपने कायस्थ कवियों नामक लेख मे यही साल अर्थात् १५२९ ही माना है तथा के० का० शास्त्री ने भी अपने ग्रन्थ कवि चरित की प्रथम आवृति में इसी संवत् को स्वीकार किया है । यदि केशवदास के रचना काल के इस संवत् को मान लिया जाय तो उन्हें १५ वी शताब्दी का कवि मानना होगा, परन्तु अब अधिकांश विद्वानों ने गणना करके ऊपर की पंक्ति 'तिथि संवत् निधि दसका दोय' का अर्थ निधि दस दोय के अर्थ मे अर्थात् १५९२ संवत् लिया है और इस गणना के आधार पर तिथि मास, पक्ष, योग जो केशव ने ऊपर के पद में बतलाये है वे भी सत्य निकलते हैं ! और इस नये संवत्

को अर्थात् १५९२ को के० का० शास्त्री ने अपने कवि चरित की नयी आवृति में स्वीकार भी कर लिया है[1]। मजूमदार ने जो सम्वत् दिया है उसका कोई प्रमाण नहीं दिया इसलिए वह विश्वसनीय नहीं माना जा सकता। जगदीश गुप्त ने भी अपने शोध प्रबन्ध में सम्वत् १५९२ ही स्वीकार किया है[2]। इसलिए इसके आधार पर केशव का समय १६ वी शताब्दी ही ठहरता है। केशव के कृष्ण क्रीड़ा काव्य में प्रयुक्त कुछ पद ब्रज भाषा के मिलते हैं जो इस बात को पुष्टि देते हैं क्योंकि ब्रज भाषा काव्य का प्रभाव गुजराती में १६ वी शताब्दी में ही दृष्टिगोचर होता है।

इस कवि ने अपने जन्म स्थान तथा माता-पिता के नाम का उल्लेख भी अपने काव्य में अन्यत्र किया है जो इस प्रकार है :—

सोरठ देश सोहामणो पावनपुर प्रभासः।
श्री सोमेश्वर शारदा अलि अंतर कैलास ॥
बालम ज्ञाति तिहाँ वसे, कुल करे कायस्त।
ते माँहे रदेराम नो, सेवक सेजे स्वस्त ॥
तेहनो सुतहुँ केशवदास,करूँ कीर्तन श्रीकमलावास।
विनय वीनती कहुँ कर जोड्य,
रखे कोय कवि काढो खोड्य ॥
(कृ० का० सर्ग—४०)

इस पद के आधार पर केशवदास सौराष्ट्र के प्राचीन नगर प्रभास पाटण के निवासी थे। उनके पिता का नाम रदेराम था और जाति के कायस्थ थे। इनकी माता का नाम तारादे था जैसा कि इस पंक्ति मे उल्लेख है :—

मांहे तारादे नो सुत कहे एक केशवदास।
(कृ० काव्य सर्ग—१५)

हमारी दृष्टि में केशवदास को १६ वी शताब्दि का ही एक भक्त कवि मानना उपयुक्त जान पड़ता है।

१०. नाकर—

भालण के पश्चात् गुजराती में आख्यानकार के रूप मे नाकर का नाम सुप्रसिद्ध है। नाकर कवि वणिक जाति का था। नाकर महाभारत के अनेक पर्वों को देशी

१—कवि चरित भाग १-२—के० का० शास्त्री पृ०—२२८
२—गु० और बृ० कृष्ण काव्य—डॉ० जगदीश गुप्त पृ०—२१

बद्ध भाषा में लिखने वाला प्रथम कवि माना गया है। नाकर के पूर्व शालिसूर नामक एक जन कवि ने महाभारत के विराट पर्व को देशी गुजराती भाषा में लिखा है[1]। नाकर के जन्म संवत् की प्रमाणिक जानकारी प्राप्त अद्यापि नहीं हुई है परन्तु उसके रचना-काल का संवत् उसकी प्रथम प्राप्त रचना हरिश्चन्द्राख्यान में मिलता है। जो इस प्रकार है :—

संवत् पंदर बोतेर अभ्यास बुधाष्टमी भादरवो मास[2]।

इसके अनुसार संवत् १५६२ में नाकर के जीवित होने का प्रमाण मिलता है। उसने रामायण की रचना सं० १६२४ में की है[3]। आज पर्यन्त उसकी सर्व प्रथम हरिश्चन्द्राख्यान ही मानी गयी है। वह बड़ौदा का निवासी था और दिशाकूल वणिक कुल में उसका जन्म हुआ था। उसके पिता का नाम विको बतलाया जाता है। इसका आधार उसकी यह पंक्ति है :—

दिशावालकुल शवतर्यो वीरक्षेत्र मां वास।
विकानो सुत विनवे नागर हरिनो दास॥

(हरिश्चन्द्राख्यान क० ३१—७)

के० का० शास्त्री के अनुसार वीरक्षेत्र वर्तमान बड़ौदा का ही नाम है[4]। नाकर स्वयं बड़ा निःस्पृह कवि था। वह आख्यानो की रचना करके मदन अथवा मदन सुत नामक किसी ब्राह्मण को दे देता था जो इनकी कथा गाकर आजीविका चलाता था। जैसा कि किसी पूर्व के पद से सूचित होता है :—

करी ग्रन्थ वाडव-करि सूंप्यु विश्वि पुण्य विस्तार रे।
वृद्धनागर कुलि नाम मदनसुत गाई थाई भवनिस्तार रे॥

(विशी पर्व ६५ - ४२)

आख्यानों की संख्या की दृष्टि से नाकर अपने पूर्व के अन्य कवियों से आगे बढ़ जाता है उसके लगभग १२ आख्यान ग्रन्थ तथा महाभारत के पर्व एवं कृष्ण विष्टि-भ्रमरगीत इत्यादि अनेक ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं जिनमें से कुछ प्रकाशित भी हो चुके हैं। इस प्रकार १६ वीं शताब्दि के प्रसिद्ध कवियों में नाकर का भी प्रमुख स्थान है।

---

१. कवि चरित—शास्त्री पृ०—२०३
२. बृ० काव्य दोहन-भाग ६, पृ०—७०६
३. बृ० काव्य दोहन-भाग ८ की प्रस्तावना पृ०—३५
४. कवि चरित—शास्त्री पृ०—२०४

जिसका रचना काल सर्व सम्मति से सं० १५७२ से, १६२४ के आस-पास माना जाता है।

११. कीकुवसही—

श्री शास्त्री ने विक्रम की १६ वीं शताब्दि के कुछ श्रेष्ठ कवियों में कीकुवसही एक है[1]। इसके जन्म काल के सम्बन्ध में भी कोई उल्लेख नहीं मिलता। परन्तु इसका रचना काल संवत् १५५० के आस-पास माना गया है। इसका आधार केवल यही है कि उसके द्वारा रचित दोनों काव्यों बालचरित एवं अंगद विष्टि की हस्तप्रत संवत् १६०० के आस पास की प्राप्त होती। संभव है इसका जन्म संवत् १५०० के पूर्व भी हुआ हो परन्तु इसकी पुष्टि के लिये किसी ठोस प्रमाण के अभाव में हमें भी श्री शास्त्री एवं डॉ० जगदीश गुप्त के मतानुसार इसे १६ वीं शती का ही कवि मानना उपयुक्त लगता है। भक्ति के विषय की इसकी रचना बाल चरित ही है जो कृष्ण की बाल लीलाओं को विषय बनाकर रची गयी है। इसे १६ वीं शती का कवि मानने का एक यह भी विश्वसनीय कारण लगता है कि उसके काव्य की भाषा मध्यकालीन गुजराती की तीसरी भूमिका के अन्तर्गत आती है जिसका प्रारम्भ सं० १५५० के आस-पास का माना गया है[2]। बालचरित में कीकु ने भागवत के प्रसंगों का बराबर अनुसरण किया है। कृष्ण की बाल क्रीड़ा का वर्णन तथा यशोदा की विह्वलता का वर्णन कवि ने इस काव्य में बहुत कलात्मक एवं रसप्रद ढंग से किया है।

यह कवि गणदेवी के पास अनावला नामक स्थान का निवासी था और उसके पिता गोदा वसही थे। इस प्रकार इसके बालचरित के रसप्रद वर्णनों को देखते हुए कीकु को एक अच्छा कृष्ण भक्त कवि मानने में कोई शंका नहीं रहती।

१२. भीम वैष्णव—

इस कवि के जन्म संवत् तथा जन्म स्थान के सम्बन्ध में कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती, परन्तु इसका जन्म गुजरात में ही हुआ, ब्रजभूमि के साथ भी इसका सम्बन्ध रहा अवश्य होगा, क्योंकि वल्लभाचार्य जी के पुत्र विट्ठलनाथ जी का यह परम अनुयायी ज्ञात होता है जैसा कि इस पद में उल्लिखित है :—

तमारा श्रीजजन, तणो जे दास छे।
तेहनो दास थाऊं, पूरो ए आस छे॥

१. कवि चरित—के० का० शास्त्री पृ०—१३७
२. कवि चरित—के० का० शास्त्री पृ०—१३७

वल्लभ प्रताप सदा, ओज वधामणां ।
भवो भव भक्ति दीजे, भीम ले मांगणां ॥

इसके आधार पर श्री के० का० शास्त्री ने इनका श्री विठ्ठलनाथ जी का समकालीन होना बतलाया है। और इनका काल भी सं० १५७२-१६३६ का रहा है सो भीम वैष्णव का रचना काल भी इसके आस-पास होना संभव लगता है[1]।

इसकी एक मात्र रचना 'रसिक गीता' प्राप्त होती है। इसके भिन्न-भिन्न प्रतों में भिन्न भिन्न नाम मिलते है परन्तु रचना एक ही है इसमें कोई शंका नहीं। इसी को उद्धवगीता, भीम गीता नाम भी दिया गया है। वस्तुत: भीम वैष्णव नामक यह कवि १६ वी शताब्दी का एक उत्तम कोटि का कृष्ण भक्त कवि हुआ है यह सुनिश्चित है।

१३. चतुर्भुज—

इस कवि की भी केवल एक रचना भ्रमरगीता अब तक प्राप्त हुई है जिसकी सं० १६२२ की हस्तप्रत श्री भोगीलाल सांडेसरा को प्राप्त हुई थी। यह प्रति कवि के किसी रतना नामक शिष्य ने की है। चतुर्भुज ने स्वयं अपनी भ्रमर गीता मे इसके रचनाकाल के प्रति संकेत करते हुए लिखा है।—

"छिहुतरि कीधुं छूटवा भेटवा श्री भगवान ।"

इसमें उल्लिखित शब्द छिहुतारि की संगति बैठाते हुए श्री सांडेसरा एवं श्री शास्त्री ने भी इनका संवत् १५७६ मानाहै[2]। इस समयको मानने का प्रमाण भ्रमरगीता की भाषा का स्वरूप भी है जो कि सं० १५७६ से अधिक प्राचीन नहीं है तथा इसकी रचना पद्धति भी उसी काल की रचनानुसार लगती है। श्री शास्त्री ने इस चतुर्भुज को भालण का पुत्र होने की संभावना प्रकट की थी परन्तु स्व० रा० चू० मोदी ने भालण के जीवन चरित्र सम्बन्धी अपनी खोज के आधार पर इस संभावना का खंडन किया है। यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि चतुर्भुज नामक कवि ने १६ वीं शती मे कृष्ण जीवन को लेकर भक्ति भाव पूर्ण भ्रमर गीता काव्य की रचना की है।

१४. ब्रहेदेव—

चतुर्भुज के समान इस कवि की भी एक मात्र 'भ्रमरगीता' शीर्षक रचना प्राप्त होती है। कवि ने स्वयं अपने काव्य में रचनाकाल का उल्लेख कर दिया है इस लिये इस सम्बन्ध में कोई शंका का स्थान नही रहता पद इस प्रकार है—

---

१. कवि चरित भाग १-२—के० का० शास्त्री पृ०--२८८

२. कवि चरित—के० का० शास्त्री पृ०-२२३

'संवत् सोलसौनव वैशाख सुदि एकादशी,
सोमवार ग्रन्थ सूंतु हरि कथा मारे मन वशी।
कविजन केरू कष्ट भागु चयंतामग्न करमाँहि आवीऊ;
महीदास सूत विहृदे किहि हरीकृपा करी मुनि काराविऊ ॥

इसी में कवि ने अपने पिता के नाम का भी उल्लेख किया है। अन्तिम पंक्ति के शब्द'महीदास-सूत'से पिता का नाम महीदास होना ज्ञात होता है। कवि की रचना 'भ्रमरगीता' में कृष्ण जीवन की कथा विशेषतः भागवत के दशमस्कन्ध के आधार पर उद्धव-गोपी संवाद का करुण प्रधान बड़ा सुन्दर वर्णन है। काव्य वास्तव में उच्च-कोटि का रसप्रद भक्ति काव्य है इसमें संदेह नहीं।

१५. वासणदासः—

इस कवि के जन्मकाल एवं रचनाकाल का भी कोई प्रामाणिक उल्लेख इसकी रचनाओं में नहीं मिलता। इसकी दो रचनाएँ अब तक प्राप्त हुई हैं। एक 'हरिचुआ-क्षरा' तथा दूसरी 'कृष्ण वृन्दावन राधारास' दोनों कृष्ण जीवन से सम्बन्धित हैं। इन काव्यों की हस्तप्रति संवत् १६४८ के आसपास की ज्ञात होने से इनका रचना काल सं० १५७५-१६०० का होना विद्वानों ने स्वीकार किया है[1]। इसके अतिरिक्त 'सुभ-द्रा नी कंकोतरी' एवं अन्य रचनाए भी इस कवि की होने की संभावना की गयी है परन्तु इस सम्बन्ध में कोई विश्वसनीय प्रमाण न होने से कुछ निश्चित कहा नहीं जा सकता। इतना तो अवश्य कह सकते हैं कि हरिचुआक्षरा तथा राधारास का रचयिता १६ वीं शताब्दी का एक कृष्ण भक्त कवि हो गया है।

हरिचुंआक्षरा चुंआक्षरा अर्थात् दोहरा छन्द में लिखा काव्य है। जिसमें वसंत ऋतु में कृष्ण एवं गोपियों की क्रीड़ा का सुन्दर वर्णन दिया है। दूसरा काव्य राधारास शार्दुलविक्रीडित छन्द में रचित एक रसप्रद काव्य है जिसके प्रारम्भ के कुछ पद अप्राप्य हैं। यद्यपि भाषा में शब्द प्रयोग के कुछ अशुद्ध रूप अवश्य मिलते हैं तथापि कवि को काव्य शास्त्र का रस एवं अलंकार का अच्छा ज्ञान प्रतीत होता है।

१६. वजियो—

प्राचीन हस्तप्रतियों में इसका नाम 'वजई' मिलता है जिसके आधार पर श्री शास्त्री ने इसका नाम 'विजय' होने की संभावना भी प्रकट की है। इसकी अपनी रचनाओं में जन्म काल अथवा रचना काल का कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता परन्तु

1—कवि चरित—के० का० शास्त्री पृ०—२६२

विद्वानों ने सं० १६०० के आस पास इसका होना स्वीकार किया है। इसकी लगभग सभी रचनाएँ राम के जीवन से सम्बन्वित हैं इससे इसका राम-भक्त होना प्रमाणित होता है। यद्यपि इसके रचित काव्य आख्यान रूप में हैं तथापि भगवान राम के प्रति कवि की श्रद्धा एवं भक्ति भाव काव्यों में यत्र - तत्र प्रकट हो ही गये हैं। उदाहरण स्वरूप—

(१) वेद पुराण शास्त्र हम बोलें राम उतारे पार।
वजियो कहै गाय सुणे टे पामे पदारथ चार॥
(रण जंग)

(२) पदबंध वावन तणो ए रच्यो गुणनाथ।
कवि कहे वजियो रामयस, मैं जप्यो जोड़ी हाथ॥
(सीता संदेश)

(३) वजिया मुखवाण गायुं गुणजगुण सती भगवानजी लेई वलिया॥

इस प्रकार इस राम कवि ने राम चरित्र को लेकर 'रणजंग', 'सीता सन्देश', 'सीतावेल' इत्यादि काव्यों की रचना की है। वस्तुतः वजियो १६वीं शती का सुप्रसिद्ध राम-भक्त कवि रहा होगा इसमें सन्देह नहीं।

१७. जुगनाथ—

यह भी कोई प्रसिद्ध कवि नहीं था। श्री शास्त्री के अनुसार सं०१५६६ उसका रचनाकाल माना गया है। हमारे प्रवन्ध में एक रामभक्त कवि के रूप में उसका स्थान महत्व का है। इस कवि ने सम्पूर्ण रामचरित केवल आठ पदों में ही लिखा है, जो उसकी एक बड़ी विशिष्टता मानी जा सकती है। कवि ने अपने काव्य का रचना संवत् स्वयं काव्य में दे दिया है इसलिये रचना केवल एक रामाष्टक ही है इस सम्बन्ध में किसी सन्देह को स्थान नहीं है।

१८. उद्धव—

यह कवि १५वीं शती के प्रसिद्ध आख्यानकार भालण का पुत्र वतलाया जाता है। इसके जन्म-काल के सम्बन्ध में भी कोई प्रामाणिक उल्लेख नहीं मिलता। विद्वानों ने भालण के समय के आधार पर इस कवि का १६ वीं शती के पूर्वार्ध में होना स्वीकार किया है। भालण का काल संवत् १५५० से १६०० का माना गया है। श्री शास्त्री के मतानुसार उद्धव ने अपनी रचना 'रामायण' का प्रारंभ २०-२५ वर्ष की अवस्था मे किया हो ऐसी संभावना है क्योंकि काव्य के एक पद में पिता को प्रणाम करके काव्य लिखने की बात का उल्लेख है। साथ ही काव्य 'श्री गुरुपद

पंकज ने सेवु, से जो किया है वह भी भालण की शैली का अनुसरण है। पद इस प्रकार है—

"प्रथमे प्रणमु सीतापति ने, जोडी ने बे पाण।
श्री गुरुपदपंकजने सेवु, आपो अविचल वाण॥
मधुसूदन आश्रम संन्यासी सनरी तेनु नाम।
पिताने प्रेमे प्रणाम करीने गावा हरिगुण ग्राम॥"

इस काव्य की रचना के समय उद्धव के पिता भालण का जीवित होना विद्वानो ने माना है।

उद्धव की केवल दो रचनाएँ प्राप्त होती हैं एक रामायण और दूसरी जो कवि के द्वारा पूर्ण न हो सकी बभ्रुवाहन आख्यान है। प्रथम रचना प्रकाशित हो चुकी है दूसरी अप्रकाशित है।

उद्धव राम भक्त कवि था। राम भक्ति संस्कार उसे अपने पिता से ही प्राप्त हुए जिनका पुत्र में विकास हुआ[1]। रामायण की रचना में उद्धव ने अपने काव्य मे कोई विशेष कवि प्रतिभा का परिचय नहीं दिया तथापि १६ व ती के एक रामभक्त कवि के रूप में उसका नाम उल्लेखनीय अवश्य है।

१९. सूरदास—

यह एक वैष्णव कवि था जैसा कि उसके नीचे के पद से स्पष्ट होता है—

सूरदास कवि कटि कर जोडी वैष्णव जनमो दास,
धनंजय भक्तनी कृपा करी नि कीधो छे अभ्यास।

उसका रचना काल सं० १६११ के आस पास है इसका उल्लेख कवि की रचना प्रह्लादाख्यान में मिलता है :—

संवत् सोलसोग्यार प्रमाण मास भादरवो खरो।
वदे पखवदि एकादशी हरिसुत वार आवो उद्देशी॥

उसकी तीन रचनाएं प्राप्त हैं जो क्रमशः सगोलैपुरी, प्रह्लादाख्यान तथा ध्रुवाख्यान है।

२०. काशीसुत शेषजी—

यह कवि खंभात का निवासी था एवं जाति का बुनकर (जुलाहा) था। इसके जन्म संवत् का उल्लेख तो प्राप्त नहीं होता परन्तु इसके काव्य रचना समय का

१—कवि चरित—के० का० शास्त्री पृ०—२०७

उल्लेख स्वयं कवि ने किया है, जिसके आधार पर इसका समय संवत् १६४७-४८ के आस पास माना जाता है। काशीसुत शेषजी एक कृष्ण भक्त कवि था जैसा कि इसके काव्यों से ही ज्ञात होता है। कृष्ण के जीवन को लेकर कवि ने 'रुक्मणीहरण' लिखा तथा महाभारत के विभिन्न पर्वों की कथा के आधार पर उसने 'विराट पर्व' 'सभापर्व' लिखे। इसके अतिरिक्त इसके रचित हनुमान चरित, अंबरिष कथा एवं प्रह्ललादाख्यान आदि आख्यान भी प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार इस कवि ने १६ वीं शती में कृष्ण भक्ति के काव्यों के साथ अन्य अनेक काव्यों की रचना की है ऐसा प्रतीत होता है।

२१. लक्ष्मीदास—

इस कवि का रचना काल स्वयं उसके उल्लेख के आधार पर सं० १६३६-७२ का ज्ञात होता है। डॉ० जगदीश गुप्त ने अपने प्रबन्ध में इसको १७ वीं शती का कवि माना है। इसका आधार कवि का काव्य "दसम स्कंध" है जिसका रचना काल संवत् १६७४ है। इसके अतिरिक्त इसी कवि की एक अन्य "ज्ञान-बोध" संवत् १६७२ की है। हमारे विचार से कवि के रचना काल का निर्णय करते समय उसकी अन्य रचनाओं के समय को भी ध्यान में लेना चाहिये न कि उसकी कृष्णपरक रचना जिससे हमारा सम्बन्ध है। शास्त्री ने भी लक्ष्मीदास को १६ वीं शती का कवि स्वीकार किया है।[1] और वही उपर्युक्त जान पड़ता है। लक्ष्मीदास वैष्णव कवि जान पड़ता है। 'चन्द्रहास" तथा दशमस्कन्ध के प्रारम्भ में वह गोविन्द की स्तुति करता है[2]। यह अहमदाबाद के निकट अहेमदावाद का निवासी था और अपने युग का एक प्रसिद्ध आख्यानकार था। इसकी प्रतीत रचनाओं में "चन्द्रहास आख्यान" तथा दसमस्कंध, तथा "ज्ञान बोध" आदि मुख्य हैं। गजेन्द्रमोक्ष की कथावस्तु भागवत् के आधार पर निर्मित है तथा चन्द्रहास आख्यान का आधार जैमीनीय अश्वमेधपर्व है। दशमस्कंध कृष्ण जीवन के प्रसंगों को लेकर भागवत के आधार पर लिखा काव्य है जिसमें कवि ने भागवत का प्रमाणिकता से अनुसरण किया है। गजेन्द्रमोक्ष मे भी कवि की भक्तिभावना की अभिव्यक्ति हुई है जैसा कि नीचे की पंक्ति से ज्ञात होगा—

हरिस्मरण हि दि मांहा कि कटि मति तूछ ।

(गजेन्द्र मोक्ष)

---

१. कवि चरित—श्री के० का० शास्त्री पृ०--३७६

२. कवि चरित—श्री के० का० शास्त्री पृ०--२८५

सारांश यह है कि लक्ष्मीदास को १६ वी शती का ही भक्त कवि मानना अधिक उपयुक्त लगता है।

२२ रामदास सुत—

संवत् १६४६ में रचित अंबरिप आख्यान नामक काव्य प्राप्त होता है जिसमे कवि का स्पष्ट नामोल्लेख नही मिलता है परन्तु कवि के नाम के स्थान पर रामदास सुत लिखा मिलता है। कला की दृष्टि से यह काव्य रचना वास्तव मे बहुत सुन्दर है। और कवि एक भक्तजन है इसका भी परिचय उसकी अभिव्यक्ति की शैली से ज्ञात होता है। जैसा इस पद से स्पष्ट हो जाता है।

महिमांय श्री गुरुपाय रजथी पूर्ण ए अज्ञान।
रामदास सुत मन्य आस रम हरि करि भक्ति प्रदान ॥

काव्य के रचना सवत् का उल्लेख भी कवि के शब्दों मे इस प्रकार है।

"स्वरित संवत् गणित दश इसी एकएक वीण संचाश ॥"

सारांश यह है कि कवि का नाम यद्यपि शंकास्पद है तथापि उसके काव्य की रचना सं० १६४६ में होना सुनिश्चित है।

२३. सन्त—

भगवान के कथासार के आधार पर गुजराती में काव्य की रचना करने वाले मध्यकालीन कवियों मे संत नामक किसी कवि की रचना भी प्राप्त होती है। इसके जन्मकाल तथा रचना काल का कही उल्लेख मिलता नही है। इसके नाम की प्रामाणिकता भी अभी अ ंदिग्ध नही है। परन्तु काव्य के प्रत्येक स्कन्ध के अन्त मे सन्त नामक उल्लेख मिलता है जिसके आधार पर कवि का नाम संत होने की संभावना की जाती है। यह कवि शास्त्री के मतानुसार भीम के पश्चात् और वल्लभभट्ट के पूर्व हुआ होगा[1]। काव्य की भाषा के आधार पर जो कि मध्यकालीन गुजराती की चौथी भूमिका की है, शास्त्री ने इसका काल विक्रम की १७ वी शताब्दी के पूर्वार्ध का होना बतलाया है। कविने एक स्थान पर अपने गुरु का नाम भट्ट वृन्द्रावन तथा गुरु के पिता का नाम कृष्ण बतलाया है परन्तु इससे उसके सम्बन्ध मे कोई विशेष प्रकाश नही पड़ता किन्तु इतना तो निश्चित् रूप से कहा जा सकता है कि १६ वी शती मे इस नाम का कोई कृष्ण भक्त कवि हुआ अवश्य होगा।

१— कवि चरित—के० का० शास्त्री पृ०--४१०

२४. फूढ—

डॉ० जगदीश गुप्त ने इस कवि को १६ वी तथा १७ वी शती के संधिकाल का कवि कहा है। जो उचित ही ज्ञात होता है। क्योंकि फूढ की एक रचना रुक्मिणी हरण की रचना संवत् १६५२ में हुई जैसा कि इस पंक्ति से स्पष्ट होता है—

श्रोताजन सांभलो, कविता कहे मतीमन्द।
संवत् सोलोसोबामन मुज उपजो आनन्द ।।

इसकी अन्य रचनाएं प्राचीन काव्य १७ वी शती के अन्तर्गत आती है जैसे पांडवविष्टि सं० १६७७, शृंगालपुरी सं० १६८२ तथा हरिश्चन्द्राख्यान सं० १६८३ में रचे गये। इसी के आधार पर श्री शास्त्री ने फूढ कवि का काल सं० १६५२ से १६८३ रखा है।

शृंगालपुरी पौराणिक आधार पर लिखा गया एक लोक कथात्मक काव्य है, उसकी एक परम्परा नाकर के समय से चलती आ रही है। फूढ ने भी शृंगाल पुरी की रचना करके उस परंपरा को आगे बढ़ाया है। रुक्मिणी हरण के काव्य में रुक्मिणी की सुन्दरता का बड़ा सुन्दर वर्णन है तथा हरिश्चन्द्राख्यान उसकी अन्तिम कृति प्रतीत होती है।[1] यह गुजरात के सूप नामक गांव का निवासी जाति का ब्राह्मण था और पिता का नाम गणेश था जैसा कि उसकी रचना में किये गये उल्लेख के आधार पर ज्ञात होता है।

२५. गोपालदास वणिक—

यह कवि गुजरात के कड़ी के निकट एक गांव रुपाल का निवासी था। इसके जन्म संवत् का भी कही उल्लेख नही है। परन्तु इसकी रचनाओ के आधार पर श्री के० का० शास्त्री ने इसका रचना काल संवत् १५३३-४८ का होना स्वीकार किया है। कहते हैं यह बचपन में गूंगा था और एक बार अहमदाबाद मे श्री विठ्ठलनाथजी ने इसे चबाया हुआ पान खाने को दिया जिसके प्रसाद स्वरूप इसे वाणी प्राप्त हुई और उसने श्री वल्लभाचार्य जी तथा श्री विट्ठलनाथजी एवं उनके पुत्रों का जीवन चरित्र लिखा जो शुद्धाद्वैत पुष्टिसंप्रदाय मे आज भी बहुत श्रद्धा से पढ़ा जाता है। इस कवि ने "भक्ति पियुष" नामक कोई काव्य

१—कवि चरित—के० का० शास्त्री पृ.-४१६

लिखा है परन्तु वह अप्राप्य है[1]। गोपालदास ने अपने एक आख्यान में ईश्वर की अखंडता एवं जाति की उत्पत्ति के सम्बन्ध में शुद्धाद्वैत सिद्धान्त के आधार बहुत सुन्दर वर्णन किया है। जिससे ईश्वर के प्रति उनकी भक्ति एवं उनके वेदान्त-ज्ञान का सुन्दर परिचय प्राप्त होता है। वास्तव में १६ वीं शताब्दी का यह कवि श्री विठ्ठलनाथजी का परम भक्त एवं शुद्धाद्वैत पुष्टिमार्गी सम्प्रदाय का परम अनुयायी प्रतीत होता हैं। उसका प्रसिद्ध ग्रन्थ "वल्लभाख्यान" है जिसकी अब तक ब्रजभाषा एवं संस्कृत में टीकाएँ भी लिखी जा चुकी हैं।

(सत्रहवीं शती)

२६. देवीदास गान्धर्व—

यह कवि पेटलाद के समीप सोजित्रा ग्राम का निवासी था। इसके रचना काल का उल्लेख स्वयं इसकी प्रसिद्ध रचना रुक्मिणी हरण में ही मिलता है जो सं० १६६० है। इस काव्य की हस्तप्रति-सं० १६७५ की मिलती है। इसने भागवत के कथानक के आधार पर अन्य काव्यों की रचना भी की है परन्तु सर्वाधिक प्रसिद्ध 'रुक्मिणी-हरण' ही प्रतीत होता है। यह कवि वैष्णव धर्मी कृष्णभक्त था। अपने काव्य का प्रारम्भ वह कृष्ण की स्तुति से करता है जैसे "रुक्मिणी हरण" में—

"प्रथमे प्रणमूं वैकुंठराय, शुक सनकादिक जेने ध्याय।"

तथा अन्य काव्य "रास पंचध्यायी" के प्रारम्भ में भी—

'मनवांछित पुरण सदा, दामोदर दयाल।
आरंभु उत्तम कथा तमो कृपा करो री दयाल॥

"रुक्मिणी हरण" काव्य में से अनेक विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले गीत आज भी गुजराती स्त्री-समाज में प्रचलित हैं[2]।

२७. राम भक्त—

भगवद् गीता के वेदांत सार तत्व को आधार बनाकर काव्य की रचना करने वाला यह प्रथम कवि था। हमारे विचार से इस कवि को ज्ञानी भक्त कवि कहना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है, जैसा कि अपने काव्य की एक पंक्ति में वह स्वयं कहता है :—

१—कवि चरित—के० का० शास्त्री पृ.-३६३

२—कवि चरित—के० का० शास्त्री पृ०-४२६

राम भगत कहे सांभलो श्री हरी रहीत कामना मे--
स्तुत करी वेदांत मत गीतानु ज्ञान ते उपर में कह्यु आक्षान ॥

गुजरात में श्री मद्भागवत् के अतिरिक्त इस के और भी काव्य प्राप्त हुए हैं जिनके नाम "अंबरिषआख्यान","कपिलमुनिनु आख्यान" "भागवत-एकादशस्कन्ध" तथा 'योग वाशिष्ठ' हैं। यद्यपि श्री शास्त्री के अनुसार इस कवि में अनुवादक के गुण विशेष एवं मौलिकता कम है[1] तथापि वेदांत ज्ञान के प्रति रामभक्त की विशेष रुचि होने से हमने इस ग्रन्थ में उसे स्थान देना उचित समझा है। इसके जन्म काल तथा स्थान के सम्बन्ध में कोई विशेष प्रमाण प्राप्त नहीं है। इतना है कि यह सं० १६६० में जीवित था।

२८. शिवदास—

यह कवि खंभात का निवासी था। इसके जन्म काल का उल्लेख प्राप्त नहीं होता, परन्तु इसकी रचनाओं के आधार पर शास्त्री ने इसका रचना काल विक्रम की १७ वीं शताब्दी अर्थात् सं०१६६७-७७ के आस पास का स्वीकार किया है। शिवदास शिवजी का भी भक्त था तथा एक वैष्णव के अनुसार कृष्ण का भी उपासक था इसने अपने जीवन काल में लगभग १२ काव्य कृतियों का प्रणयन किया है। परशुराम आख्यान में भगवान शंकर की स्तुति करते हुए लिखा है :—

सदाभक्त कामेश्वर केरो, गुरुनो पद महिमाय।
कहै शिवदास मुने चरणे राखो, स्वामी वैकुंठराय ॥

कृष्ण सम्बन्धी रचना में उसका बालचरित्र है गोपाल कृष्ण से भक्ति की याचना करते हुए उसने लिखा है:—

कहे शिवदास हूँ ताहरो बाल। सदा भक्ति आपो गोपाल ॥"

अन्य एक रचना "एकादशी माहात्म्य" मे भी हरि से भक्ति की कामना कवि ने इन शब्दों में की है :—

सदा भक्ति आप हरि त्यारे गुणकथे शिवदासजी।

यह शिवदास जाति से नागर था और इसके गुरु का नाम भूधर व्यास था जिसका उल्लेख इसकी अनेक रचनाओं में मिलता है। इसकी अन्तिम रचना चंडी आख्यान है। जिसकी रचना के प्रारम्भ में भी वह ईश्वर का स्मरण प्रथम करता है :—

---

[1] —कवि चरित—के० का० शास्त्री

"चंडी पाठ करत आक्षांन पथंम समरया श्री भगवान ॥"

इस प्रकार १७ वीं शती का यह शिवदास यद्यपि अपने समकालीनों की तुलना में कवि के रूप में इतना प्रखर नहीं होगा तथापि वह एक परम भक्त अवश्य ज्ञात होता है।

२९. कृष्णदास—

इसी नाम के अनेक कवि गुजराती मध्यकालीन साहित्य में मिलते हैं और विश्वसनीय प्रमाण के अभाव में कौन सी रचना किस कवि की है इसका निर्णय विद्वानों के लिये कठिन सा हो गया है। परन्तु यहाँ जिस कवि का परिचय दिया जा रहा है वह कोई शिवदास सुत कृष्णदास है जिसका काव्य रचना काल सं० १६७३ के आस पास का माना गया है[1]। इस कवि की अनेक कृतियां प्राप्त हुई हैं जिनमें "सुदामा चरित" (संवत् १६७३) मामेरू, हुँडी, चन्द्रहास आख्यान, रुक्मिणी विवाह, सुधन्वाख्यान, अंबरिषाख्यान इत्यादि मुख्य हैं। सुदामा चरित में रचना काल का उल्लेख स्वयं कवि ने इस प्रकार किया है:—

संवत् सोल त्रोहोत्तरो वरष भादरवा मास।
शुक्लपक्ष दीन नवमी शनिवार कीधुं रास॥

(कडवुं १५ मुं)

यह कृष्ण भक्त कवि था। हुँडी काव्य में द्वारका का वर्णन कवि ने किया है और दामोदर का स्मरण स्थान स्थान पर हुआ है। इस प्रकार इन प्राप्त रचनाओं के आधार पर १७ वीं शती का एक प्रसिद्ध कवि प्रतीत होता है।

३०. भाउ—

यह कवि सुरत का निवासी था एवं जाति औदिच्य ब्राह्मण। इसके जन्म संवत् का उल्लेख कहीं प्राप्त नहीं होता परन्तु रचना काल के उल्लेख काव्य के अन्त में मिलते है। इस कवि के तीन काव्य प्राप्त हुए है जिनमें से पांडव विष्टि का रचना संवत् १६७५ है। इसके आधार पर शास्त्री ने इस कवि को सं० १६७५ से १६७८ के लगभग होना स्वीकार किया है[2]। इसके अतिरिक्त अन्य काव्यों मे द्रोण पर्व तथा उद्योग पर्व मिलते है। सारांश यह है कि इसने महाभारत के कथानक के आधार पर अपनी रचनाओं का सृजन किया है। पांडवविष्टि में विशेष रूप से कृष्ण जीवन का वर्णन है। काम की दृष्टि से इसके काव्य में कोई विशिष्टता

१—कवि चरित—के० का० शास्त्री पृ०—४५२
२—कवि चरित—के० का० शास्त्री पृ०—४५८

न होने पर भी प्रसंगो के चित्रण में रसिकता अवश्य है। इस प्रकार १७ वीं शती के कृष्ण काव्य के प्रणेता कवियों में भाउ का भी स्थान आवश्यक माना जा सकता है।

३१. भगवानदास कायस्थ—

यह कवि सूरत का निवासी था एवं जाति का कायस्थ। इसका जन्म संवत् १६८१ में हुआ था तथा अवसान सं० १७४१ में[1]। वह पुष्टि मार्गी वैष्णव सम्प्रदाय का अनुयायी था। इसके सम्बन्ध मे सर्वाधिक महत्व की उल्लेखनीय बात यह है कि इसके काव्य में गुजराती के साथ हिन्दी के पद भी प्राप्त होते हैं। ईश्वर पर इसे पूर्ण श्रद्धा थी। अपने जीवन में यह एक सामान्य निर्धन अवस्था में से दीवान के पद तक पहुँचा था। हिन्दी के एक पद का उदाहरण देखिये:—

अब मोको राख लियो गोपाल ....।

अब दास भगवान शरण आयो राख गिरधारी लीला॥

यह कवि ईश्वर का परम भक्त होने के साथ ही साथ ज्ञानी भी बहुत था।[2] यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि यह कवि भगवानदास गुजरात के उन कवियों में से एक है जिन्होंने ब्रज और गुजराती दोनों भाषाओं मे रचनाएँ की है।

३२. हरिजीसुत काहान—

सं० १६६३-६५ के लगभग इस नाम का एक भक्त आख्यानकार कवि हुआ है। इसने महाभारत की कथा वस्तु के आधार पर अश्वमेध पर्व के सभी आख्यानों को एक साथ मिलाकर काव्य की रचना की है। यह दामोदर नाम के गुरु का शिष्य प्रतीत होता है जिसके नाम का उल्लेख अपने काव्य मे वह अनेक स्थानों पर करता है। नीचे उद्धृत की गई कुछ पक्तियो से उसका एक परम भक्त होना प्रमाणित होता है:—

'काहानजी केहे हरि कृपा थी साद शुभ आनन्द।'

तथा 'श्री दामोदर गुरु ध्याइए निर्मल हरिगुण गाइए॥'

साराश यह कि काहान कोई प्रतिभाशाली कवि नही था परन्तु वह हरि का परम भक्त अवश्य रहा होगा।

३३. महत्वदास—

विक्रम की १७ वी शताब्दी के उत्तरार्ध में यह एक वैष्णव भक्त हुआ यद्यपि

१—लीलूभाई च्र० मजमूदार—पाँचवीं गुजराती सा० परिषदनो अहेवाल

२. कवि चरित—के० का० शास्त्री पृ०-४६८

इसका काव्य इतना उच्च कोटि का नहीं है फिर भी एक दृष्टि से इस कवि की रससिन्धु नामक रचना का बड़ा महत्व है। उसमें कवि ने गद्य-पद्य की मिश्रित शैली का प्रयोग किया है तथा उसमें गुजरात में वैष्णव धर्म के प्रसार का इतिहास बड़े सुन्दर ढंग से दिया है। इस कवि के सम्बन्ध में और कोई जानकारी प्राप्त नहीं है। उसके अतिरिक्त इसकी तीन रचनाएं और हैं जो इस प्रकार हैं—

१—गोकुलनाथजीनो विवाह, २-रससिन्धु ३-रसाभय। हमारे विषय में किसी अंश तक सम्बन्धित रचना रससिन्धु है।

३४. वैकुंठदास—

यह १७ वीं शती का एक कृष्ण भक्त कवि था। इसके सम्बन्ध में विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती। परन्तु भाषा के स्वरूप के आधार पर शास्त्री ने इसे १७ वीं शती में होना स्वीकार किया है जो उपयुक्त भी लगता है। अपने काव्य के प्रारंभ में वह कृष्ण को वन्दन करता है यह गोकुलनाथ जी का शिष्य है और इसी लिये काव्यारंभ में अपने गुरु को भी वन्दन कर रचना का सृजन करता है। जैसे—

प्रथमि प्रणमूं श्री गोकुलचंदनि, रसिक शिरोमणि आनंद कदनि ॥

रचना में केवल इसका रचित एक काव्य रासलीला प्राप्त है जो भागवत की रासपंचाध्यायी के आधार पर रचित है।

३५. परमाणंद——

यह सौराष्ट्र के दीव वेट का निवासी था। जाति से ब्रह्मक्षत्रिय था। इसके जन्म संवत का उल्लेख तो नहीं प्राप्त होता परन्तु इतना निश्चित है कि सं० १६८९ में वह जीवित था। इस कवि ने भागवत के आधार पर हरि रस नामक काव्य की रचना की है। जिसमें रचना काल का भी उल्लेख है। जैसे--

संवत् सोला नव एसीए·················।

अपनी रचना मे इस कवि ने लोक भोग्य प्रसंगों के चित्रण मे विशेष ध्यान दिया है। कृष्ण की निर्दोष लीलाओं का वर्णन बहुत सुंदर हो सका है। १७ वीं शती का यह कवि निःसंदेह एक अच्छा कृष्ण भक्त कवि था।

३६. नरहरिदास—

१७ वीं शती का यह ज्ञानी भक्त कवि था और वह वड़ोदा का निवासी था। इसके जन्म संवत् के विषय में भी कहीं कोई प्रामाणित उल्लेख प्राप्त नहीं

होता परन्तु यह प्रसिद्ध ज्ञानी भक्त "अखा" का समकालीन एवं उसका गुरु भाई था इतना अवश्य कहा जा सकता है। इस कवि ने अपनी रचनाओं में रचित संवत् का उल्लेख अवश्य किया है जिसके आधार पर विद्वानों ने इसका समय संवत् १६७२ से सं० १७०० के लगभग स्वीकार किया है।

रचनाओं में हस्तामलक, ज्ञान गीता, वासिष्ठसार गीता, भागवद्गीता आदि प्रमुखतः प्राप्त है। जिसमें ज्ञानगीता का रचना काल संवत् १६७२ दिया है।

विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि यह एक संत के समान ईश्वर की उपासना ब्रह्मरूप में करता है और उसे निरंजन रूप से देखता है। इस प्रकार १७ वीं शती के इस ज्ञानमार्गी कवि के काव्य का मुख्य विषय ज्ञान एवं ब्रह्मचर्चा ही देखा जाता है।

३७. फाँग—

इस कवि की 'कंसोद्धरण' नामक रचना प्राप्त होती है। यह बीजापुर के समीप जाडोल ग्राम का निवासी था। जाति का ब्राह्मण था। इसके जन्म संवत् का उल्लेख प्राप्त नहीं है। परन्तु रचना काल सं० १७५६ है जिसके आधार पर हम इसे १७ वीं शती का एक भक्त कवि मान सकते हैं।

कंसोद्धरण काव्य की रचना भागवत के दशमस्कंध की कथा के आधार पर की है। इसके अतिरिक्त इसके सम्बन्ध में कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं है।

३८. पाँचो—

इस कवि का काव्यकाल भी १७ वीं शती ही माना गया है। यह एक शिव-भक्त था[१]। इसकी एकमात्र उपलब्ध रचना 'कुंडला हरण' है। जिसमें किसी राजा की कथा के माध्यम से शिवभक्ति का माहात्म्य समझाया गया है। इसके जन्म, स्थान, संवत् इत्यादि के संबन्ध में कोई उल्लेख प्राप्त नहीं है। परन्तु वह अब्राह्मण था इतना अवश्य ज्ञात होता है। श्री शास्त्री के अनुसार यह कवि संवत् १७०७ के पूर्व हुआ था।[२]

३९. माधवदास—

यह कवि सूरत का निवासी कायस्थ था। अपने रचना काल का उल्लेख अपने काव्य में स्वयं उसने किया है जो इस प्रकार है—

---

१. कवि चरित—के० का० शास्त्री　　पृ०—४१७

२. कवि चरित—के० का० शास्त्री　　पृ०—४१५

संवत् सत्तर पांच्य ने………… …॥

उसने जन्म संवत् का उल्लेख नहीं किया परन्तु अपने जन्म स्थान, जाति इत्यादि का परिचय अवश्य दे दिया है। इसलिये उसके सम्बन्ध में संदेह का स्थान नहीं रहता। माधवदास भी कृष्णभक्त था और उसके काव्य की रचना भागवत के दशमस्कंध के आधार पर हुई है।

रचना दशमस्कंध के क्रमानुसार होते हुए भी स्वतन्त्र रूप से की गई है। आदिपर्व की रचना भी मिलती है।

४०. ईसरवारोट—

शास्त्री के मतानुसार यह १७ वीं शती के प्रारम्भ का कवि है। डॉ० मेनारिया ने इनका जन्म संवत् १५९५ बतलाया है जिसके प्रमाण में यह दोहा प्रसिद्ध है—

पँदरासौ पिचाणवे जनम्यां इसरदास।
चारण वरण चकार में उण दिन हुवो,
ये जोधपुर राज्यान्तर्गत उजास॥

ये भाद्रेसे ग्राम के निवासी थे।[1] इतना अवश्य उसकी रचना के आधार पर स्पष्ट होता है कि वह एक ज्ञानमार्गी भक्त कवि था। उसकी रचना "हरिरस" प्राप्त हुई है जो ईश्वर का स्तुति काव्य है। शास्त्री के अनुसार ईसरबारोट मूलतः भीमडी गांव के निवासी थे परन्तु बाद मे जामनगर आकर बसे थे।[2] परन्तु इस विषय में उनके पास कोई प्रमाण नही है इस लिये डा० मेनारिया के मतानुसार उनका राजस्थान का होना सिद्ध होता है और वे वहीं से जामनगर आकार रहे यही प्रतीत संगत है जिसमें दोनों विद्वानों मे भी कोई मतभेद नहीं। जामनगर के जाम साहब के दरबार में पीताम्बर नामक एक महापंडित था इसी को गुरु कहा जाता है। प्रारम्भ में यह जाम रावल की प्रसंशा के काव्य बना कर उन्हें प्रसन्न करता था परन्तु एक बार गुरु के उपदेश से उसकी आंखें खुल गई और तब से वह ब्रह्म की स्तुति में काव्य का सृजन करने लगा। कहा जाता है कि ये अपने जीवन के अन्तिम समय में वापस भाद्रेसे चले गये थे और वहीं सं० १६७५ के लगभग ८० वर्ष की अवस्था में इनका स्वर्गवास हुआ। इनके चमत्कार के सम्बन्ध में अनेक दन्त-

१. राजस्थानी भाषा और साहित्य—डॉ० मोतीलाल मेनारिया। पृ०--१५२

२. कवि चरित—के० का० शास्त्री पृ०—२८५

कथायें गुजरात एवं राजस्थान में भी प्रचलित हैं। इनकी अलौकिक चमत्कारी शक्ति के कारण ही इसरा परमेसरा के नाम से इनका आदर करते थे। शास्त्री ने इनकी केवल "हरिरस" नामक रचना का उल्लेख किया है परन्तु इसके लगभग बारह ग्रन्थ रचे हुए मिलते है[1] जिनके नाम इस प्रकार हैं :—

रचनाएँ:—हरिरस, छोटा हरिरस, बाललीला, गुण भागवत हंस, गरुडपुराण गुण आगम, निन्दा स्तुति, देवियाण, केराट, रास कैलास, सभापर्व, हालां झालां रा कुंडलिया।

इनमें से हरिरस एवं हालां झालां रा कुंडलिया दो रचनाएं बहुत लोकप्रिय हैं। हरिरस भक्ति भाव की सुन्दर रचना है। अन्य ग्रन्थों में इसरदास ने भागवत महाभारत आदि की वस्तु के आधार पर काव्य रचना की है।

हमारे लिये इस भक्त कवि का महत्व इस दृष्टि से भी अत्यन्त महत्व का है कि गुजरात एवं राजस्थान दोनों प्रदेशों में इनको एक भक्त कवि, महात्मा के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है।

विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि यह ज्ञानमार्गी भक्त था। उसकी शैली चारणी शैली है तथा भाषा में भी अरबी फारसी के शब्द प्रयोग यत्र - तत्र मिलते हैं[2]।

रचना—केवल 'हरिरस' प्राप्त है जो तत्वज्ञान से पूर्ण एक ज्ञानी भक्त का एक ईश्वर स्तुति काव्य है।

४१. धनराज:—

शास्त्री के मतानुसार यह कवि १७ वीं शती के प्रारम्भ में हुआ था इसका प्रमाण उसकी रचनाओं की हस्त प्रतियाँ हैं जो भाषा के स्वरूप को देखते हुए संवत् १६५० के बाद की तो हो ही नहीं सकती[3]। धनराज भी एक ज्ञान मार्गी भक्त कवि था। उसके काव्यों का विषय अधिकांश वेदांत ज्ञान, ब्रह्म स्वरुप, संसार की असारता इत्यादि हैं। उसके रचित काव्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वह एक अच्छा विद्वान पंडित था और अपने ज्ञान को सरल भाषा में जनता के सम्मुख रखने की उसकी अभिलाषा थी। सरलता के साथ-साथ उसकी शैली गांभीर्य

---

१. राजस्थानी भाषा और साहित्य—डॉ०मोतीलाल मेनारिया पृ०—१५५

२. कवि चरित—शास्त्री पृ०—२८५

३. कवि चरित—शास्त्री पृ०—४०७

परिपूर्ण है जो मध्यकालीन सततोय में एक नयी शैली की परिचायक है[1] उसकी रुचि वैराग्य के प्रति विशेष प्रतीत होती है।

उसकी अन्य रचनाएं इस प्रकार हैं :—

खांडणां, गिरुआ गणपति, चतुरवदननु दास, वेद पुराण, वाणी इत्यादि।

४२. नारायण—

इस कवि के जन्मकाल, स्थान इत्यादि के सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक उल्लेख कहीं पाया नहीं जाता। शास्त्री ने इनको १७वीं शताब्दी के पूर्वार्ध का कवि माना है जो उसकी रचना की प्रतिलिपि के आधार पर उपर्युक्त जान पड़ता है[2]। इसकी "नवरस" नामक रचना प्राप्त है जिसकी हस्तप्रति सं०-१७३३-की है। प्रस्तुत काव्य में कृष्ण-राधा के विहार का विषय है और कवि ने बड़े सुन्दर ढंग से विभिन्न वर्णनों के माध्यम से नवरसों का प्रतिपादन किया है। इसके सम्बन्ध में अन्य कोई रचना भी प्राप्त नहीं है परन्तु इतना अवश्य है कि नारायण १७ वीं शती का एक कृष्ण भक्त कवि था।

"नवरस" में कृष्ण की जीवन कथा को आधार बनाकर विशेष रूप से राधा का विरह वर्णन बड़े करुणात्मक शैली से किया है।

४३. अखो भक्त—

गुजरात के वेदांती ज्ञान मार्गी भक्त कवियों में अखा का स्थान सर्वोपरि है इसमें कोई सन्देह नहीं। प्रस्तुत प्रबन्ध में अखा का स्थान इसलिये भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि उसने गुजराती एवं हिन्दी दोनों भाषाओं में अपनी वाणी का सृजन किया है। अखा के जन्म सवत् के सम्बन्ध में दो मत है। के० का० शास्त्री के अनुसार अखा का जन्म सं० १६४६ है जब कि अन्य मत उसका जन्म सं० १६५३ बतलाता है। इस प्रकार अखा १७वीं शती का एक प्रखर ज्ञानी कवि था। ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर अखा के जीवन की अनेक घटनायें, जिनका उल्लेख स्वयं उसके काव्य-साहित्य में यत्र-तत्र मिलता है यह सिद्ध करती है कि उसका जीवन काल संवत् १६४६ से सं० १७०५ के लगभग रहा होगा। जहांगीर के शासन-काल में अखा जीवित था।

अखा का जन्म स्थान जेतलपुर गांव है जो कि अहमदाबाद के पास ही है। परन्तु अखा के पिता अपने रोजगार के सम्बन्ध में अहमदाबाद में आकर बस गये

१—कवि चरित—के० का० शास्त्री पृ०—४०६

२—कविचरित—भाग १-शास्त्री पृ०—५११

थे। जाति से वह सुतार था और काम भी वह आभूषण बनाने का ही करता था।

भक्ति की ओर प्रवृत्ति करने वाली अखा के जीवन की वे दुःखद घटनायें हैं। जिन्होंने उसको जगत और जीवन के प्रति उदासीन कर दिया एवं उसके अन्तर में वैराग्य के अंकुर प्रस्फुटित किये। अखा की माता तो उसके बाल्यकाल में ही स्वर्ग को सिधार चुकी थीं एव उसकी युवावस्था का अन्त आते-आते तो उसके पिता, बहन तथा पत्नी भी उसे इस संसार में एकाकी छोड़कर चल बसे। प्रसिद्ध है कि अखा का प्रथम विवाह तो उसकी छोटी अवस्था में ही हो गया था। प्रथम पत्नी के अवसान के बाद दूसरी बार विवाह किया परन्तु भाग्य की विडंबना देखिये कि उसके जीवन मे संसार का सुख ही नहीं लिखा था। दूसरी बार भी उसकी पत्नी का देहान्त कुछ समय में ही हो गया।

अखा की एक धर्म की बहन थी। जिसके एक बार के सामान्य सन्देह ने अखा के आहत हृदय पर और अधिक आघात पहुँचाया। अखो अहमदाबाद में जहाँगीर की टंकसाल में सिक्के ढालने का कार्य भी कुछ समय के लिये कर चुका था परन्तु उसके विद्वेषियों ने वहाँ भी शान्ति से टिकने नहीं दिया। साराँश यह कि जीवन की इन विचित्र घटनाओं ने धीरे-धीरे अखा को वैराग्य की ओर प्रवृत किया और अन्त में वह अहमदाबाद छोड़ कर गुरु की खोज में गोकुल-काशी की तरफ चल पड़ा।

अखा की इस यात्रा के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों का मत यह है कि वह गोकुल नाथ जी से मिलने जयपुर गये, परन्तु शास्त्री का यह दृढ मत है कि वह जयपुर नहीं अपितु गोकुल ही गया था[1]।

अखा के गुरु के नाम के सम्बन्ध में भी मतभेद है। उसकी वाणी में अनेक स्थानों पर ब्रह्मानन्द शब्द का प्रयोग मिलता है उसके आधार पर कुछ विद्वानों का मानना है कि ब्रह्मानन्द अखा के गुरु का नाम है।[2] परन्तु शास्त्री के अनुसार इस शब्द का प्रयोग वह ब्रह्म के आनन्द के अर्थ में करता है, और यह बात उपयुक्त भी जान पड़ती है जैसे:—

१. ब्रह्मानन्द सागरमाँ फीलतां नव जाणयु ते दिन ने रात।
तथा २. ब्रह्मानन्द, स्वामी अनुभव्यो रे जग भास्यो छे ब्रह्माकार ?
यहाँ ब्रह्मानन्द ब्रह्म के आनन्द अर्थ में ही ठीक बैठता है।

---

१. गु० सा० मार्ग स्तम्भो—अखा नी वाणी।
२. कवि चरित—शास्त्री पृ०–५६५

अखा के गुरु के सम्बन्ध में एक बात तो सर्वसम्मति मान्य है कि उसने काशी में मणि कर्णिका घाट पर किसी सन्त पुरुष से ज्ञान की प्राप्ति की थी। और उसके प्रति अखा की वाणी में अनन्य श्रद्धा तथा आदर की भावना व्यक्त हुई है। इस लिये अखा के गुरु वही हो सकते हैं। यद्यपि उसके नाम का उल्लेख नहीं प्राप्त होता। अखा की अनेक रचनायें प्राप्त हैं। कई प्रकाशित भी है। परन्तु उनमें अखेगीता सर्वाधिक प्रसिद्ध है जिसका रचना काल स०१७०५ है। अखा वेदांती ज्ञानमार्गी कवि था। उसकी वाणी में कबीर के समान ही ब्रह्म के साक्षात्कार की अनुभववाणी है, इसकी वाणी में संसार की नश्वरता, ज्ञान प्राप्ति के प्रति अनुराग तथा दर्शन की तन्मयता और छटपटाहट पायी जाती है। इस विषय में अखा की वाणी गुजराती साहित्य में एक अपूर्व देन है। ज्ञानी भक्त होते हुए भी अखा पर वैष्णव भक्ति का प्रभाव था। कहते हैं प्रारंभ में गोकुल नाथ जी से उसने वष्णव शिक्षा ही ली थी परन्तु उससे उसके ज्ञान पिपासु अन्तःकरण को संतोष नहीं हुआ जो उसे काशी के गुरु से ज्ञान प्राप्ति के पश्चात हुआ।''

रचनाएँ:—उसकी रचनाओं में अखेगीता, अनुभवबिंदु, कैवल्यगीता, गुरुशिष्यसंवाद, चित्तविचार संवाद तथा अनेक कवित्त, छप्पय, चौपाई, साखियाँ आदि प्राप्त हैं।

४५. बूटियो—

यह भी अखा की भाँति ही एक वेदांती ज्ञानमार्गी भक्त कवि था। इसके जन्मकाल तथा रचना काल के सम्बन्ध में भी कहीं कोई उल्लेख नही प्राप्त होता, परन्तु शास्त्री के अनुसार यह १७ वीं-१८ वीं विक्रम शताब्दी के संधिकाल का कवि था[१]। उसके काव्य की कोई संपूर्ण कृति प्राप्त नहीं होती और फुटकर पद भी बहुत कम संख्या में ही मिले हैं। वास्तव मे प्राप्त अल्प पद ही उसके वेदांत ज्ञान एवं वैराग्य भक्ति को प्रमाणित करने में पर्याप्त हैं। प्रसिद्ध है कि अखा के समकालीन चार कवि ज्ञानमार्गी कवि थे। जिनमें से बूटियो भी एक था। अन्य दो गोपाल एवं नरहरि थे।

रचना—फुटकर ज्ञान के पद जिनमें से बारह पद उपलब्ध और प्रकाशित है। उसकी भाषा सरल तथा उसमें भावों की अभिव्यक्ति ज्ञानमार्गी कवियों के अनुरूप और स्वाभाविक है।

४४. गोपाल—

यह भी अखा तथा बूटियो आदि का समकालीन ज्ञानमार्गी कवि था। अखा

१—कवि चरित—के० का० शास्त्री पृ०—५६०

ने अखेगीता तथा गोपालने ज्ञानप्रकाश की रचना एक ही वर्ष के अन्तर्गत की है जैसा कि उसकी इस पंक्ति से स्पष्ट होता है।

गुरु प्रतापे पहोंची आश, ग्रन्थ हवो या ज्ञानप्रकाश।
सम्वत् सत्रह पाँचसार, मास वैशाख अष्टमी सोमवार ।।

यह नादोल ग्राम का निवासी था। पिता का नाम खीमजी तथा जाति वणिक थी। गोपाल के गुरु का नाम सोमराज था जैसा कि उसकी इस काव्य-पंक्ति से ज्ञात होता है—

सतगुरु सोमराजे दया करी दीधी दरस गोपाल ने माला आली सुधीरे।
संतो सकल नेहालो मोटी माला रे जेहनो महिमा छे अनंत रसला रे ।।

इससे यह मानने में कोई आपत्ति नहीं लगती कि सोमराज नामक कोई गुरु गोपाल के रहे होगे। कुछ विद्वानों के अनुसार अखा, बूटियो, नरहरि तथा गोपाल ये चारो एक ही गुरु के शिष्य थे परन्तु इनका कोई विश्वसनीय प्रमाण नही प्राप्त हुआ इसलिये केवल समकालीन होने से ऐसा मान लेना उपयुक्त नही जान पड़ता।

अन्य संत भक्तों के समान गोपाल की वाणी में भी वेदान्त, ज्ञान तथा संसार के प्रति वैराग्य की भावना है तथा ब्रह्म, जगत की उत्पत्ति तथा स्वरूप के सम्बन्ध में विचार आदि व्यक्त किये है। इसके अतिरिक्त कृष्णभक्ति सम्बन्धी पद भी इस कवि ने लिखे है।

रचना:—ज्ञान प्रकाश यही रचना गोपाल गीता के नाम से भी प्रसिद्ध है। इसमें गोपाल ने अपने भावों की अभिव्यक्ति गुरु शिष्य संवाद के रूप में की है। इसकी रचना संख्या में कम होते हुए भी कवित्व शक्ति का अच्छा परिचय देती है।[1]

४६. भाणदास—

१७ वी शती का यह कवि भी ज्ञानमार्गी भक्त कवि ज्ञात होता है। इसके काव्य - रचना - काल का उल्लेख कवि की रचना मे ही मिलता है। जैसे—एक रचना में:—

संवत् सत्तर सतोतेर अने ज्येष्ठमहीनो सार,
शुक्लपक्ष नी शुभनव अने सुरतणो गुरुवार।

१—कवि चरित—के० का० शास्त्री पृ.-५५८

तथा इसकी रचना में:—

सम्वत् सत्तर छायोत्तर मागसर महीनो ते खरो,
शुक्लपक्ष दशमी सोमवार पूरणग्रन्थ थयो अतिसार।

यहाँ सत्तोतेर एवं छायोत्तर शब्द से ७७ तथा ७६ का भ्रम हो सकता है। परन्तु शास्त्री ने गणित के आधार पर प्रमाणित कर दिया है कि वहाँ ७ तथा ६ पढ़ने से ही प्रस्तुत पदों में उनके साथ दिये गये तिथि वार, पक्ष आदि सही मिलते हैं। सारांश यह है कि इस कवि का रचनाकाल संवत् १७.६.७ निश्चित होता है। और इस दृष्टि से यह अखा इत्यादि ज्ञानमार्गी कवियों का समकालीन ही प्रतीत होता है।

इसने वेदांत ज्ञान की कविता लिखने के उपरांत 'गरबा" भी लिखे हैं। परन्तु इसकी विशेष रुचि ज्ञान के प्रति ही लगती है।

रचना:—इसकी प्रसिद्ध रचना हस्तामलक के उपरांत अजगर—अवधूत-संवाद, नृसिंह जी नी हमत्री, वारमास, हनुमाननीहमत्री तथा अनेक प्रकीर्ण पद भी प्राप्त होते हैं। इन सब ग्रन्थों में अधिकांशत: ज्ञान, ब्रह्म तथा जीव संबंधी चर्चा ही मुख्य रूप से की है।

४७ प्रेमानन्द—

मध्यकालीन गुजराती भक्त कवियों मे प्रेमानन्द का स्थान अद्वितीय है। नरसिंह के पश्चात् सबसे अधिक लोकप्रियता प्रेमानन्द के साहित्य को गुजरात म प्राप्त हुई है ऐसा कहें तो अनुचित नही होगा। इस कवि के जीवनकाल के सम्बन्ध में भी विद्वानो मे मतभेद है। श्री शास्त्री ने इसका जन्म संवत् १७०० लगभग माना है जबकि क० मा० मुन्शी, कृष्णलाल मो० भवेरी तथा तारापोरवाला के मतानुसार प्रयोगो का जीवनकाल ई० सन् १६३६ से १७३४ है। श्री केशवलाल ध्रुव ने प्रेमानन्द का आयुष्य एकसौ वर्ष का मानते हुए उनका समय संवत् १६८७ से संवत् १६८६ तक का बतलाया है। परन्तु कुछ वर्तमान संशोधकों ने तथा विद्वानों ने प्रेमानन्द की रचनाओं के आधार पर उसका समय ई० सन् १६४६ से ई० सन् १७४१ तक का मानना उचित समझा है[1]।

वस्तुत: प्रेमानन्द के जीवन काल का अधिकांश १७ वी शती में व्यतीत है। इसलिये इसमें कोई संदेह नही है कि वह उपर्युक्त शती का एक प्रमुख कवि था।

---

१. गु० सा० नो सं० इतिहास—प्रो० ईश्वरलाल दु० पृ०-४३

यह कवि माणभट्ट था। "माण" अर्थात् तांबे की भोंकी बजाबजा कर कथा कहता था और स्वयं अपने रचित आख्यान गाकर सुनाता था। प्रेमानन्द के नाम पर आज असंख्य रचनाएं प्राप्त होती हैं परन्तु विद्वानों के मतानुसार उनमें से बहुत सी प्रेमानन्द की रची हुई नहीं हैं ऐसा प्रमाणित हो चुका है। तथापि इतना निश्चित है कि उसने रामायण, महाभारत तथा भागवत् के आधार पर अनेक स्वतंत्र आख्यान काव्य लिखे हैं। प्रसिद्ध है कि आज गुजरात के गाँव-गांव में बल्कि घर-घर में विशिष्ट धार्मिक पर्वों पर प्रेमानन्द की रचनाओं का ध्यान एवं पाठ होता है। यह उसके काव्यों की लोकप्रियता का प्रमाण है। प्रेमानन्द के पिता का नाम कृष्णराय तथा गुरु का रामचरण था। जाति से वह ब्राह्मण था और गुरु के सत्संग से उसे काव्य शक्ति प्राप्त हुई तब से वह स्वरचित काव्यों को गा-गाकर कथा वांचन करना अर्थात् व्यासवृत्ति ही उसका जीवन कार्य बन गया था।

रचनाएं:—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि प्रेमानन्द के नाम पर अनेक रचनाएं प्राप्त होती हैं परन्तु सर्वसम्मति से उसकी प्रसिद्ध एवं प्रमुख रचनाएं "रणयज्ञ" दशमस्कध, ओखाहरण, रुक्मिणी हरण सुदामा चरित, नलाख्यान तथा नरसिंह के जीवन के प्रसंगों को लेकर लिखी गई रचनाएं हैं।

४८. रत्नेश्वर—

रत्नेश्वर प्रेमानन्द का परम शिष्य था। वह एक विद्वान संस्कृतज्ञ ब्राह्मण था। उसका रचनाकाल भी १७ वीं शती के अन्तर्गत ही आता है क्योंकि वह प्रेमानन्द का ही समकालीन था। उसने भी भागवत, रामायण आदि के आधार पर काव्य रचना की। विशेषकर उसने आत्म विचार, चन्द्रोदय तथा स्वर्गसिहेश एव अनेक फुटकर पदों में भक्ति सिद्धान्त का उपदेश दिया है। वह काव्य शक्ति का ज्ञाता एवं एक समर्थ कवि था जैसा कि उसकी रचनाओं की भाषा तथा शैली से प्रमाणित होता है। उसने संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद भी खूब किया है।

दशमस्कन्ध, राधाकृष्ण नी महिमा, वैराग्य लता, अश्वमेघ, लंकाकान्ड इत्यादि प्रमुख है।

४९. प्राणनाथ—

जामनगर में प्रणामी सम्प्रदाय का एक प्रमुख केन्द्र है। इस सम्प्रदाय का प्रसिद्ध मन्दिर "खीजड़ा मन्दिर" के नाम से सुविख्यात है। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी प्राणनाथ जी थे। आश्चर्य है कि शास्त्री के कविचरित ग्रन्थ में इनका कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसका कारण मेरे विचार से यही हो सकता है कि कविचरित

में केवल गुजराती के कवियों का परिचय सुन्दर दिया है, जब प्राणनाथ जी ने अपनी रचनाएँ हिन्दी में की हैं। इनका एक केन्द्र सूरत में भी है। वहाँ नगर के सैयदपरा में इनका मन्दिर है[१]।

प्राणनाथ जी के सम्बन्ध में किवदंती प्रसिद्ध है कि वे पहले जामनगर के राधावल्लभी सम्प्रदाय के अनुयायी देव चन्दजी के घर में नौकर थे। किन्तु इस सम्प्रदाय के अनुयायी इस बात को स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार प्राणनाथ देवचन्दजी के शिष्यही थे। वहीं रहते हुए उन्होंने अरबी,फारसी,गुजराती का अध्ययन किया। अपनी वैष्णव भक्ति की सेवा करते करते क्रमश: उनके अन्तर में भी भक्ति का बीजारोपण होता गया। अध्ययन करने से बुद्धि एवं विचारों का विकास भी होना स्वाभाविक था। बाद में उन्होंने स्वयं एक नया पंथ स्थापित करने की कामना से गुजरात के अन्य नगर जूनागढ़, धोराजी, मांगरोल आदि स्थानों में पर्यटन किया। तत्पश्चात् अहमदाबाद होते हुए वे सूरत पहुंचे। वहीं उन्होंने अपने मत का प्रचार तथा उपदेश भाषणों द्वारा प्रारम्भ किया। और जैसा कि ऊपर कहा गया है सुरत तथा जामनगर में मन्दिर बनवाये उनको उनके सम्प्रदाय के शिष्य महेराज के आदर सूचक नाम से सम्बोधन करते थे। उन्होंने कबीर के समान हिन्दू एवं मुसलमानी धर्म सिद्धान्तों में एकता करने का उपदेश दिया है उनकी रुचि सत मत अथवा वेदान्त धर्म की ओर लगती है।

रचनाएँ:—

'कलस','सिंध-वेदान्तवाणी', 'आखरी-कीर्तन', 'बड़ा-सिंगार','छोटा सिंगार' इत्यादि मुख्य हैं।

५. आनन्दघनजी—

श्री आनन्द जी अपने समय के एक बहुश्रुत जैन साधु थे। उनका मूलनाम लाभानन्द था। उनके जन्म समय तथा जन्म स्थान के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट उल्लेख नहां किया नहीं गया है। परन्तु इतना निश्चित् है कि वे १८वीं शताब्दी में विद्यमान थे, तथा गुजराती के प्रसिद्ध कवि प्रेमानन्द के समकालीन थे। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आनन्दघनजी का जन्म १७ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में हुआ होगा और १८ वीं शताब्दी के प्रथम चरण में उन्होंने ज्ञान का उपदेश दिया होगा। उनका जन्म गुजरात अथवा मारवाड़ के किसी स्थान पर हुआ होगा। ऐसा अनुमान किया गया है। उनके सम्बन्ध में जो किवदन्तियाँ प्राप्त होती हैं उनमें गुजरात

१. गुजराती और हिन्दीमां आपेलो फाणो—डा० पो० देरासरी पृ०-१३

और मारवाड़ दोनों प्रदेशों में उनका रहना प्रमाणित होता है। यदि भाषा के आधार पर उनके जन्म स्थान का निर्णय किया जाय तो उनकी रचनाएं गुजराती एवं हिन्दी दोनों भाषाओं में रची हुई मिलती है। उनके द्वारा रचित चोवीशी गुजराती में है तथा अन्य पद हिन्दी में। उनकी चोवीशी की गुजराती भाषा अधिक शुद्ध एव उनके समकालीन कवियों से मिलती जुलती है। जब कि उनके पदों की भाषा में हिन्दी तथा ब्रज भाषा का मिश्रित रूप मिलता है। यदि उनका जन्म मारवाड़ (राजस्थान) में हुआ होता तो उनके पद राजस्थानी में होते अथवा गुजराती भाषा पर राजस्थानी का प्रभाव अवश्य पड़ा होता। किन्तु वस्तुत: उनकी गुजराती भाषा अधिक शुद्ध है एवं उसमें गुजराती के लोक-भाषा शब्दो का भी सुंदर प्रयोग हुआ है इसलिये हमारे अनुमान से उनका जन्म गुजरात में ही होना अधिक सम्भव है। तथा जैसा कि उनके जीवन सम्बन्धी उल्लेख से ज्ञात होता है वे अपने जीवन काल मे एकान्त साधना एवं चिन्तन करने के लिये आबू के पहाड़ों की गुफाओ मे रहे थे तथा उसके पश्चात् राजस्थान मे भी बहुत समय तक प्रवास करते रहे थे। मेड़ता मे आनंदघन जी के नाम की एक पुरानी देरी (मन्दिर) है इससे भी इस बात की पुष्टि होती है कि वे अपनी उत्तरावस्था मे राजस्थान में रहे होगे तथा उनका देहोत्सर्ग वहाँ हुआ होगा। सारांश यह कि आनन्दघन जी का सम्बन्ध गुजरात तथा मारवाड़ दोनों प्रदेशो से रहा है तथा उन्होने गुजराती तथा हिन्दी में उच्चकोटि की आध्यात्मिक विषय की पद रचना की है इसमें कोई सन्देह नहीं।

रचनाएं:—

आनन्दघन चोवीशी इसमें २४ जैन तीर्थंकरों की स्तुति की है। भाषा गुजराती है। उनके गुजराती पद का दृष्टान्त :—

> वचननिरपेक्ष व्यवहार जूठो कह्यो, वचन सापेक्ष व्यवहार साचो।
> वचन निरपेक्ष व्यवहार संसार फल, सांमली आदरी कांइ राचो ॥

पद :—

उनके रचे हुए लगभग १०८ पद प्राप्त होते हैं। विषय भक्ति-ज्ञान-वैराग्य तथा आध्यात्मिक चिन्तन है। भाषा हिन्दी है। जिसमें राजस्थानी एवं ब्रज भाषा के शब्दों का प्रयोग भी किया है।

उनके हिन्दी पद का दृष्टांत :

> उत काम कपट मद मोहमान, इत केवल अनुभव अमृत।
> सखि कहै समता उत दु:ख अनंत, इत खेले आनन्दघन वसंत॥

राजस्थान के संत - भक्त कवि

(पन्द्रहवीं शती)

(१) जांभोजी
(२) सिद्ध जसनाथ
(३) तत्ववेत्ता

(सोलहवीं शती)

१—कृष्णदास
२—कील्हजी
३—मीरांबाई
४—इसर दास (इसरबारोट)
५—छीहल
६—लालदास
७—बनखाजी
८—दादू जी (दादूदयाल)
९—पृथ्वीराज राठौड़
१०—माधोदास
११—अल्लू जी
१२—रज्जब जी
१३—अग्रदास
१४—गरीबदास
१५—सायोंजी
१६—जगन्नाथ दास
१७—नाभदास
१८—नरहरिदास
१९—जनगोपाल
२०—जगजीवन

(सत्रहवीं शती)

१—दामोदर दास
२—माधोदास
३—भीखजन
४—परशुराम
५—सुन्दरदास
६—संतदास
७—हरिदास जी
८—बाजीदजी
९—जग्गा जी
१०—कुलपति
११—दरियावजी (दरियासाहब)
१२—कल्याणदास
१३—खेमदास
१४—राघवदास
१५—बिहारी लाल

१५ वीं शती (सं० १४५६ से १५५६ तक)

१. जाँभोजी—

इसका जन्म सं-१५०८ में नागौर परगने के पीपासर गाँव मे हुआ था। जैसा कि उनके जीवन चरित्र इस दोहे से प्रमाणित है :—

संवत्-पन्द्रहसौ अठोत्तरे कृतका नक्षत्र प्रमाण।
भादोवदि अस-अल्लो, चन्द्रवार पुनि जन्म ॥[1]

ये जाति के राजपूत सेवार थे। माता का नाम हांसादेवी और पिता का नाम लाहर था। बचपन में ये गूंगे थे। ३४ वर्ष की उम्र के बाद इन्हे देवी के प्रताप से वाणी प्राप्त हुई और इन्होने अपना एक सम्प्रदाय चलाया जो विश्नोई सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है। इस सम्प्रदाय के अनुयायियों के लिये इन्होंने २९ (बीस और नौ) नियम बनाये थे। इनकी साधना, पद्धति पर गोरखनाथ के सिद्धांतों का प्रभाव है। इनके गुरु के विषय मे कोई निश्चित् प्रमाण नहीं मिलता परन्तु इनकी वाणी मे जो मौखिक रूप से ही प्रचलित है - गोरखनाथ की परम्परा अधिक सम्भव लगती है।[2]

संवत्—१५९३ में मार्ग शीर्ष कृष्ण नवमी को बीकानेर के लालसर नामक गाँव में इनका निर्वाण हुआ।

रचना:—जम्भगीता इनके अधिकाश पद लोगों में मौखिक रूप मे अधिक प्रचलित है। इनमे उपदेश की वाणी कही गई है जो ज्ञान, जीव, परमात्मा आदि से सम्बन्धित है।

२. सिद्ध जसनाथ:—

इसके जन्म संवत् का कोई विश्वसनीय उल्लेख प्राप्त नही है परन्तु इसका आविर्भाव सं० १५३९ मे हुआ माना गया है। ये बीकानेर के अन्तर्गत 'कतरिया सर'। ग्राम के निवासी थे। इनके पालक पिता हमीर जी जाट और माता रूपादे थी कहते है इनको ये किसी तालाब के पास पड़े हुए मिले थे। ये गोरखनाथ की शिष्य परम्परा में आते हैं। जैसा कि इनकी वाणी के आधार पर ज्ञात होता है। ये जांभोजी के समकालीन थे तथा सवत् १५५७ मे इन दोनों संतों का मिलन भी हुआ था। संवत् १५६३ मे केवल २४ वर्ष की अल्पायु मे ही उन्होने समाधि ग्रहण

---

१. श्री जाम्भाजी महाराज का जीवन चरित्र—सुरजनदास
२. राजस्थानी भाषा और साहित्य—डॉ० हीरालाल माहेश्वरी पृ०—२७७

करली थी। विशेष रूप में इन्होंने भी अपना अलग एक सम्प्रदाय चलाया, जो जसनाथी सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है। एक प्रकार से यह नाथपंथ के सिद्धान्तों पर ही आधारित है। परन्तु इसमें नाथ सम्प्रदाय तथा वैष्णव सम्प्रदाय का एक मिश्रित रूप कहा जा सकता है।

रचना.—इनके उपदेशात्मक पद "वाणी" के नाम से प्रसिद्ध है जिसमें अहिंसा, जीव, संसार की क्षणिकता आदि विषयों पर इनकी अभिव्यक्ति है।

३. तत्ववेत्ता—

ये जोधपुर राज्य के अन्तर्गत जैतारण नगर के निवासी थे। इनका आविर्भाव सं०-१५५० में हुआ था[1]। स्वयं डा० मोतीलाल मेनारिया ने अपने दूसरे ग्रन्थ राजस्थान का पिंगल साहित्य में इनका आविर्भाव काल संवत् १६८० दिया है अपने प्रथम ग्रन्थ के संवत् अशुद्ध होने के सम्बन्ध में कोई स्पष्टता नहीं दी इसलिए हम संवत् १५५० को ही स्वीकार कर लेते हैं। जाति से ये छैन्याति ब्राह्मण थे। इन्होंने निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षा ली थी और ये अपने समय के एक प्रसिद्ध संत और आर्य कवि थे। ये एक चमत्कारी महात्मा भी थे। इन्होंने अनेक कविता की रचना की थी, जो 'कवित' शीर्षक ग्रन्थ में ही संग्रहीत है।

रचना:—"कवित्त" नामक एक ग्रन्थ प्राप्त है। भाषा इसकी पिंगल है इसमें राम, कृष्ण, आदि की महिमा कवि ने गाई है।

१६ वीं शती (सं० १५५६ से १६५६ तक)

४. कृष्णदास—

ये जयपुर राज्य के अन्तर्गत गलता नामक गांव के महंत थे। इनका आविर्भाव काल सं० १५५६ से १५८४ माना जाता है[2]। जाति से ये दाहिया ब्राह्मण थे और इनके गुरु का नाम अनंतनन्द था। ये पयहारी कहलाते थे क्योंकि केवल दूध पीकर ही रहते थे। ये वैष्णव भक्त थे और रामानुज सम्प्रदाय के परम अनुयायी थे। इनकी अधिकांश रचनायें ब्रजभाषा में हैं।

रचनाएं:—१. जुगलमान चरित २. ब्रह्म गीता।
३. प्रेमतत्व।

कुछ लोगों ने अष्टछाप के कवि कृष्णदास और इनको एक मान लिया है परन्तु डा० मोतीलाल मेनारिया ने अपने प्रमाणों द्वारा इन दोनों का भिन्न-भिन्न

---

१. राजस्थानी भाषा और साहित्य— डॉ०मोतीलाल मेनारिया पृ०-१४१
२. " " " " " पृ०-१४३

होना सिद्ध किया है[1]। डा० रामकुमार वर्मा ने भी अष्टछाप के कृष्णदास का अविर्भाव काल सवत् १६०० बतलाया है जब कि राजस्थान ने कवि कृष्णदास पयहारी का काल डा० मेनारिया ने १५४८-८४ दिया है। इन दोनों के समय में भी पर्याप्त अन्तर है। इन दोनों को एक मान लेने का कारण मुख्यत: यह है कि जुग लमान-चरित नामक रचना दोनों के नाम पर मिलती है। डा० मेनारिया के अनुसार यह रचना कृष्णदास पयहारी की संभवत: न हो परन्तु इस सम्बन्ध में कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है। दूसरी यह भी हैं कि अष्टछाप के कृष्णदास वल्लभाचार्य के शिष्य थे जबकि कृष्णदास पयहारी रामानन्दी सम्प्रदाय के थे। तथा उनके गुरु का नाम आत्मानन्द था जैसा कि उनकी रचनाओं के आधार पर ज्ञात होता है। हमारे विषय से सम्बन्धित कृष्णदास पयहारी एक सिद्ध महात्मा थे, संस्कृत भाषा के अच्छे पंडित थे तथा प्रतिभावान कवि भी थे[2]। मूलत: ये राम के उपासक थे परन्तु उन्होंने कृष्ण-लीला सम्बन्धी काव्य की रचना भी की है।

रचनाएं:—ब्रह्मगीता तथा प्रेम सत्व निरूपण दो रचनाएं प्रामाणिक रूप से इन्ही की है। जब कि जुगलमान चरित संदिग्ध है। परन्तु इसकी संदिग्धता के संबन्ध में भी कोई प्रमाण नहीं है।

५. कील्हजी—

इनके जन्म सवत् का उल्लेख नहीं मिलता। परन्तु ये कृष्णदास पयहारी के शिष्य थे इस लिये गुरु का समय ही इनका अविर्भाव काल माना जा सकता है। इनके पिता सुमेर देव गुजरात के सूबेदार थे[3]। कील्ह जी भगवान के परम भक्त थे। स्वभाव से नम्र एवं विनयी थे। राम की निरन्तर उपासना, नाम स्मरण करते रहते थे।

रचना:—इनके रचित फुटकर पद प्राप्त होते हैं। विषय भग्वद्‌भक्ति ही है। इन्होंने य रचना ढूंढाड़ी मिश्रित ब्रजभाषा में की है।

६. मीराँबाई—(सं० १५५५)

मीराबाई का जन्म राजस्थान के कुकड़ी गाँव में हुआ था। वे राव रत्नसिंह की बेटी थी और उनका पालन उनके दादा दूदा जी के पास हुआ था। मीराबाई

---

१. राजस्थानी का पिंगल साहित्य—डॉ० मोतीलाल मेनारिया। पृ०--६६
२. ” ” ” ” ” ” पृ०—६६
३. भक्तमाल--नाभादास

का विवाह १२ वर्ष की अवस्था में मेवाड़ के सुप्रसिद्ध महाराणा संग्रामसिंह के पुत्र भोजराज के साथ हुआ था । इनको बचपन से ही गिरधर गोपाल के प्रति परम भक्ति थी। जिनका विकास इनके जीवन काल में क्रमशः परिवर्धित एवं परिपुष्ट होता है। सांसारिक जीवन में इनका मन कभी लगा ही नहीं और कृष्ण के अतिरिक्त किसी को अपना पति माना ही नहीं। कृष्ण के प्रेम में वह दीवानी थी। इनके जीवन का प्रारंभिक काल मेवाड़ में बीता। कुछ समय तक ये वृंदावन और अन्य तीर्थों में भी यात्रा करती रहीं और अन्त में गुजरात में द्वारका में आकर बसी थी।

इनका देहान्त भी द्वारिका में सं० १६०३ में हुआ था। इन्होंने कृष्ण की भक्ति के अनेक पद लिखे हैं। इनकी भाषा में राजस्थानी, गुजराती और व्रज भाषा तीनों के रूप मिलते हैं। इनके लिखे ग्रन्थों में प्रसिद्ध मुख्य ग्रंथ १.—गीत-गोविन्द का टीका। २—नरसीजी का माहेरां। ३—सत्यभामाजी नुं रूसणं। ४—राग सोरठ और राग गोविन्द माने जाते हैं। परन्तु श्री मोतीलाल मेनारिया जी के अनुसार ये ग्रन्थ मीरां के नाम से प्रसिद्ध होते हुए भी वास्तव में मीरां के हैं नहीं[1]। कुछ भी हो मीरां ने प्रेम और भक्ती के फुटकर पद अनेक लिखे हैं और गाये है इनमें कोई शंका नहीं। मीरांबाई की जीवनी के सम्बंध में विद्वानो मे मतमतान्तर बहुत हैं उस पर भी किंचित विचार यहां कर लेना चाहिए। कर्नल टाड, डा० शिवसिंह, ग्रियर्सन प्रभृति विद्वानो ने मीरां को मेवाड़ के महाराणा कुंभाजी की पत्नी बतलाया है। इसके अनुसार तो मीरां का समय लगभग (सं १४६० से १५२५) के समीप ले आना पड़ेगा। परन्तु इसकी आवश्यकता नही है। डा० मेनारिया ने इस मान्यता की असत्यता सिद्ध कर दी है। उनके अनुसार राणा कुंभाजी के ६० के लगभग शिलालेख आजतक जो प्राप्त हुए हैं उनमे कही भी मीरां के नाम का उल्लेख नही है। यदि मीरा उनकी रानी होती तो किसी एक भी शिला लेख में तो उसका उल्लेख न होना असम्भव था। वह भी ऐसी स्थिति मे जब कि अन्य रानियों के नाम वहां प्राप्त होते हैं। मीरा का तुलसीदासजी का समकालीन होना भी कल्पित लगता है क्योंकि गोस्वामीजी ने जिस समय विनय पत्रिका की रचना की थी उस समय मीरा को मर कर ५० वर्ष बीत चुके थे। रैदास को मीरा का गुरु होना बतलाया जाता है। परन्तु यह भी संदिग्ध ही है। क्योंकि रैदास रामानन्द के शिष्य और उनके समकालीन थे। इस दृष्टि से उनका काल १५ वी शताब्दी ठहरता है जब कि

---

१. राजस्थानी भाषा और साहित्य—डा० मोतीलाल मेनारिया पृ०—१४६
२. " " " " " पृ०—५७

मीरा का १६ वीं शती में होना प्रमाणित हो चुका है। दूसरी बात यह है कि मीरां किसी सम्प्रदाय विशेष की शिष्या नहीं बनी थी। सब पंथों को समान भाव से वह देखती और सम्प्रदायों के साधुओं की सेवा सत्कार करती थी। इसलिये रैदास का मीरा गुरू होना भी सन्देहास्पद है। मीरा का आविर्भाव पन्द्रह वीं शताब्दी में मानने वाले उसका संवत १४६० के लगभग बतलाते हैं। इस मत को मानने वालों में कर्नल राड के समर्थक ग्रियानि, गो० मा० त्रिपाठी, कृ० मो० झवेरी, पद्मावती शबनम, आदि भी हैं। तथा इसका खण्डन करने वाले विद्वानों में क० मा० मुन्शी, गो० ही० ओझा, जगदीशसिंह गहलौत, डॉ० मोतीलाल मेनारिया तथा डॉ० हीरालाल माहेश्वरी[1] प्रभृति हैं। इन दोनों मतों से भिन्न मत श्री तारापोरवाला का है जो मीरां का समय ईसवी सन् १४६६ से १५४७ मानते है परन्तु विश्वसनीय प्रमाणों के अभाव में यह मत पूर्ण संदिग्ध है। अन्य विद्वानों में श्री के० का० शास्त्री[2], श्री देवीप्रसाद मुंशी तथा डा० जगदीश गुप्त[3] ने भी मीरां का समय १६ वीं शताब्दी ही माना है।

रचनाएं :—

मीरां रचित माने जाने वाले निम्नलिखित ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं :—

१—गीत गोविन्द की टीका

२—नरसी जी रो माहेरो

३—सत्यभाम जी नुं रुसणुं

४—राग सोरठ

५—राग गोविन्द

परन्तु जैसा कि ऊपर उल्लेख हो चुका है इनमें से अधिकांश मीरां के नाम पर चढ़ाये गये ग्रन्थ सिद्ध हो चुके हैं। मीरां ने केवल फुटकर पद लिखे हैं।[4] जिसके अनेक संग्रह हिन्दी, गुजराती, बंगाली आदि भाषाओं में प्रकाशित मिलते हैं इन पदों में भी अनेक पदों का प्रक्षिप्त होना कहा जाता है।

सारांश यह कि मीरां एक परम भक्त तथा एक उच्च कोटि की कवियित्री थी इसमें किसी को सन्देह नहीं है उसका समय भी १६ वीं शती अर्थात् संवत् १५५५

१—राजस्थानी भाषा और साहित्य—डॉ० हीरालाल माहेश्वरी पृ०-३१४

२—कवि चरित—के० का० शास्त्री

३—गुजराती और ब्रजभाषा का कृष्ण काव्य—श्री जगदीश गुप्त पृ०-१६

४—राजस्थान का पिंगल साहित्य—डा० हीरालाल माहेश्वरी। पृ०—६३

से १६०३ अब सिद्ध हो चुका है और ऐतिहासिक प्रमाणों को देखते हुए वही उपयुक्त भी लगता है। भक्तिभाव से परिपूर्ण मीरां ने असंख्य पदों की रचना की है यह भी असंदिग्ध है तथा उसका राजस्थान में जन्म लेना एवं द्वारका में कृष्ण की भक्ति करते करते अपने भौतिक शरीर का त्याग करना भी उतना ही विश्वसनीय प्रतीत होता है।

हमारे इस प्रबन्ध में मीरां का स्थान अति महत्व पूर्ण एवं विशेष रूप से उल्लेखनीय इसलिये है कि मीरां राजस्थानी एवं गुजराती दोनों भाषाओं की समान रूप से कवियित्री थी तथा राजस्थान एवं गुजरात दोनों प्रदेशों के भक्तों में संतो तथा कवियों में मीरां का स्थान समान आदरणीय है। राजस्थान एवं गुजरात दो प्रदेशों की संस्कृति एवं साहित्यिक एकता में मीरां का योग सर्वाधिक तथा सर्वश्रेष्ठ है ऐसा कहूँ तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

७. दूसरदास (इसरदास)—

ये जोधपुर राज्य के भेडेसा गांव के प्रसिद्ध भक्त कवि हुए हैं जो गुजरात के जामनगर में वर्षों तक रहे थे। इनका जीवनकाल संवत्-१५६५ से १६७५ माना जाता है। इनका विस्तृत परिचय हमने गुजरात के कवियों के विभाग में दिया है इसलिये यहाँ पुनः देने की आवश्यकता नहीं लगती।

८. छीहल—

डॉ० रामकुमार वर्मा ने इनको कृष्ण भक्त कवि कहा है परन्तु इस सम्बन्ध में कोई उदाहरण दिया नहीं है[१]। इनकी प्रसिद्ध रचनाओं में पंच सहेली विशेष प्रसिद्ध है जो विरह वर्णन का सुन्दर काव्य है। इनका रचना काल संवत्--१५७५ माना गया है। ये राजस्थान के निवासी थे। इनके जन्म स्थान तथा संवत् के सम्बन्ध में विशेष जानकारी प्राप्त नहीं है। श्री कस्तुरचन्द्र कासलीवाल ने इनको जैन कवि माना है जब कि देसाई ने इनको जैनेतर कवि कहा है।[२] डॉ० हीरालाल माहेश्वरी ने इनकी पाँच रचनाओं का उल्लेख किया है जो इस प्रकार है :—

पंचसहेली, आतम प्रतिबोध, जयमाला, उदरगीत, पंथी गीत, छीलह बावनी या बावनी[३]। परन्तु इनमें से पंच सहेली ही अधिक प्रसिद्ध है।

---

१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा पृ०--५८८

२. जै० गु० क० भाग ३ पृ० २१२६

३. राजस्थानी भाषा और साहित्य—डॉ० हीरालाल माहेश्वरी पृ०--२५६

९. लालदास :—

ये लालदासी पंथ के प्रवर्तक संत भक्त थे। निवासी अलवर के थे एवं उनका जन्म संवत् १५९७ में हुआ था।[1] इनके पंथ के सिद्धान्त कबीर पंथ तथा दादू पंथ के सिद्धान्तों से मिलते जुलते हैं। ये भी कबीर की तरह परमात्मा को राम ही कहते हैं। पहले ये एक सामान्य लकड़हारे थे। पढ़े लिखे भी नहीं थे परन्तु सत्संग के प्रभाव से इन्हें ज्ञान प्राप्ति हुई थी। कहते हैं ये विवाहित थे और इन्हें एक पुत्र तथा एक कन्या थी।

इनका स्वर्गवास १७०९ में हुआ माना जाता है[2] इस विचार से तो वे ११२ वर्ष जीवित रहे होंगे।

रचनाः—"वाणी"— इनके उपदेश "वाणी" के नाम से संग्रहीत हैं यद्यपि उसमें काव्य कला की दृष्टि से कोई विशेषता नहीं है। परन्तु भक्ति भाव तथा ज्ञान की बहुत मार्मिक उक्तियां उनकी वाणी में है। उनके पद सूक्ष्म भावपूर्ण एवं गेय भी हैं।

१०. बनखाजी—

ये "नराणा" गांव के निवासी थे और इनका जन्म काल संवत् १६०० से १६१० के बीच माना जाता है। इनकी ज्ञाति के विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ इनको हिन्दू मानते है और कुछ मुसलमान भी। डॉ० हीरालाल माहेश्वरी के मतानुसार इनका मुसलमान होना अधिक सम्भव है क्योंकि इनके शिष्य मुसलमान ही थे[3]। बनखा जी की 'वाणी" शीर्षक ग्रन्थ के रूप में इनकी रचनायें प्रकाशित भी हो चुकी है। इसमें इनकी बातें संग्रहित भी हैं। ये स्वयं अच्छे गायक थे। संगीत का इन्हें अच्छा ज्ञान था। इनके पद गेय हैं। इनके रचित पदों की संख्या १६७ है। अपने पदों में इन्होंने जन भाषा का अर्थात् सरल सुबोध भाषा का प्रयोग किया है। एवं शैली भी बहुत सरल है। इनका देहान्त सं० १६८० से १६८७ के बीच हुआ था।[4]

रचना:—

इनके पद "वाणी" में संग्रहित हैं भाषा में स्वाभाविकता तथा सरलता है।

---

१. उत्तरी भारत की संत परम्परा— श्री परशुराम चतुर्वेदी पृ०–४०४
२. राजस्थान का पिंगल साहित्य— डॉ० मो० मेनारिया पृ०-२१०
३. राजस्थानी भाषा और साहित्य— डॉ० हीरालाल माहेश्वरी पृ. २८६
४. राजस्थानी भाषा और साहित्य— " " पृ०-२८६

भाव ईश्वर भक्ति के साधना प्रेम, सत्य, सर्वस्व त्याग तथा जीवन के तथ्य सम्बन्धी मिलते हैं।

११, दादूजी—

प्रसिद्ध भक्त एवं संत कवि दादू भी मीरां की तरह राजस्थान एवं गुजरात दोनों प्रदेशों से सम्बन्धित रहे हैं इनके जन्म स्थान के सम्बन्ध मे कोई निश्चित प्रमाण नहीं है। कहा जाता है कि ये अहमदाबाद के पास साबरमती नदी में से मिले थे। और किसी ब्राह्मण दम्पति ने इनका लालन पालन किया था। इस सम्बन्ध में श्री मैनारिया का मानना है कि दादू का अहमदाबाद के किनारे प्राप्ति होना इत्यादि दंतकथाएं हैं और उनके शिष्यों ने अपने गुरु का महत्व बढ़ाने के लिये गढ़ दी है। मैनारिया जी के मतानुसार दादू सांभर के निवासी थे। जैसा कि उनके जीवन सम्बन्धी रचित पदों में ज्ञात होता है अहमदाबाद में मिलने की घटना के बाद तुरन्त ही उनका २४ वर्ष की अवस्था में सांभर में होना बतलाया गया है। वास्तव में उनका जन्म स्थान सांभर के आसपास ही किसी गांव में होना अधिक सम्भव लगता है[1]। दादू दयाल का जन्म संवत् १६०१ में हुआ था जैसा कि नीचे के दोहे से ज्ञात होता है।

संवत् सौला सौ इकोत्तर सन्त एक उपज्यों पुहुमी पर।
पश्चिम दिशा अहमदाबादू ती ठां साध परगटे दादू ॥

—श्री दादू जन्म लीला परची।

माता पिता एवं गुरु का नाम भी अज्ञात है। जाति के सम्बन्ध में भी कोई इन्हें मोची तो कोई धुनिया और कोई इन्हें ब्राह्मण भी बतलाते हैं। श्री जनगोपाल ने दादू जन्मलीला परची में इनका परिचय दिया है और उसी में इन्हें भगवान के साक्षात् दर्शन होने की बात का भी उल्लेख है। ये घूम घूम कर अपने मत का प्रचार करते थे। और कहते हैं १८ वर्ष की अल्प आयु में ही अहमदाबाद से राजस्थान चले आये थे। दादू विवाहित थे इनके दो पुत्र और दो पुत्रियां थी।

जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है दादू की जाति के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतभेद है। आचार्य क्षितिमोहन सेन ने दादू का मुसलमान होना बतलाया है और उनके अनुसार दादू का मूल नाम दाऊद था सेनबाबू का यह अभिप्राय इस पंक्ति के आधार पर है।

"श्रीयुत दाऊद वन्दि दादूयार—नाम"

---

1. राजस्थान का पिंगल साहित्य—डा० मोतीलाल मेनारिया पृ०—१०३

दूसरी तरफ दादू पंथी भक्तों को यह बात स्वीकृत नहीं है। वे दादू को निम्नवर्ण का अवश्य मानते हैं। परन्तु मुसलमान नहीं। इस सम्बन्ध में मेनारिया सेनबाबू के मत का समर्थन करते है। उनका प्रमाण यह है कि दादू पंथ में बालक राम नामक संत हुए है जो दादू के नाती थे। और उनके लिखे पद में दादू का मुसलमान होना स्वीकृत किया गया है इसलिये दादू वास्तव में मुसलमान ही रहे होंगे[1]। दादू का स्वर्गवास संवत् १६६० में हुआ था। अपने जीवन के अंतिम दिनों में ये नरेना में निवास करते थे।

रचना:—दादू के पद "वाणी" के रूप में संग्रहीत हैं। इनकी वाणी की तुलना कबीर की वाणी से की जाती है दादू के सैकड़ों शिष्य थे जिनमें से ५१ बहुत प्रसिद्ध हैं। दादू स्वभाव से बड़े सरल एवं विनम्र थे। विशेष बात यह है कि दादू गुजरात एवं राजस्थान दोनों प्रदेशों में समान रूप से प्रसिद्ध थे।

"वाणी" में प्रेम, गुरुभक्ति, माया, ब्रह्म, सतसंग, जन्म इत्यादि तत्व ज्ञान सम्बन्धी इनके विचार हैं। भाषा इनकी पिंगल सीधी साधी और सुलझी हुई है और भावों में गम्भीरता है।

१२. पृथ्वीराज राठौर (१६०६)—

पृथ्वीराज राठौर बीकानेर राज्य के राजकुमार थे। स्वयं एक वीर योद्धा थे और साथ ही कवि एवं भगवद् भक्त भी थे। नाभादास रचित भक्तमाल में इनका भी उल्लेख है।

रचनाएँ:—'वेलि क्रिसन रुकमणीरी', 'दशम भागवत का दूहा', 'गंगा लहरी' बसदेव रावउत तथा दशरथ रावउत आदि।

१३. माधोदास—(सं० १६१०)

ये प्रसिद्ध चारण चूंड़ाजी के बेटे थे जो कि दधवाड़िया गाँव के निवासी थे। इनका जन्म संवत् १६१० से १६१५ के बीच हुआ था। जन्म स्थान के विषय में कोई निश्चित पता नहीं है परन्तु अनुमान किया जाता है कि इनका जन्म जोधपुर राज्य के अन्तर्गत बलूंदा गाँव में हुआ था। ये जोधपुर के महाराजा सूरसिंह के आश्रित थे। ये भगवान के परम भक्त थे और साथ ही उच्च कोटि के कवि भी।

रचनाएँ:—इन्होंने "राम रासो" और "भाषा दशम स्कन्ध" लिखे हैं। जिनमें से दशम स्कन्ध अप्राप्य है और राम रासो प्राप्य ग्रन्थ है। भाषा इनकी पिंगल थी।

---

1. राजस्थान का पिंगल साहित्य—डा० मोतीलाल मेनारिया पृ०-१८३

१४. अल्लूजी—

ये चारण जाति के भक्त कवि थे। इनका जन्म संवत् १६२० के लगभग माना जाता है[1]। जन्मस्थान अज्ञात है। इनकी कविता सरल, भक्तिभाव पूर्ण एवं ज्ञान वर्धक है।

रचना:—इनके भक्ति एवं ज्ञान के फुटकर पद ही प्राप्य हैं। भाषा डिंगल है।

१५. रज्जबजी—

ये जाति के पठान थे। इनका जन्म जयपुर राज्य के अन्तर्गत साँगानेर में संवत् १६२४ के आसपास हुआ था। डा० हीरालाल माहेश्वरी ने इनका जन्म संवत् १६१८ और १६२४ के आस-पास माना है। २० वर्ष की अवस्था में ये साँगानेर से आमेर गये थे। और वहीं दादू दयाल से इनका साक्षात्कार हुआ। उनसे ये इतने प्रभावित हुए कि वहीं उनके शिष्य बन गये और उन्हीं के साथ रहने लगे। दादू दयाल की मृत्यु के समाचार से इन्हें इतना आघात लगा कि कहते हैं इन्होंने भी अपनी आँखें बन्द कर ली और जीवन पर्यन्त बन्द रखी। इनके अनेक शिष्य हुए जो रज्जब पंथी कहलाते हैं इनका मुख्य केन्द्र साँगानेर है[2]। इनका देहांत सम्वत् १७४६ में हुआ था।

रचनाएं:—इन्होंने "वाणी" और सर्वंगी नामक दो बड़े ग्रंथ लिखे। इनमें इनकी कवित्व शक्ति, ज्ञान गरिमा एवं गुरु भक्ति का परिचय प्राप्त होता है। इनकी पिंगल और कविता भावमयी है। प्रेम एवं भक्ति के भावों को इन्होंने अत्यन्त मार्मिक तथा स्वाभाविक ढंग से चित्रित किया है। इनकी वाणी की संख्या दस हजार से भी ऊपर मानी जाती है[3]।

१६. अग्रदास:—

ये जयपुर अन्तर्गत गलता ग्राम के निवासी थे तथा इनका जन्म संवत् १६३२ में माना जाता है।[4] पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इनका सं० १६३२ तक जीवित होना बतलाया है। परन्तु उसका कोई प्रमाण नहीं दिया। डॉ० मेनारिया ने इनका संवत् १६६० तक जीवित होना प्रमाणित किया है और प्रमाण में इन्होंने प्रियादास

---

१. राजस्थानी भाषा और साहित्य—डॉ० मोतीलाल मेनारिया पृ०—१६०
२. राजस्थान का पिंगल साहित्य— " " पृ०—१८६
३. साधु नारायणदास जी—कल्याण सन्तवाणी अंक पृ०—५६३
४. हि० सा० का० आ० इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा पृ०—५७२

की भक्त माल की टीका का उल्लेख दिया है[1]। ये कृष्णदास पयहारी के प्रमुख शिष्य थे। एवं नाभादास के गुरु थे। राम के परम भक्त थे। इन्होंने अनेक ग्रन्थों का रचना की है। इनमें मुख्य श्रीराम भजन मंजरी, पदावली, हितोपदेश भाषा, उपासना वावनी, ध्यान मंजरी, कुंडलियां, अष्टयाम्, अग्रसार और रहस्यगर्भ इत्यादि हैं। भाषा इनकी ब्रज है एवं भाव भक्तिपूर्ण। इनकी भाषा में राजस्थानी शब्दों का प्रयोग भी बहुत मिलता है। डा० रामकुमार वर्मा ने इनके पाँच ग्रंथों का उल्लेख किया है परन्तु वास्तव में इनके नौ ग्रंथ हैं।

१७. गरीबदास—

ये दादू पंथ के प्रवर्तक प्रसिद्ध भक्त कवि दादू दयाल के ज्येष्ठ पुत्र थे। इनका जन्म संवत् १६३२ में हुआ था। ये अच्छे पंडित एवं सङ्गीत विद्या में निपुण थे। दादू की मृत्यु के पश्चात् उनकी गद्दी के यही उत्तराधिकारी हुए। दादू तथा गरीबदास जी के पिता पुत्र होने के सम्बन्ध में विद्वानों में थोड़ा मतभेद है।

स्व० पुरोहित हरिनारायण जी जैमल चैनजी, राघव दास जी तथा दादूपंथी अनुयायिओं के मतानुसार ये दादू के औरस पुत्र थे। जबकि इस विषय में दूसरा मत आधुनिक विद्वानों का यह है कि ये दादू के पौष्य पुत्र थे औरस नहीं[2]। इनके अनुसार गरीबदास दामोदर जी नामक व्यक्ति के पुत्र थे। इतना तो सर्वसम्मति से सिद्ध है कि ये दादू के परम शिष्य थे उनके पश्चात् यही उनके उत्तराधिकारी हुए थे।

रचनाएं:—"पद", "साखी" "तथा आत्मबोध इत्यादि है। इनकी वाणी में ओजस्विता एवं सच्चाई है। ये दर्शन शास्त्र के भी अच्छे पंडित एवं एक प्रतिभाशाली कवि थे।

१८ सायांजी—

इनका जन्म सं० १६३२ में इडर राज्य के लीलछा नामक गाँध में हुआ था। डा० माहेश्वरी ने इनका नाम सांया झूला लिखा है वास्तव में वे यही सांयाजी है ये चारण कवि होने के साथ-साथ अच्छे भक्त कवि भी थे। महन्त गोविंद दास जी के शिष्य थे। इनको संगीत और ज्योतिष का भी अच्छा ज्ञान था। इनका भी संबंध गुजरात एवं राजस्थान दोनों प्रदेशों से समान रूप से रहा होगा। कहा जाता है कि

---

१. राजस्थान का पिंगल साहित्य—डा० मोतीलाल मेनारिया पृ०--६८
२. " " " " " पृ०-१८६

ये मूलतः काठियावाडी थे। ईडर के राव श्री कल्याणमल के ये आश्रित थे। ये एक अच्छे कवि थे एवं कृष्ण के परम भक्त थे। इनकी मृत्यु सं० १७०३ में बतलायी जाती है।

रचनाएं:—"रुक्मिणी हरण" तथा "नाग दमन" इनकी भाषा पर गुजराती का प्रभाव पूर्ण दिखलायी पड़ता है।

१९. जगन्नाथदास—(सं० १६४०)

ये भी दादूदयाल के प्रिय शिष्य थे। इनका जन्म सं० १६४० में हुआ था। दादू दयाल की इन पर बड़ी कृपा थी। प्रायः उनके साथ ही रहते थे। जाति के ये कायस्थ थे। भक्त होने के साथ ही साथ एक योग्य एवं प्रतिभावान कवि भी थे।

रचनाएं:—इन्होंने "वाणी", "गुण गंजनामा", "गीतासार" एवं 'योगवाशिष्ठसार' आदि रचनायें की है। जिसमें प्रथम दो विशेष प्रसिद्ध हैं।

२०. नाभादास—(सं० १६४२-१६८०)

ये "भक्तमाल" के रचयिता प्रसिद्ध भक्त एवं कवि थे। इनका जन्म संवत् १६४२ में हुआ था। स्व० पुरोहित हरिनारायण जी ने इनका रचनाकाल संवत् १६४०-८० बतलाया है। ये अग्रदास के शिष्य थे इनका मूल नाम नारायणदास था। इनकी जाति के सम्बन्ध में मतभेद है। कोई इन्हें कहता है एवं कोई इनके क्षत्रिय होने का भी उल्लेख करते हैं। परन्तु प्रियादास कृत भक्तमाल की टीका के आधार पर डा० मेनारिया जी का मानना है कि ये क्षत्रिय थे क्योंकि प्रियादास इनको हनुमान वंशी बतलाते हैं और हनुमानवंशी क्षत्रीय भी होते हैं। अन्य इनकी रचनाओं में अष्टयाम तथा रामचरित सम्बन्धी पद भी है।

२१. नरहरिदास—(सं० १६४८-१७३३)

इनका जन्म संवत् १६४८ में हुआ था। ये रोहड़िया शाखा के चारण लख्खाजी के पुत्र थे और जोधपुर नरेश महाराज गजसिंह के आश्रित थे।

इन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की है। जैसे अवतार चरित्र, दशमस्कन्ध भाष, रामचरित्त कथा, अहिल्या पूर्व प्रसंगवाणी, नरसिंह अवतार कथा तथा अमरसिंह का दूहा आदि हैं। इनका देहान्त संवत् १७३३ में हुआ।

२२. जनगोपाल—

इनका जन्म संवत् १६५० के लगभग हुआ था। ये दादू दयाल के ही शिष्य थे। उनसे इन्होंने गुरुमन्त्र लिया था। ये फतहपुर सीकरी के निवासी थे। जाति के

वैश्य थे। इनके पद एवं छन्द दादू पंथियों में बहुत प्रचलित हैं। इन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की है। इनकी प्रसिद्ध रचनायें निम्नानुसार हैं।

दादू जन्मलीला पर भी ध्रुव चरित, 'प्रहल्लाद चरित', 'भरत चरित्र', 'मोह विवेक', 'चौबिस गुरुओं की लीला', 'शुक संवाद', 'अनंत लीला', 'बारह मासिया' तथा 'भेट के सवैये कवित' इत्यादि।

२३. जगजीवन—

जाति के ब्राह्मण थे। इनके जन्म संवत् के विषय में निश्चित् तिथि ज्ञात नहीं है परन्तु इनका रचनाकाल सं०–१६५० के आस पास का माना गया है। ये भी दादू के प्रधान शिष्य थे। स्वयं बहुत बड़े संत और शास्त्र वेत्ता भी थे तथा काव्य कला में निपुण एक अच्छे कवि थे। प्रारम्भ में इनका वैष्णव होना बतलाया गया है बाद में दादू पंथी बन गये। इनकी रचनाओं पर वैष्णव धर्म के सिद्धान्तों का बड़ा प्रभाव है। भाषा इनकी सरल, सीधी और सरलता पूर्ण है।

रचना :—इनकी दो रचनाएं प्रधान हैं। एक वाणी तथा दूसरी दृष्टांत साखी संग्रह।

(सत्रहवीं शती)

२४. दामोदरदास—(सं० १६५० और १६६० के बीच)

ये भी दादू की शिष्य परम्परा में जगजीवन के चेले थे। मिश्रबन्धु विनोद में इनका काल सं० १७१५ बताया गया है परन्तु अधिक प्रामाणिक समय इनका सवत् १६५० और सं० १६६० के बीच माना जाता है। इन्होंने मार्कन्डेय पुराण का गद्य में अनुवाद किया है और पद्य रचना भी करते रहे थे।

२५. माधोदास—

ये मारवाड़ के अन्तर्गत गूलट स्थान के निवासी थे। इनका रचनाकाल स० १६६१ माना जाता है। ये भी दादू की शिष्य परम्परा में ही रहे होंगे क्योंकि इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ संत गुणसागर सिद्धांत में इन्होंने दादू का चरित्र भी दिया है। प्रस्तुत ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी एवं साहित्यिक महत्व की रचना है।

२६. भीखजन—

ये दादू संत परम्परा में ही प्रसिद्ध भक्त संतदास के चेले थे। इनका रचना काल संवत् १६८३ माना गया है। ये भजन कीर्तन में मग्न रहते थे और बड़े गुणवान साधु थे। ये फतहपुर के निवासी थे।

कारण अधिक नहीं रहते थे। पर्यटन का इन्हें बहुत शौक था। अपने जीवन के अन्तिम समय में ये सांगानेर मे थे। वहीं संवत् १७४६ में इन्होंने देहत्याग किया। जहाँ इनकी दाहक्रिया हुई थी। वहाँ इनके शिष्यों ने एक समाधि स्वरूप चबूतरा बनाया था जो सं० १८६५ तक विद्यमान था। बाद में उसे किसी ने नष्ट कर दिया उनके उस समाधि स्थान पर यह पद खुदा हुआ था :—

सम्वत् सत्रासे छीयाला कार्तिक सुदि अष्टमी उजाला।
तजे पहर भरसपतिवार सुन्दर मिलिया सुन्दर सार॥

इस पद से इनके निर्वाण काल का प्रमाण मिलता है। ये सुन्दर दास फतहपुरिया भी कहलाते हैं, क्योंकि इनके पाँच प्रधान शिष्य थे, जिनके पाँच थामें, प्रधान थामे कहलाते है। जिसमें से फतहपुर का थामा प्रसिद्ध है। वहाँ इनके अनुयायियों के पास सुन्दरलाल जी की पुस्तकें, टोपा, पलंग, इत्यादि अभी तक सुरक्षित हैं।[1]

२६. सन्तदास—(सं० १६६६)

ये दादूजी के प्रधान शिष्यों में से एक थे इनके काल का ठीक से पता नहीं हैं परन्तु इनका समाधिकाल सं० १६६६ है। कहते है इन्होंने जीवित समाधि ली थी। इन्होंने "वाणी" की रचना की, जिसमें १२ हजार छन्द लिखे पाये जाते है और इसी लिये ये 'बार हजारी' भी कहलाये। इनका समाधि स्थान फतहपुर मे विद्यमान है। जिस पर इनका निर्माण काल सवत् खुदा हुआ है।

३०. हरिदासजी—

ये प्रसिद्ध महात्मा और प्रभाव शाली व्यक्तित्व वाले सहृदय कवि थे। इन्होंने निरंजन पंथ नाम से नये सम्प्रदाय की स्थापना की थी, जिसमें परमात्मा की निरंजन, निराकार के रूप में उपासना करना मुख्य लक्ष्य था। इनके ५२ शिष्य थे जिनमें से कुछ साधु और कुछ घरबारी भी थे। इनके घरबारी शिष्य मस्तक पर रामानन्दी तिलक करते थे और साधु गले में खाकी गूदड़ी बाँधते थे।

मारवाड़ में डीडवाने के पास गाढ़ा नामक स्थान है जहाँ हरसाल फाल्गुन सुद प्रतिपदा से द्वादशी तक मेला लगता है। उस समय मेले में इस पंथ के अनेक साधु यहाँ एकत्रित होते है इस अवसर पर हरिदासजी की गूदडी के दर्शन कराये जाते हैं। गाढ़ा निरजनी पथियों का प्रधान केन्द्र है यहाँ महंत और साधु रहते हैं। इनके

---

१. राजस्थान का पिंगल साहित्य—डा० मो० मेनारिया पृ०—१६३

प्रधान शिष्यों में पूरणदास, अमरदास तथा नारायण दास इत्यादि थे, क्योंकि इनके थांमे यहाँ स्थापित हुए हैं इनमें से अनेक आज भी विद्यमान हैं।

हरिदास जी के जन्म संवत् के सम्बन्ध में विशेष वृतांत अज्ञात ही है। परन्तु इनका देहान्त संवत् १७०२ के आस पास होना माना जाता है जोधपुर राज के कायड़ोद ग्राम में इनका जन्म हुआ था[1]! इनकी जाति के सम्बन्ध में मतभेद है। कुछ क्षत्रिय बतलाते हैं जब कि कुछ लोग इन्हें जाट बतलाते हैं तथा अन्य विद्वानों के मतानुसार ये राठोड़ थे। कई वर्षों तक यह गृहस्थाश्रमी थे। एकबार दुभिक्ष में ये जंगल में चले गये थे वहाँ भगवान ने गोरख रूप में इन्हें दर्शन दिये तथा उपदेश दिया,तब से ये भगवद् भक्त बन गये थे।

इनके ग्रन्थों की भाषा बड़ी सीधी सादी तथा सरल है। इनकी वाणी बड़ी मार्मिक है। विषय कविता का ज्ञान एवं अध्यात्म वाद है। डा० मोतीलाल मेनारिया ने राजस्थान के पिंगल साहित्य ग्रन्थ में इनके स्वर्गवास का समय संवत् १७८० लिखा है[2]।

इन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की है जिनमें मुख्य- भक्त विरदावली','भरथरी संवाद', साखी, पद नाममालो ग्रन्थ, नाम निरुपण ग्रन्थ, व्याहलो, जोग ग्रन्थ, टोडरमल जोग ग्रन्थ इत्यादि है।

३१. वाजीदजी—(सं० १७०८)

ये भी जाति के पठान थे। मिश्र बन्धु के अनुसार इनका जन्म सं०—१७०८ बताया गया है परन्तु यह संदिग्ध लगता है। भक्त माल में इनका परिचय मिलता है जिसके अनुसार ये हिरन का शिकार करते समय दया से विचलित हो गये और तब से दादू के शिष्य बन गये। इन्होंने लगभग १६ ग्रन्थों की रचना की है।

३२. जग्गाजी—(सं० १७१५ रचनाकाल)

ये खिड़िया शाखा के प्रसिद्ध चारण थे। इनके पिता का नाम रतनाजी था। ये सीतामऊ राज्य के शामलखेड़ा गांव के निवासी थे। इनके वंशज उस गाँव में आज भी रहते हैं। ये एक अच्छे ज्ञानी-भक्त कवि थे।

इनके जन्म संवत् की निश्चित् जानकारी नहीं है परन्तु इनका रचनाकाल संवत् १७१५ था। इन्होंने भी अनेक ग्रन्थों की रचना की है जिसमें "रतन सा॰ी"

१—रिपोर्ट मर्दुमशुमारी राज्य मारवाड़ सन् १८६१—पृ०-२८०

२—राजस्थान का पिंगल साहित्य—डा० मेनारिया पृ० संख्या--२०९

विशेष प्रसिद्ध हैं। इनके रचे हुए अनेक फुटकर पद आध्यात्मिक भाव से परिपूर्ण है।

३३. कुलपति—(स० १७२४ से १७४३ रचनाकाल)

ये जाति के मिश्र माथुर चौबे थे, परन्तु इनके पिता परशुराम जयपुर दरबार के राज कवि थे इनका रचना काल संवत १७२४ से १७४३ के आस पास माना जाता है इन्होने कुल ५० ग्रन्थों की रचना की है। जिनमें से केवल १० ही अब तक प्राप्त हो सके हैं। इनके ग्रन्थों की भाषा ब्रज भाषा है।

कहा जाता है कि ये प्रसिद्ध कवि बिहारी के भानजे थे[1]। इनको जयपुर के राजा जयसिंह ने कवि वर की उपाधि प्रदान की थी परन्तु इसका कोई प्रमाण प्राप्त नहीं है। इनका जगन्नाथ का शिष्य होना भी बतलाया जाता है। इनके रचित अनेक ग्रन्थ है परन्तु प्राप्त ग्रन्थों में हमारे विषय से सम्बन्धित केवल 'संग्राम सार्ई', 'संग्राम सागर', "दुर्गाभक्ति चन्द्रिका", तथा "दुर्गा सप्तशती" का अनुवाद महाभारत की कथा के आधार पर रचित है। इनकी भाषा में लालित्य तथा काव्य कलापूर्ण है।

३४. दरियावजी या दरियासाहब—(जन्म सं० १७३३)

इनका जन्म जोधपुर राज्यान्तर्गत जेतारण नामक स्थान संवत् १७३३ में हुआ था इनके पिता का नाम भानजी तथा माता का गीगाबाई था। विद्वानों ने इनको मुसलमान मान लिया परन्तु वास्तव में वैसा नहीं है। परन्तु इसके माता पिता के नाम ही इस बात को स्पष्ट करते हैं कि वे मुसलमान नहीं थे[2]। इन्होंने संवत् १७६६ में दीक्षा ली थी बाद में ये जेतारण से रैण नामक स्थान पर चले गये थे और वहीं इन्होने अपने पंथ की गद्दी स्थापित की थी। दरियावजी के शिष्य राजस्थान के अन्य भागों में भी काफी संख्या में हैं। ये हिन्दी, संस्कृति और फारसी के भी अच्छे ज्ञाता थे और काव्य रचना में निपुण थे।

इन्होंने अनेक पदों की रचना की है जो "वाणी" नामक ग्रन्थ में संग्रहीत हैं। कहा जाता है कि इन्होंने लगभग १००० पदों की रचना की थी परन्तु उनमें से बहुत कम पद प्राप्त हैं। ये रामस्नेही पंथ के अनुयायी थे और इस पंथ के कवियों मे केवल यही एक ऐसे कवि हुए जिनकी भाषा सुव्यवस्थित एवं रचना कवित्वपूर्ण हैं।

---

१. राजस्थान का पिंगल साहित्य—डा० मो० मेनारिया पृ०-२०७
२. " " " "

३५. कल्याणदास–

ये मेवाड़ राज्य के समेला गांव के निवासी थे। ये भीट वाघजी के बेटे थे। इनका जन्म संवत् अज्ञात है। इनका रचना काल संवत् १७६०–६५ के आस पास माना जाता है।

इन्होंने गुण गोविन्द नामक ग्रन्थ की रचना की है। जिसकी भाषा डिंगल है। और उसमें राम और कृष्ण की विविध लीलाओं का भक्ति भाव पूर्ण सरस वर्णन है।

३६. खेमदास–

ये दादू की शिष्य परम्परा में श्री रज्जवजी के शिष्य थे, इनका जन्म काल अज्ञात है। रचना काल संवत् १७४० के आस पास का है। डॉ० मैनारिया ने अपने राजस्थानी का पिंगल साहित्य में इनका रचना काल सं० १७०० दिया है। ये बड़े ज्ञानी और भक्त कवि थे। राघवदास जी ने भक्त माला में इनके गुणों की बहुत प्रसंशा की है। इनके रचित ग्रन्थ चार प्रसिद्ध हैं। इनकी भाषा प्रौढ़ एवं परिमार्जित है। इनकी काव्य शैली संयत एवं गम्भीर है। इनकी भाषा में उर्दू-फारसी के शब्द भी मिलते हैं।

रचनाएं :–"धर्म संवाद", "शुक संवाद", 'ज्ञान चितामणी' इत्यादि लगभग १७ ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं।

३७. राघवदास–

ये जाति के क्षत्रिय थे। ये प्रहलाद के शिष्य थे। इन्होंने "भक्त माल" नामक ग्रन्थ की रचना संवत् १७१० में की है। जैसा कि इस पद से ज्ञात होता है:–

संवत् सत्रहसे सत्रहोत्तरा; सुकल पक्ष सनिवार।
तिथि त्रितिया आषाढ़ की, राघो कियो विचार॥

इन्होंने अपने भक्त माल में दादू पंथी संतों तथा अन्य सम्प्रदाय के संतों के चरित्रों का वर्णन किया है इस दृष्टि से इनका यह ग्रन्थ बड़ा उपयोगी एवं महत्व पूर्ण है। इनकी भाषा में राजस्थानी और व्रज का मिश्रित रूप है। कविता सरल और सार गर्भित है। कहते हैं पहले यह वैष्णव थे बाद में दादू पंथ के अनुयायी बन गये।

रचना–'भक्तमाल' जिसकी रचना इन्होंने अपने गुरु प्रहलाद दास जी की आज्ञा से की।

३८. बिहारीलाल—

बिहारी सतसई के रचयिता हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि बिहारी का जन्म ग्वालियर के गोविन्दपुर ग्राम में हुआ था तथा उनके जीवन के अनेक वर्ष बुन्देल खंड एवं मथुरा मे बीते थे । परन्तु वे जयपुर के राज जयसिंह के आश्रित कवि थे, अतः उनका कवि - जीवन का सम्बन्ध राजस्थान से भी है । साथ ही उनकी सतसई में अनेक पद भक्तिभाव के लिये प्रसिद्ध है इस दृष्टि से हमारे इस प्रबन्ध के विषय से उनका सम्बन्ध है ही । बिहारी का जन्म संवत् १६०० के लगभग माना जाता है, परन्तु डा० मेनारिया ने 'बिहारी बिहार' के एक पद के आधार पर उनका जन्म-काल सं० १६५२ स्वीकार किया है[1] । इनका देहांत सं० १७२१ में हुआ था । कुछ विद्वानों ने "रामचन्द्रिका" के प्रसिद्ध कवि केशवदास को इनका पिता कहा है जब कि दूसरा मत इन्हे केशवदास का शिष्य बतलाता है । कुछ भी हो वास्तव में इनके पिता माता आदि के सम्बन्ध मे कोई निश्चित प्रमाणित जानकारी नही है । इतना निश्चित है कि वे माथुर चौबे थे और अपने युग के एक प्रमुख कवि थे इसका प्रमाण तो उनकी "सतसई" ही है । सतसई में कृष्णभक्ति से सम्बन्धित अनेक दोहे प्राप्त होते हैं जो उनकी काव्य कला की उत्कृष्टता के साथ-साथ उनके भक्त हृदय का भी परिचय देते हैं ।

१—राजस्थान का पिंगल साहित्य—डा० मेनारिया पृ०—८६

षष्ठ परिच्छेद

काव्य साहित्य - तुलनात्मक अध्ययन

षष्ट परिच्छेद—

काव्य साहित्य - तुलनात्मक अध्ययन

काव्य को ब्रह्मानन्द सहोदर कहा गया है। यह उक्ति भक्त एवं सन्त कवियों की रचनाओं के लिए विशेष चरितार्थ होती है। ब्रह्मानन्द के अनुभव की अभिव्यक्ति ही काव्य है। हमारे वैदिक साहित्य में, श्रुति में तथा गीता में भी कवि को आत्मा का रूप कहा गया है[1]। कवि के लिए ब्रह्मानन्द का केवल अनुभव ही पर्याप्त नहीं होता। वह उसको अभिव्यक्त करना चाहता है। और अभिव्यक्ति भी रसात्मक होनी चाहिए। "वाक्यं रसात्मकम् काव्यम्" के अनुसार अनुभूति को रसयुक्त वाक्यों में काव्य का रूप दिया जाता है। वाक्य की रसात्मक रचना में भाषा का सौन्दर्य भी सहायक होता है। भाषा की सौन्दर्य-वृद्धि में वक्रोक्ति, अलंकार योजना इत्यादि का बड़ा महत्व है। तात्पर्य यह है कि भावपक्ष एवं कलापक्ष के सुन्दर समन्वय से सफल काव्य-फल की प्राप्ति होती है। इन सारे तत्वों को ध्यान में रखते हुए हम प्रस्तुत परिच्छेद में राजस्थान एवं गुजरात के भक्त तथा संत कवियों के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन करेंगे। परन्तु इसके पूर्व यहाँ एक बात स्पष्ट कर कर देनी आवश्यक प्रतीत होती है कि यद्यपि हमारे आलोच्यकाल के अधिकांश काव्यों ने इन काव्यांशों का अपनी रचनाओं में सुन्दर परिचय दिया है तथापि हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि मूलतः वे भक्त थे। भगवान के प्रति अपने अन्तः करण की भक्ति भावना को व्यक्त करना ही उनका प्रमुख उद्देश्य था। भक्ति के आवेग और आनन्द में उन्होंने अपनी अनुभूति को वाणी का रूप दिया है।

१—कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्॥

गीता अ०—८ श्लोक—९

भाव पक्ष

वर्ण्य विषय—

इन कवियों के काव्य का विषय मुख्यत भक्ति ही रहा है[१]। वैष्णव भक्त कवियों की भक्ति रस की कविताओं के केन्द्र कृष्ण है। उसी प्रकार राम भक्त कवियों के काव्य में राम का चरित्र केन्द्र स्वरूप है। गुजरात एवं राजस्थान दोनों प्रदेशों में अनेक ऐसे कवि भी हुए हैं जिन्होंने श्रीमद् भागवत् की कथा वस्तु को लेकर अपने काव्य की रचना की है। रामचरित तथा गीता के आधार पर भी यहाँ काव्य लिखे गये हैं। भक्त कवियों में नरसिंह, मीराँ, भालण, भीम, प्रेमानन्द. ईसरदान ने कृष्ण अथवा राम को आलम्बन बनाकर भक्ति रस से परिपूर्ण अभूतपूर्व काव्य की रचनायें हैं और मध्यकाल के काव्य साहित्य को समृद्ध किया है। इनके साथ ही भक्त-चरित्रों को लेकर कथा काव्य अथवा आख्यानों की रचना की है। प्रहलाद आख्यान, ध्रुवाख्यान, आदि आख्यानों की रचना करके तथा लोक समाज में गा गाकर भक्ति भाव के प्रचार में अपना योग दिया है। भक्त कवियों के फुटकर पदों में तथा आख्यानकारों के आख्यानों में भगवान के स्वरूप का चित्रण तथा उनके महत्व का गुणगान हमें सर्वत्र प्राप्त होता है। भक्त कवियों के काव्य साहित्य में आत्मनिवेदन के पद भी प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं। भक्तों ने भगवान के आगे अपनी दीनता का अपनी अल्पज्ञता का तथा अपनी अक्षमता का वर्णन करते हुए उनके चरणारविंदों में स्थान पाने का निवेदन बड़े हृदयस्पर्शी शब्दों में किया है। भक्तों के लिये भगवान की लीलाएं आनन्द और श्रद्धा की प्रेरणादायक बनी है। कृष्ण के जीवनकी मनोमुग्धकारी लीलाओं का वर्णन करते समय नरसी, मीरां जैसे भक्त कवि अपने आस-पास के जीवन और जगत् को भूलकर तन्मय बन जाते हैं। स्वार्थ तथा संकुचितता से पूर्ण इस संसार में भक्तिमय जीवन जीने के लिए इन भक्तों को बहुत बड़ा मूल्य चुकाना पड़ा है। परिवार जाति और समाजने इन्हें दुख देने में कोई कसर नहीं नठा रखी थी। व्यङ्ग तथा अपमान की वर्षा इन्हेंसर्वदा सहन करनी पड़ती थी। इस प्रकार सामाजिक जीवन में होने वाले कटु अनुभव भी इन भक्तों के काव्य के विषय बने हैं। किन्तु भक्तों की प्रार्थना और प्रेम से द्रवित होकर करुणामय भगवान ने इनकी हमेशा रक्षा की है। इस काल की इन रचनाओं में भक्त की पुकार पर भगवान के द्वारा की गई सहायता के प्रसंगों को लेकर पद रचे गये हैं।

दूसरी ओर संत कवियों की रचनाएं आध्यात्मिक विषय को लेकर रची गयी है। ब्रह्म, माया, जीव के स्वरूप तथा सम्बन्ध की चर्चा संत कवियों के पदों

१—राजस्थानी भाषा और साहित्य—डा० मोतीलाल मेनारिया पृ०—१३२

में प्राप्त होती है। सत् गुरु का महत्व तथा परमात्मा की शक्ति का गुणगान भी संतों की रचनाओं का विषय रहा है। राजस्थान में दादू तथा उनकी परम्परा के संत कवि एवं गुजरात में अखो, नरहरि, गोपाल प्रभृति ज्ञानमार्गी कवियों की वाणियाँ उनकी आध्यात्मिक अनुभूति की सुन्दर परिचायक हैं। अपनी आत्मा को जगत् के माया मोह के बन्धन से मुक्त कर परमात्मा से एकत्व स्थापित करने की उत्कृट अभिलाषा संतों के जीवन में प्रधान रूप से रही है। साधक का अपने इष्ट के प्रति प्रेम तथा उनके वियोग का दुःख भी उनकी रचनाओं का मुख्य विषय रहा है। संसार की क्षणभंगुरता एवं भौतिक सुख की निस्सारता के सम्बन्ध में भी अनेक पद संतवाणी के अन्तर्गत प्राप्त होते हैं। इस लौकिक जीवन की कटुता के प्रति संत कवियों ने मनुष्य को बारंबार सचेत किया है। भक्त कवियों की भाँति संतों की वाणी में भी आत्मनिवेदन के अनेक पद हमें प्राप्त होते हैं। इस प्रकार विभिन्न विषयों को लेकर रचे गये भक्त एवं संत कवियों के काव्य साहित्य पर यहाँ विचार करेंगे।

वैष्णव भक्तः—

बाल-लीला तथा रूप वर्णन

भगवान का सुन्दर साकार रूप सगुणोपासक भक्त के हृदय को सदा मोहित करता रहा है। गुजरात एवं राजस्थान के भक्त कवि भी अपने इष्ट कृष्ण अथवा राम के मनोहारि सौन्दर्य का वर्णन बड़ी तन्मयता से करते हैं। नरसी मेहता ने कृष्ण के बालस्वरूप का चित्रण करते हुए लिखा है--माता यशोदा जब बाल कृष्ण को भोजन के लिए बुलाती है तब नाचते हुए कृष्ण आते हैं, मुख से मधुर वचन बोलते हैं। अपना अंग अंग नचाते हैं। कृष्ण के मुख की शोभा ऐसी है मानो पूर्णिमा का चाँद विराजमान हो, उनके नेत्रों की चंचलता को देखकर तो कामदेव भी मन ही मन लज्जित होता है। दोनों नेत्रों में अंजन लगाया हुआ है। वक्षस्थल पर गज-मोती झूल रहा है, मस्तक पर लगाई हुई तिलक रेखा अत्यन्त शोभित होती है, माता देख-देख कर हर्षित होती है। जब कृष्ण आकर माता के गले लग जाते हैं तब यशोदा दुलार करती है और एक क्षण भी उसे दूर नहीं करती। गोद में बैठाकर माता कृष्ण को भोजन कराती है, तथा आनन्द प्राप्त करती है।

जसोदाजी जमवाने तेडे, नांचता हरि आवे रे,
बोले मीठ्ठा बोलडीआने, अंगो अंग नचावे रे।
मुख नी शोभा शो कहुं जाणे, पूनमचंद विराजे रे,
नेत्र कमलना चाला जोई जोई, मन्मथ मनमां लाजे रे।

अंजन वेउ नयणे सारयां, उर लटके गजमोती रे,
तिलक तणी रेखा अति सुन्दर, माता हरखे जोती रे।
स्नेह जणावी ने पुत्रनो कांये, आवीने कोटे वलग्यो रे,
लाडकडो अति लाड करे छे, क्षण ना महेलु अलगो रे।
खोले बेसाडी ने भोजन करतां, माता आनंद पामी रे,
भक्त वच्छल भूधरजी मल्या, मेहता नरसैंया नो स्वामी रे।

बाल लीला पद–२

राजस्थानी कवयित्री मीरां ने कृष्ण की बाल लीला का वर्णन इस प्रकार किया है :—

यशोदा अपने लाल को प्रातः काल जगाती हुई कहती है :—

मेरे प्यारे वन्सी वाले लाला जागो, रात बीत गई, प्रातः काल हुआ, घर घर के द्वार खुल गये। दही मथती हुई गोपियों के कगन की झनकार सुनाई देती है। हे लाल उठो! द्वार पर देव और मानव खड़े है। ग्वाल बाल सब कोलाहल करते है तथा जय जय कार करते है। गायों के रख वाले कृष्ण ने हाथ में मक्खन और रोटी ली है। मीरा के प्रभु शरणागत को रक्षा करने वाले है।

जागो वंसी वाले ललना, जागो मोरे प्यारे।
रजनी वीती भोर भयो है, घर-घर खुले किंवारे।।
गोपी दही मथत सुनियत है, कंगना के झनकारे।
उठो लालजी भोर भयो है, सुर नर ठाढ़े द्वारे।।
ग्वाल-बाल सब करत कुलाहल, जय जय शब्द उचारे।
माखन रोटी हाथ में लीनी, गउवन के रखवारे।।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, शरण आया कूं तारे।।

- मीरांबाई की पदावली–पद १६५

मीरां ने जब से नन्द-नन्दन को देखा है तब से लोक परलोक कुछ भी उसे सुहाता नही। कृष्ण के उस मन मोहक रूप को देखकर मीरां अपना सर्वस्व भूल जाती है। जिस कृष्ण के सौन्दर्य पर वह मुग्ध है उनके सुन्दर शीश पर मोर-मुकुट सुशोभित हो रहा है, मस्तक पर लगा हुआ केसर का तिलक तीनो लोक को मोहित करता है। सावरे रंग के, त्रिभगी अंग वाले कृष्ण की चितवन मे जादू भरा है। जिनके आगे खंजन, भ्रमर, मीन तथा मृगशावक की दृष्टि भी मद पड जाती है। रक्त वर्णी अधर हैं तथा मुख पर मधुर हास्य है। दन्त पंक्तिया दाड़मसी है यथा विद्युतसी

चमकती है। कटि में छोटी घंटिका तथा पैरों में नूपुरों की ध्वनि शोभा देती है। मीरां का मन ऐसे कृष्ण के चरणों पर मुग्ध है।

जब से मोहि नंद-नंदन दृष्टि पर्यो माई,
तब ते परलोक-लोक कछू ना सोहाई।
मोर मुकुट चन्द्रिका, सुशीश मध्य सोहे,
केशर को तिलक भाल तीन लोक मोहे।
सांवरो त्रिभंग अंग चितवनि में टोना,
खंजन औ मधुप मीन भूल मृग छोना।
अधर बिम्ब अरुण नयन मधुर मंद हासी,
दशन दमक दाडिम द्युति दमके चपलासी।
क्षुद्र घंटिका अनूप नूपुर-ध्वनि सोहे,
गिरधर के चरण कमल मीरां मन मोहे।

गुजराती कवि भालण ने अपने ग्रन्थ दशमस्कन्ध में कृष्ण के बाल स्वरूप का चित्रण उस प्रसंग को लेकर किया है जिसमें यशोदा अपने कुंवर को दुलार करती हुई कृष्ण से कहती है मनमोहन तुम आंगन में आकर खेलो तो मेरे मन में सन्तोष हो सके। तुम्हारा सुन्दर मुख मुझे अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय है। तनिक एक क्षण बैठो तो मैं तुम्हारी चोटी गूंथ दूं। उसमें केवड़ा डाल के गुंथूं जिससे वह शीघ्र बढ़ सके। तुम्हारे नेत्रों में अंजन लगाऊँ और भाल पर तिलक-केसर का तिलक करूँ।

आँगन रमो, मन मोहन तो मन माने माहारु रे,
प्राणथी मुझने अधिकुं वाहालुं, सुन्दर मुखडुं ताहारु रे।
क्षण एक बेसो, तो मनमोहन गुंथुं ताहरी चोटी रे॥
केवड़ेल घाली ने गुंथुं, ज्यम ते थाए मोहटी रे।
नयणे काजल सारी, निलवट तिलक करुं केसरनुं रे॥

दशम स्कन्ध—पद--१६

मीरां ने अपने प्रिय कृष्ण के सुन्दर स्वरूप का स्मरण करते हुए नन्दलाल को अपने मन में बसने की प्रार्थना की है। प्रेम दीवानी मीरां उस भक्त वत्सल भगवान की मूरत सदा अपने नयनों में देखती रहना चाहती है। सुन्दरता का वर्णन करते हुए मीरां लिखती है कि मस्तक पर मोर मुकुट है, कानों में मकराकृत कुण्डल हैं। तुम्हारी मूर्ति मनमोहक है, सांवरी सूरत है तथा विशाल नेत्र हैं अधरों पर मुरली सुशोभित है, उर पर वैजयन्ति की माला है कटि तट पर क्षुद्र घन्टिका है तथा चरणों

में नूपुर मधुर शब्द करते हैं। ऐसे सन्तों को सुख देने वाले नन्द-नन्दन मेरे नयनों में बसो।

गुजराती कवि प्रेमानन्द का भक्त हृदय भी कृष्ण की घनश्याम छवि पर मोहित होकर आनन्द मग्न अवस्था में गाने लगता है। नन्द कुमार मेरे नयनों का तारा है। एक क्षण भी तुम्हे दूर-नहीं रखना चाहता। तुम्हारी सुन्दर मूरत को प्रेम से देखते रहना चाहता हूँ। सुख के सागर कृष्ण मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय है। गोकुल में विहार करने वाला, गोपियों का सर्वस्व, मुरली धारण करने वाला, सर्जन कृष्ण सदा मेरे पास रहे। प्रेमानन्द उसकी सुन्दरता पर अपना तन, मन, धन सर्वस्व अर्पण करता है।

नन्दकुमार मारां नयनों, ना तारा,
एक पलक हृदे करूँ नहीं न्यारा।
नेह धरी नीरखूं नट नागर।
सुख सागर मने प्राण थी प्यारा।
गोकुल विहारी नाथ गोपीना जीवन,
गोकुल हित गोवर्धन वारा।
मुरलीधर मोहन मनहारक,
समीप राखुँ सदा सरजनहारा।
प्रेमानन्द घनश्याम छवी पर,
तन मन धन कुरबान छो मारां।

भगवान राम के अनन्य उपासक राजस्थानी कवि अग्रदास जी ने राम के सौन्दर्य का वर्णन भक्ति-भावपूर्ण शब्दों में किया है। राम के अलौकिक रूप पर कवि का हृदय मोहित है। वे लिखते हैं:—अवध में सरयू के तट पर विहार करने वाले दशरथ के प्राण प्यारे रघुवर मुझे बहुत प्रिय लगते हैं। सिर पर मुकुट, कानों में मकराकृति के कुन्डल और पीत वस्त्र धारण करने वाले विशाल नयनों वाले, मोती की माला धारण करने वाले राम को सखी तनिक तुम देखो। उनका अनुपम सौन्दर्य चित्त से तनिक भी टलता नही। उनकी माधुर्यपूर्ण मूर्ति कोटि सूर्य के समान प्रकाशित है। जानकी के प्रति सब सुखों को देने वाले, गुण और रूप के भंडार हैं। अग्रदास कवि उस शोभा को देखता ही रहता है क्योंकि वह उसके जीवन का आधार है।

रघुवर लागत है मोहि प्यारो।
अवधपुरी सरयू तट विहरे, दशरथ प्राण पियारो॥

क्रीट मुकुट मकराकृत कुंडल, पीताम्बर पटवारो।
नयन विशाल माल मोतियन की,सखि तुम नेक निहारो।।
रूप स्वरूप अनूप वनो है, चित्त से टरत न टारो।
माधुरी मूरति निरखो सजनी कोटि भानु उजियारो।।
जानकी नायक सव सुखदायक. गुणगण रूप अपारो।
अग्र अली प्रभु की छवि निरखें जीवन प्राण हमारो।।

गुजराती कवि भालण ने अपने राम चरित्र काव्य में राम के बाल स्वरूप का जो वर्णन किया है उसकी उपरोक्त अग्रदास के सौन्दर्य वर्णन से समानता द्रष्टव्य है। भालण ने सरल शब्दों में तथा सुवोध शैली मे कहा है, अवनि के कारण एवं अविनाशी श्रीराम के सौन्दर्य से मन्दिर में प्रकाश हो गया है। उनके रूप को कौन समझ सकता है? मस्तक पर किरीट मुकुट ऐसा शोभित होता है मानो सूर्य का तेज चमकता हो। कस्तूरी का तिलक ललाट पर शोभा देता है मानो सुद अष्टमी का चन्द्र हो। भृकुटि धनुषाकार तिरछी सुन्दर लगती है। कमल से विशाल नयन शोभित होते हैं। कानों में मकराकृति के कुंडल हैं ऐसे भगवान के अंग बहुत सुन्दर लगते हैं।

थयां मंदिर तेज प्रकाश, ए रूप कोण कले,
अवनिकारण श्री अविनाश महारूप कोण कले।
किरीट मुकुट शिर सार, ए रूप कोण कले,
जाणे दिनकर झलकार, महारूप कोण कले।
शोभे मृगमद तिलक ललाट, ए रूप कोण कले,
सुद अष्टमी सोम नो घाट, महारूप कोण कले।
भली भृकुटि ते धनुषआकार ए रूप कोण कले,
शोभे अंबुज नैण विशाल, महारूप कोण कले।
मकराकृत कुण्डल कान, ए रूप कोण कले,
अंग सुन्दर श्री भगवान, महारूप कोण कले।।

श्री राम चरित पद—१

मीरां के नयनों में कृष्ण की बांकी मूरत अटक गई है। भगवान के रूप को वार वार देखते रहने पर भी प्यास नहीं वुझती। उनकी कारी भंवरेसी तथा मतवाली अलकें तथा नेत्रों की सुन्दरता देखते ही बनती हैं। तिरछी कटि कर खड़े कृष्ण तिरछी अदा से मुरली वजाते हैं। सिर पर तिरछी पाग पहनी है। मीरां अपने गिरधरनागर नट के ऐसे रूप पर मुग्ध हो गई है।

निपट बकट छब अटके ।
म्हारे जेणा निपट बकट छब अटके ॥
देख्यां रूप मदन मोहन री, पिवत पियूख न भटके ।
वारिज भवाँ अलक मतवारी, नैण रूप रस अटके ॥
टेढ्याँ कट टेढ़े कटि मुरली, टेढ्यां पागलर लटके ।
मीरां प्रभु के रूप लुभाणी, गिरधर नागर नटके ॥

मीरांबाई की पदावली पद–१०

कृष्ण गोपी लीला वर्णन—

राजस्थान तथा गुजरात के वैष्णव भक्त कवियों ने अपनी रचनाओं में इष्ट की विभिन्न लीलाओं का वर्णन भी बहुत सुन्दर किया है। कृष्ण तथा राम के जीवन की यौवन की भिन्न भिन्न लीलाओं को भक्तों ने बड़ी श्रद्धा एवं प्रेम से गाया है।

कृष्ण और गोपी की प्रेम क्रीड़ा के प्रसंग मे नरसी ने संयोग शृंगार का वर्णन बड़े रोचक ढंग से किया है। गोपी कृष्ण के साथ की अपनी प्रेम लीला वर्णन बड़े उल्लास से करती है। रात्रि के चार प्रहर तक प्रेम रग में खेलते रहे फिर भी कृष्ण अब भी प्रेम के प्यासे ही रहे। गोपी प्रिय कृष्ण के चरणों में सर्वस्व अर्पण कर रंग राग में रंगी रहती है। प्रेम क्रीड़ा में वह जीत जाती है इसका उसे गर्व है।

हजी न धरायो रंग ते रचतां चार पहोर नीशा निकर निमगतां
अधर सुधा रस पीजी पीजी पीधि रे केसरी कामने में पुंठड़ी न दीधी रे।
पीन पयोधर पाखर कीधी रे सुरत संग्राम हुँ वढ़ती न बीधी रे,
नख शीख लगे ताकी तकी झूकी रे केसरी कामशुं वढ़ती न चुकी रे।
उगो दिवाकर रजनी बीती रे नरसिंहा ना स्वामी संगम जीती रे॥

शृङ्गार के पद–३

राजस्थानी कवि कृष्णदास ने भी कृष्ण-गोपी की प्रेमलीला का चित्रण निम्न लिखित पद में किया है। गोवर्धन धारी कृष्ण आते हुए दिखाई देते हैं। आलस्य भरे नेत्रों मे प्रिया का नूतन प्रेम भरा हुआ है। उर पर माला तथा सुरति समर के समय की सुगन्धित पराग लगी है। पहने हुए वस्त्र में कामदेव के सरोवर का रस लहराता है। कृष्णदास कवि वृन्दावन के मार्ग में ऐसे कृष्ण को आते देखकर अपने नेत्रों को धन्य करते हैं।

आवत लाल गोवर्धन धारी।
आलस नैन सरस रस रंगिन प्रिया प्रेम नूतन अनुहारी।
विलुलित माल मरगजी उरपर सुरति समर की लगी पराग।
चूंवत श्याम अधर रस गावत सुरति चाव सुख भैरव राग,
पलटि परे पट नील सखी के रस में झीलत मदन तड़ाग।
वृन्दावन बीथिन अवलोकत कृष्णदास लोचन वड़ भाग।।

गुजराती कवि प्रेमानन्द ने अपने "दाणलीला" के प्रसंग में कृष्ण और गोपियों की प्रेम लीला का वर्णन अत्यन्त मोहक शब्दों में किया है। गोपियां गोकुल में गोरस वेचने जाती हैं तव कृष्ण उनसे "दाण" लेने के मिस प्रेम प्रकट करते हैं। गोपियाँ भी लोकलाज छोड़कर भगवान के प्रेम में निमग्न होजाती हैं प्रेमानन्द ने लिखा है, गोपियां गोरस की मटकी दूर रख देती हैं और कृष्ण के साथ कुंज भवन में चली जाती है-राधा अव भी संकोच करता है। श्री हरि उसे लज्जा छोड़ने का आग्रह करते हैं,और राधा भी कृष्ण के प्रेम में सर्वस्व न्योंछावर कर देती है। इस प्रकार रंग विलास में रात्री व्यतीत हो जाती है।

दाण विवाद त्यां माँगी गयो रे लोल।
रस ओध हृदया हर्षज थयो रे लोल।
श्यामलियोजी त्यां सज थयो रे लोल,
गोपी साथे ते कुंज भवन गया रे लोल।
गोरस गोली मेली ते सहुए वेगली रे लोल,
सहू वहालाजी ने वींटी वली रे लोल।
त्यारे राधाजी ने कहे श्री हरि रे लोल।
लज्जा मन थी मूको परहरी रे लोल॥
एवुं सुणंतामां राधा हसी रे लोल,
भाग्यो घुंघट चीर गयुं खशी रे लोल।
दीधुं आलिंगन हेत व्यापियुं रे लोल,
कुंज माँहे रहो रति सुख आवियुं रे लोल।
जेटली हूती व्रज सुन्दरी रे लोल,
तेटलां रूप धरियाँ श्री हरि रे लोल।
दाण मिसे ते लीलो चीजी थई रे लोल,
रंग विलासमां रजनी वही गई रे लोल।

दाणलीना पद—१४

प्रेमानन्द के उपरोक्त पद में कृष्ण-गोपियों की प्रेमलीला एवं रतिक्रीड़ा का शृंगारिक वर्णन किया गया है किन्तु साथ ही कवि ने कृष्ण के ईश्वरत्व का संकेत "तेटला रूप धरिया श्री हरि" की पंक्ति में स्पष्ट कर दिया है।

मेवाड़ की प्रेम दिवानी मीरां ने प्रेमलीला का इसी प्रकार वर्णन किया है। परन्तु मीरां के शृंगार में आध्यात्मिकता का पुट विशेष है। मीरां इस प्रसंग में लिखती है कि मैं गिरधर के प्रेम रग में रंग गई हूँ। पंचरंगी चोला पहनकर झुरमुट में उनके साथ खेलने जाती हूँ। कुंज भवन में प्रिय से मिलते ही तन और मन पर उनके प्रेम का रंग छा जाता है। जिनके प्रिय परदेश गये हैं, बसते हैं वे पत्र लिख लिखकर भेजती है किन्तु मेरे प्रिय तो मेरे तो मन में बसते है। वे न कहीं आते हैं न जाते हैं। यहाँ मीरा ने भी अपने प्रिय के ईश्वरत्व की ओर संकेत कर दिया है।

> **म्हां गिरधर रंग राती, सैयाँ म्हां।**
> **पंचरंग चोला पहरया सखी म्हां, फिर मिट खेलण जाती।**
> **वां झरमिट माँ मिल्यो सांवरों, देख्या तण मण राती।**
> **जिणरो पियां परदेस वस्याँरी लिख लिख भेज्यां पाती॥**
> **म्हारा पियाँ म्हारे हियड़े बसताँ णा आवां णा जाती।**
> **मीरां रे पियु गिरधर नागर मग जोवां दिण राती॥**
>
> **मीरांबाई की पदावली पद—२३**

महिमा वर्णन—

भक्त कवियों ने अपने इष्ट की महत्ता का प्रतिपादन उनकी शक्ति एवं सामर्थ्य का वर्णन करके किया है। भक्त को अपने भगवान की समर्थता एवं उनकी करुणा पर सम्पूर्ण विश्वास होता है। भगवान पतितोद्धारक हैं, परम कृपालु हैं। वे अपने भक्त का उद्धार निसन्देह करते है इस बात का स्मरण उन्होंने बार-बार दिलाया है। नरसिंह मेहता ने द्रोपदी की प्रार्थना में कृष्ण के उद्धारक स्वरुप का चित्रण किया है। द्रोपदी अपनी रक्षा के लिये कृष्ण का स्मरण करते हुए कहती है- द्वारिका के वासी कृष्ण दुर्योधन के अत्याचारों से मेरी रक्षा करने के लिये इस अवसर पर आओ। मैं चतुर्दिक तुम्हारा पंथ देखती हूँ। आगे की पंक्ति में द्रोपदी के शब्दों में नरसी ने कृष्ण को उपालंभ भी दिया है। वह कहती है, तुम इस समय निश्चित सोये क्यों हो ? आलस्य छोड़कर आज उठो, आज हम पर कृपा करो। तुमने ग्राह से गज की रक्षा की, सुधन्वा की सहायता की, हिरण्यकशिपु का नाश करके प्रहल्लाद

को बचाया, छप्पन करोड़ यादवों का उद्धार किया, साथ में तुम्हारे बलभद्र से भाई हैं, कालीनाथ को बस में किया, जरासंघ को जीत लिया, वह बल तुम्हारा आज कहाँ चला गया ? मेरे इस दुःख के समय में तुम ही आकर रक्षा करो। गरुड़ पर बैठकर तुम आओ।

द्वारिकाना वासीरे अवसरे अवजो रे, राणी रुक्मणी केरा कंथ,
दुष्ट दुर्योधन रे, लाग्यो मने पीड़वा रे, प्रभु मारा चोदश न्यालु तारो पंथ
सोडताणी ने रे शु'रे सुतो शामला रे, आलस मोडी ने उठो आज,
लक्ष्मीजी तलांसे रे पावन तारा पावलां रे, अमपर मेहेर करो महाराज।
ग्राह थको रे गज मूकावियो रे, कीधी तमे सुअन्वा सहाय,
नरसिंह रुपे रे हिरण्यकशिपु हण्यो रे, प्रह्लाद उगार्यो लाग्यो पाय
छप्पन करोड़ रे जादव ताहरा रे साथ बलिभद्र सरीखा भ्रात,
काली नाग नाथ्यो रे, जरासंध जीतियोरे, ते बल क्यां गयु' मारा नाथ।
वसमी वेला मारे वहारे चढ़ो विठ्ठलारे धाजो तमे छत्रपती गिरधार,
अपवाणी करजो रे, गरुड़नी, ऊपरे नरसैंयो विनवे वारम्वार॥

भक्तिना पद—पद २४

भालण ने राम की महिमा का गुणगान उनके बाल्यकाल के जीवन प्रसंग के वर्णन में किया है। माता कौशल्या प्रर्थना करती हुई सोच रही है कि "इसे मैं बालक कैसे मानूं, जो स्वयं पूर्ण अखंड ब्रह्म है जो इस भूमि का भूप है। तेरी माया से ब्रह्मा भी भूला दिये जाते हैं। वेद शास्त्र भी नेति-नेति कह कर तुम्हारे गुण गाते है शिव, सनक आदि तुम्हारा ध्यान धरते हैं जिसकी माया में हम सब कुछ भूल जाते है। मुझे थोड़ा आश्चर्य होता है, बलराम का मुख देख कर मन हर्षित होता है। विश्व के निर्माण कर्ता को तथा जगत के पालक को मैं दूध क्या पिलाऊँ, भगवान तो करुणा के सागर हैं और जो मुझ पर प्रसन्न हुए हैं। माता कौशल्या जब माया को छोड़कर ब्रह्म के साथ एकाकार हुई तभी ध्यान में लीन होगई। शिशु राम के रोने से जाग उठी और उसके मन की भ्रांति दूर हुई।

करे स्तुति कौशल्या माता, आग तपे जुठ्या विख्यात,
जयपुरण ब्रह्म अखड, सचराचर सकल ब्रह्मान्ड।
जय भोमी तथा भूपाल, केम मानु' हुं नानु' बाल ?
तारी माया भूले ब्रह्माण, गुण नेति नेति करी गाय।
शिव सनकादिक ध्यानमां ध्याय, जेनी मायामां सहु भूलाय।
मुने न अचरज अदकु' थाय, मुखडु' जोई मन हरखाय।

विश्व कर्ता ने शुं धवरावुं ? जगत धर्ता ने शुं हुं लावुं?
कृपा करुणासागर देव, मुज ऊपर तुठ्या देव।
माता ब्रह्माकार थई ज्यारे, मेली वैष्णवी माया त्यारे,
उवां उवां सुणतां जागी घणी भालण भ्रांति भागी।

श्रीराम चरित्र पद—३

मीरां ने अपने प्रिय गिरधारी को कृपा निधान एवं शरणागत के रक्षक के रूप में देखा है। भक्तवत्सल भगवान के शरण की कामना करती हुई मीरां कहती है कि हे गिरधारी तेरी शरण मे आयी हूँ, हे कृपा निधान तुम स्वीकार करो। भगवान के उद्धारक-रूप का चित्रण करती हुई मीरां कहती है कि तुमने अजामिल जैसे अपराधी का उद्धार किया, डूबते हुए गजराज को बचाया, गणिका को स्वर्ग में स्थान दिया और भी कई पापी जनों का उद्धार तुमने किया है, ज्ञानियों ने तुम्हारे गुण गाये है, भीलनी तथा कुब्जा का उद्धार किया, इस बात को सारा संसार जानता है। तुम्हारे गुणगान करना मै नही जानती, वेदपुराण भी तुम्हारे संपूर्ण गुण नहीं गा सके है। अब मैं तुम्हारी शरण मे आयी हूँ। मेरी प्रार्थना भी सुनो।

गिरधारी शरणां थारी आया, राख्या कृपा निधान।
अजामिल अपराधी तारयां, तारयां नीच सदाण।
डूबतां गजराज राख्यां गणिका चढ़्या विमाण।
अवर अधम बहुता थें तारयाँ, भाख्या सणत सुजाण।
भीलन कुब्जा तारयाँ गिरधर जाण्यों सकल जहाण।
बिरद बखाणां गणतां णा जाणा, थाकां वेद पुराण।
मीरां प्रभु री शरण रावली, विणता दीस्यो काण।

मीरॉबाई की पदावली पद–१३४

राजस्थान के निम्बार्क सम्प्रदाय के भक्त कवि तत्ववेत्ता ने अपने कवित्त में राम तथा कृष्ण की महिमा का वर्णन किया है। राम तथा कृष्ण को एक ही परमात्मा के अवतार के रूप में उन्होने देखा है। राम और कृष्ण को चन्द्र की उपमा देकर कवि ने उनके सामर्थ्य तथा प्रभाव को बतलाया है। भगवान को उन्होने आदि चन्द्र, अमृत चन्द्र तथा अधर, अविचल चन्द्र कहा है। गोकुल के चन्द्र पाप पर प्रचंड प्रहार करने वाले है, राम राजा के भी राजा है, कृष्ण समस्त देवताओं के सिरमोर है, तीनो लोक में वृन्दावन के कृष्ण चन्द्र के प्रकाश का विस्तार हो रहा है। इन सबका स्मरण करने से ही परमात्मा के दर्शन होते हैं।

आदि चन्द्र हरिचन्द्र अनंत चंदा अविकारा।
अम्रित चंद उदार अग्रर अविचल इकतारा॥
महाचंद्र मुखचंद्र, महा महिमा विस्तारा।
गोकलचंद गोपाल, पाप परचंद प्रहारा॥
रामचन्द्र रघुनाथ, रवण राजण के राजा।
कृष्णचन्द्र कल्याण सर्व सुर नर सिरताजा॥
ततवेत्ता तिहूँलोक में, वृन्दावनचन्द विस्तरि रह्या।
सर्व चन्द कुं सुमिरतां, परम चन्द परचे भया॥

कवित्त.

प्रेम तथा विरह वर्णन—

भक्त कवियों की प्रेम एवं विरह की अभिव्यक्तियों में जितनी मार्मिकता एवं हृदय स्पर्शिता मिलती है उतनी अन्य रचनाओं में क्वचित ही मिल सकेगी। भक्त का हृदय अपने इष्ट के प्रेम को प्राप्त करके मानों समस्त सुखों को प्राप्त कर लेता है। और प्रिय के वियोग में जितनी वेदना का अनुभव उसे होता है उतनी सर्वस्व खोने पर भी नहीं होती। प्रेम का अंकुर हृदय में प्रस्फुटित हो जाने के पश्चात् भक्त को और कुछ भी सुहाता नहीं। केवल अपने प्रिय इष्ट के दर्शन और मिलन की कामना ही उसे रहती है। नरसिंह मेहता ने गोपी के रूप में अपने प्रेम को इस प्रकार प्रकट किया है:—

प्रिय को देखते ही मेरी भूख नष्ट हो जाती है। अब मैं घर में रह कर क्या करूँ, मेरी आँख प्रिय से लग गई है। प्रिय के श्याम रूप ने मेरा मन हर लिया है। प्रिय कृष्ण ने अवश्य कोई जादू किया है। मैंने संसार के सुख का त्याग कर दिया है। मेरे शरीर रूपी पींजर में कृष्ण की मधुर मूर्ति बस गई है। मुझे उसने सोने की जंजीर से बांध कर अपनी ओर खींचली है। मेरे मन की बात को वह मोहन जान गया है; प्रिय अब तुम मे और मुझ में कोई अन्तर नहीं रहा। लोगों ने मेरे हृदय की कथा कही है।

वाहालाने जोतांये म्हारी, भूखडली भांगी,
घरमां रहीने शुं करूं म्हारी, आंखडली लागी।
शामली सुरते मन मोहीने लीधुं,
कांईक सामलिये व्हाले, कामण कीधुं।
संसारी नुं सुख हैं तो, तजी ने बैठी,
मधुरी मूरती मारे, पांजरीए पैठी।

सोनानी संकलीए मुने, बांधी रे ताणी,
मनडानी वातो रे पेले, मोहनिये जाणी।
तुझ मुझ वच्चे वहाला, अन्तर नथी,
नरसैंया ना स्वामीनो लोके, कथनी कथी ॥

शृङ्गारना पद—पद-२८

प्रिय कृष्ण ने नयनों के इशारे से भक्त का मन अपने वस में कर लिया है। अब उसे अन्य किसी के बोल भी अच्छे नहीं लगते। कृष्ण ने पता नहीं क्या जादू कर दिया है। मुरली के नाद से जिस प्रकार शिकारी मृग को बींधता है उसी तरह कृष्ण के गीत से भक्त का हृदय भी बींध गया है। नरसिंह का मन हरि रस के पान से स्निग्ध हो गया है। इस प्रकार अपने प्रेम की अभिव्यक्ति नरसिंह ने दूसरे पक्ष में का है।

मन मान्युं शामलिया साथे, वशकरि नैणनी साने रे,
बोल्युं न गमे बीजाकोनुं, कामण कीधाँ कहाने रे।
मोरली बजाड़े जेम वेधाये, मृग नाद सामलि काने रे,
तेम वेधाई रह्युं मन मारूं, गोविन्द जी ने गाने रे।
जे जे राग जेने होय वल्लभ, ते रीझे तेने ताने रे,
नरसैंयो रीझे मन भीने, हरिरस अमृत पाने रे॥

शृङ्गारना पद—पद ३८

इसी प्रकार की तीव्र प्रेमानुभूति मीरां के पद में भी व्यक्त हुई है कृष्ण की मधुर मूर्ति जब हृदय में बस जाती है तब भक्त के नयनों को प्रिय के दर्शन की जान पड़ जाती है वही उसका स्वभाव बन जाता है। इसके अतिरिक्त उन्हें और कुछ नहीं सुहाता। मीरां पता नहीं कब से खड़ी अपने प्रियतम कृष्ण की प्रतीक्षा करती रहती है। जीवन को बचाने वाली मूल ओषधि कृष्ण ही है। मीरां तो कृष्ण के हाथों बिक गई है। लोग भले ही कहे कि मीरां बिगड़ गई।

आली री म्हारे नैणां बाण पड़ी।
चित्त चढ़ी म्हारे माधुरी मूरत, हियड़ा अणी गड़ी।
कब री ठाड़ी पंथ निहारां, अपने भवण खड़ी।
अटक्यां प्राण सांवरो प्यारो जीवण मूर जड़ी।
मीरां गिरधर हाथ विकाणी, लोग कह्यां बिगड़ी॥

मीरांबाई की पदावली—पद-१४

मीरां की विरहानुभूति भी उतनी ही मार्मिक तथा हृदय स्पर्शी है जितनी उसकी प्रेम की में अभिव्यक्ति। प्रियतम के वियोग में उससे रहा नहीं जाता। तन,मन और जीवन, सर्वस्व कृष्ण पर वार चुकी है उसके रूपने मीरां को लुभा लिया है। अब तो खान-पान में भी रुचि नहीं रही। निश-दिन प्रतीक्षा करते करते नयन भी मुरझाने लगे हैं। पता नहीं कब प्रिय के दर्शन मिलेंगे। अरज करते-करते रात तो चली गई, दिन भी जायगा। प्रिय की याद में मीरां के प्यासे प्राण इसी प्रकार चले जायेंगे।

स्याम विणा सखि रह्या ण जावां।
तण मण जीवण प्रीतम वार्या, थारे रूप लुभावां।
खाण पाण म्हाणे फीकां सो लागां नैणा रहां मुरझावां।
निस दिन जावां वार मुरारी, कबरो दरसण पावां॥
वार वार थारी अरजां करसूं रैण गवां दिन जावां।
मीरां रे हरि थे मिलियां विण तरस तरस जीया जावां॥
—मीरांबाई की पदावली—६६

प्रेमानन्द के नलाख्यान में दमयन्ति के विरह का वर्णन भी द्रष्टव्य है। नैषध प्रियतम नल को बिहड़ वन प्रदेश में खोजती हुई दमयन्ति का करुण विलाप हृदय द्रावक है। अंधेरी रात्री का समय है। अन्तर में भय भी है, फिर भी रसना से प्रियतम का नाम रटती हुई वह चारों ओर भटक रही है। रोते-रोते आंखें लाल हो गयी हैं। चलते-चलते मार्ग में ठोकर लगती है केश कांटों में उलझ जाते हैं, अंग पर कांटों के घाव लगते जाते हैं, शोणित की धारा बहने लगती है। परन्तु उस विरहणी को इनकी चिन्ता कहां, वह तो अपने प्रियतम का नाम रटती हुई उसे ढूंढती रहती है।

बीहामणी वनमां वलवले, अंधारी रात,
भामिनी भय पामे घणुं, एकलडी व जात।
रसनाये नामज नलतणुं, मुख जपती जाय,
शुद्ध नथी शरीरनी, भाजे कांटा पाय।
रोई रोई राती आंखडी, लूट्युं आंखनुं नीर,
नयणे धारा बे झरे, वहे छे रुधीर।
हींडती ते आखडे, वागे पाग मां ठेस,
चालती उभी रहे, भराये कांटामां केश।
अंगे उझरडा घणां, वहे शोणित धार,
ओ नल ओ नल बोलती, बीजो नहीं विचार॥
नलाख्यान-कडवुं-३७

१७ वीं शती के गुजराती कवि नारायण ने राधाकृष्ण के विहार वर्णन में राधा की विरहावस्था का चित्रण किया है जिसमें करुण रस का सुन्दर प्रतिपादन हुआ है। कवि ने लिखा है—वृन्दावन की चन्द्रवदना राधा विरह वेदना में व्याकुल हो रही है। कृष्ण के चले जाने से पापी मन्मथ उसे पीड़ा दे रहा है। उसके तन को विरह की ज्वाला जला रही है। शीतल करने की इच्छा से जब वह स्नान करती है तो सरिता का जल भी सूख जाता है। चंदन का लेप करती है तो वह भी तन की ज्वाला से सूख जाता है और किसी प्रकार के उपचार सफल नहीं होते।

वृन्दावनि व्याकुल विधुवदनी, विरह वेदना व्यापी,
तुम विण तिहाँ अनेक मडी देखी, पींडे मन्मथ पापी।
वाहालाजी विरह वेदना व्यापी।
प्रबल प्रलाप प्रले-पावक सम, प्रकट थई ज्वर पोषे,
शीतल थावा स्नान करे तो, सरिता जल सोषे।
चन्दन घशी कपोले घाली, सखी समीपे लावे,
अंग अंग लागतां सूके ते, उपचार न फावे॥

१.

आत्म निवेदन तथा आत्मानुभव—

भगवान के प्रति भक्तों ने विश्वास एवं श्रद्धा के साथ प्रार्थना तथा आत्म-निवेदन किये हैं। विनय की वाणी में भक्त के हृदय की कायरता तथा उसकी नम्रता के भाव प्रकट होते हैं। किन्तु उसे अपने इष्ट पर संपूर्ण विश्वास भी होता है। भक्तों के हृदय में जहां अटल प्रेम होता है वहाँ प्रिय पर भक्त का अधिकार भी होता है। परन्तु साथ ही साथ भक्त यह नहीं भूलता कि मनुष्य का जीवन पाप-पंक में फसा हुआ है। अनेक दोषों मे युक्त यह मानव जीव भगवान की कृपा का ही अभिलाषी है। वही उसका एकमात्र उधारक है। इस प्रकार विनय तथा आत्म-निवेदन के पदों में इन भक्त कवियों ने अपनी अल्पज्ञता एवं क्षुद्रता की स्पष्ट स्वीकृति प्रकट की है तथा भगवान की कृपा एवं उसके प्रेम की याचना भी विनय-पूर्वक की है।

नरसिंह मेहता ने बहुत सरल किन्तु भावपूर्ण शब्दों में भगवान से प्रार्थना करते हुए लिखा है कि मुझे तो केवल नाम का ही सहारा है, तुम्हारे बिना मेरी सहायता कौन कर सकेगा[1]। अब अवसर आ गया है जब तुम मुझे बचा सको।

---

१. प्रस्तुत पद श्री के० का० शास्त्री के कविचरित भाग २ में से उद्धृत किया है।

अपने भक्त की लाज आज तुम रख लो। तुम्हारे तो सेवक—अनेक सेवक होंगे किन्तु मेरे लिये तो तुम्ही एक आशा हो। यहाँ नरसी ने कृष्ण को दामोदर, लक्ष्मीवर, शामला आदि विभिन्न नामों से स्मरण किया है—

माहरे तो ताहरा नामनो आशरो,
तुं विना सहाय कोण करशे मारी ?
दीन वन्धु हे दयाल दामोदरा,
आण्यो अवसर हवे ले उगारी।
आज तुं भक्त नी लाज लक्ष्मीवर,
राख करुणाकर विरद धारी।
तारे तो सेवक कोटी छे शामला,
मारे तो एकज आश तारी ॥
पद—८३.

अपनी दीनता का वर्णन करते हुए भक्त भगवान से भक्ति की याचना करता है। भक्ति करते हुए यदि यह देह दुर्बल हो जाय तब भी भक्त को कोई चिन्ता नहीं। भगवान का स्नेह सर्वदा अन्तर में बहता रहे यही उसकी कामना रहती है। नरसिंह ने इस प्रकार आत्म निवेदन अपने इष्ट के सम्मुख किया है उन्हें यही चिन्ता रहती है कि भगवान का नाम यदि मन भूल गया तो पता नहीं उसका क्या हाल होगा बुरे कर्म करके शरीर की खान भरदी हैं और अब वह भागना चाहता है। कृष्ण की भक्ति के बिना जीव जीवन के खेल में सदा हार जाता है। वह बारंबार जन्म लेता है। भवसागर में डूबते हुए इस जीव को भगवान ही बांह पकड़ कर बचा सकता है। संसार में अनेक कल्पनाएं वह करता रहता है किन्तु आज-कल करते हुए इस जीवन में उसकी आशाएं अपूर्ण ही रह जाती है। नरसिंह का निवेदन यही है कि वे भगवान का दर्शन प्राप्त करें और एक बार भगवान की कृपा प्राप्त करें।

मारा नाथजी मुजने भक्ति देजो सदा, दीन जाणी ने संभाल लेजो,
भक्ति आपी सदा भाव थी भूधरा, अंते आवी अहोनीश रहे जो।
भक्ति कारण मारो, देह दुर्बल हजो, देह कारण रखे स्नेह जाये,
आज मन साथ जदुनाथ जो वीसरे, वलती वले भारी कुण थाये।
कर्म कुंडा करी खाण चारे भरी, नासवा नीसरयो नाम वारी,
कृष्ण कीर्तन विना, जाय जाय वृथा, जेम रहे जूगटे सिद्धि हारी।
हुं गर्भ नाना फरयो, नित्य उजागरो, नव हार्यो नाथजी शरण पाखे,

भव विषे बूडतां वारने बूम नहिं, बाह्य गही मुजने कोण राखे।
अल्प आयुष्यमां कल्पना मनुष्यने आज कीधुं बली काल भरवुं,
श्वास नो विश्वास नहिं निमिषनो, आश अधुरी अने एम भरवुं,
उत्तम मध्यम वरण तुं विठ्ठला, प्रकट भई ने दरशन पमाडो,
नरसैंया रंक ने टङ्क करुणा करो, दीन बन्धु बल्यो आंक आगे।

भक्ति के पद—१६

प्रेमानन्द ने भगवान से निवेदन करते हुए उनकी शरण में दास के रूप में रहने की कामना की है। संसार में अन्य भक्तों को भगवान ने सदा अपनी भक्त-वत्सलता प्रदर्शित कर, शरणागति दी है। प्रेमानन्द के इस पद में विनय तथा अपनी दीनता का भाव प्रकट हुआ है, संतों का सत्संग और भक्ति ही उन्हे इष्ट है। भगवान से यही प्रार्थना है कि वे हृदय में आकर बसे।

जेवा छीए सेवा नाथ, निभावजो,
छोड़ी न देशो निज किंकर ने राखो करीने दास।
दीनबन्धु शरणागत वत्सल, निगम पूरे छे साख।
शबरी, गजेन्द्रो, विदुर, सुदामा, तेने कीधां प्रख्यात।
अपने दान दयानिधि आपो, भक्ति ने संतोना साथ।
अंतर वासना टालो प्रेमानंद, आवीवसो हैये खास।

श्री भजनसागर—भाग—२
प्रेमानन्द के पद—२

सोलहवीं शताब्दी के गुजराती कवि ब्रह्मदेव ने अपनी भ्रमर गीता के प्रथम पद में भगवान से निवेदन किया है कि वे हरिगुण गाने की शक्ति और वाणी दें। भक्तों ने विनय के पदों में सामान्य रूप से भगवान की भक्ति तथा उनके गुणगान की शक्ति की याचना की है। सद्गुरु की कृपा के विना तथा भगवान की पूर्ण अनुकम्पा के विना काव्य रचना का कार्य असंभव सा है, इसका भक्तों का पूरा विश्वास होता है। ब्रह्मदेव ने लिखा है कि सुन्दर श्याम मेरे मुख में आकर बसो, मेरी रसना पर रहो, मुझे कोमल वाणी प्रदान करो। यदि सद्गुरु की कृपा प्राप्त हुई तो हृदय में हरिगुण धारण कर सकूँगा तथा अपनी रचना पूर्ण करने में सफल हो सकूँगा।

प्रभु तुम याचुं करिने प्रणाम जी, महारे मुखे आवो सुन्दरश्याम जी,
आशा घणी छे मुझने तमारी जी, रसना ए रमोजी मुकुंद मुरारी जी।

हेम सुता सुत चरणे लागूंजो, कमल भुलन या वाणी मांगु जी,
भ्रमर गीता ने भावे याचुंगी, प्रेहेदे कहे आपो मुने सांचु जी।
सद्गुरुकेरां चरण उपासीए हेलां हरिगुण तो आवे हेये,
काँई एक गोपीनां वचन प्रकाशीए, वलताँ कांई एक उद्भवना करीए ॥

भ्रमरगीता—कडवुं—१

राजस्थानी कवियित्री मीरां ने अपने प्रियतम कृष्ण से जो निवेदन किये हैं उनमें मीरां के भक्त हृदय की प्रेम विह्वलता तथा भावुकता का सुन्दर परिचय प्राप्त होता है। मिलन की अनुभूति में भक्त की यही कामना होती है कि वह सदा भगवान के समीप चरणों में रहा करे। उनसे कभी अलग न हो ऐसी मात्र आकांक्षा उसके अन्तर में होती है। मीरां भी अपने श्याम से यही विनय करती है कि मुझे छोड़कर तुम कभी मत जाओ। विनय की वाणी में भक्त की दीनता का प्रदर्शन एक स्वाभाविक अंग होता है। मीरां ने अपने आप को अबला तथा प्रिय को सिरताज़ कहा है। मीरा स्वयं गुणहीन है और भगवान गुणवान् तथा उसके अन्तर के राजा है। भगवान ने अनेक भक्तों का निवारण किया है। अब इस हारे हुए जीवन में इष्ट की शरण छोड़कर और कहाँ जावे। उसका और कोई है भी नहीं। भगवान ही उसकी लाज रख सकते हैं।

छोड़ मत जाज्यो जी महाराज!
म्हा अबला बल म्हारे गिरधर, थें म्हारो सरताज।
म्हा गुणहीन गुणगार नागर, म्हा हि बड़ो से साज ॥
जगतारण भा मीरा निवारण, थें राख्यो गजराज।
हारयो जीवन शरण रावलां, कठे जावाँ ब्रजराज ॥
मीरां रे प्रभु और णा कोई, राखा अब री लाज ॥

मीरांबाई की पदावली—पद—४८

हरि के बिना मीरां की और कहीं गति नहीं है। भक्त के प्रतिपाल केवल भगवान ही हैं। भक्त उनका दास है। मीरां अन्य पद में अपने आत्म निवेदन को प्रकट करती है कि वह सर्वदा हृदय में हरि का नाम रटती रहती है। बार-बार वह भगवान से अपने दुःखों के निवारण की प्रार्थना करती है। संसार तो विकारों का सागर है। मीरां उसके बीच में फंसी हुई है जीवन की नाव अब टूटने लगी है। उसे विश्वास है कि डूबने वाले के रक्षक हरि ही हैं। विरह व्याकुल मीरां भगवान की सदा प्रतीक्षा करती है।

हरि बिन कूण गती मेरी ।
तुम मेरे प्रतिपाल कहिये, मैं रावरी चेरी ।
आदि अंत निज नांव तेरो, हीया में फेरी ।
बेरि बेरि पुकारि कहूँ, प्रभु आरति तेरी ।
यों संसार विकार सागर, बीच में घेरी ।
नाव फाटी प्रभु पाल बांधो, बूढ़त है बेरी ।
विरहणि पिव की वाट जोवे, राखिल्यो नेरी ।
दासि मीरां राम रटत है, मै शरण हूँ तेरी ।।

मीरांबाई की पदावली—पद ६३

सांसारिक जीवन की कटुता—

मध्यकालीन भक्त कवियों के काव्य साहित्य मे हमें सामान्य रूप से अनेक पद ऐसे प्राप्त होते है जिनमें भक्तों ने अपने लौकिक जीवन के कटु अनुभवों का वर्णन किया है। भक्ति के रंग में रंजित होने के पश्चात् एक भक्त जनका जीवन सामाजिक नीति नियमों से परे बहुत ऊंचा उठ जाता है। साधारण सामाजिक की तरह वह धर्म-कर्म सम्बन्धित समाज के नियमों का अनुसरण नहीं कर सकते। उनका साधु-सत्संग करना तथा भक्ति के आवेग में नाचना-गाना अन्य जनों को रुचिकर नही लगता। जाति पांति के भेद का खंडन कट्टर पंथी जनों को सत्य नही होता। परिणाम स्वरुप ऐसे भक्तजनों को समाज और परिवार का विरोध तथा कोप वहन करना पड़ा है।

प्रसिद्ध है कि नरसिंह मेहता एक बार हरिजनों की बस्ती में रात भर भजन कीर्तन करते रहे। नरसिंह जाति के नागर ब्राह्मण थे। उनके समय में इस जाति में हरिजनों की छाया तक अस्पृश्य मानी जाती थी। नरसिंह का उनके साथ नाचना गाना उनको सह्य कैसे हो सकता था। प्रातः काल नरसिंह जब हरिगुण गाते अपने घर जा रहे थे तब मार्ग में जाति के लोग उन पर व्यंग्य एवं तिरस्कार के बाणों की वर्षा करने लगे। परन्तु नरसिंह ने उनके व्यवहार की तनिक भी चिन्ता न की। भक्ति मे मग्न नरसिंह ने यही उत्तर दिया कि मुझे तो ईश्वर का ही पूर्ण आधार है। जात-पांत के नियम मै कैसे जानूं। भगवान की दृष्टि में सब समान हैं। नरसिंह के शब्दो में इस प्रसग का वर्णन इस प्रकार है:—

घेर पधार्या हरि जश गाता, वाता ताल ने शंख मृदंग,
हसि हसि नागर तालियो ले छे, आ शीरे ब्राह्मण ना ढंग।

मौन गही ने मेहताजी चाल्या, अधवधरा ने शो उत्तर देउँ,
जाग्या लोक नर-नारी पूछे, मेहताजी तमे एवा शुं ?
नात न जाणो ने जात न जाणो,न जाणो कांई विवेक विचार,
करजोड़ी कहै नरसैंयो, वैष्णवतणो मने छे आधार।

भक्ति के पद—२२

लोगों ने उन्हें भ्रष्ट कहा। उन्हें बुरा भला भी बहुत कहा, उन पर कर्म-धर्म का उल्लंघन करने का आरोप लगाया किंतु नरसिंह ने अति नम्रता से इस सामुदायिक विरोध को चुपचाप सहन कर लिया। तथा स्पष्ट रुप से उन्होंने सब को बतला दिया कि संसार के समस्त धर्म-कर्म एवं आचार-विचार भी भक्ति की बराबरी नहीं कर सकते। नरसिंह ने विश्वास के साथ यह घोषणा कर दी कि हरिजन से अथवा भक्तों से भेद भाव रखने का जीवन व्यर्थ ही जाता है। अर्थात् भक्ति के क्षेत्र में जाति तथा धर्म के भेद भाव को कोई स्थान नहीं है।

एवारे अमों एवारे एवा, तमे कहोछो वलि तेवा रे,
भक्ति करतां जो भ्रष्ट कहेशो तो,करशुं दामोदरनी सेवा रे।
जेनुं मन जे साथे बँधायुं, पेहेलुं हतुं घर रातुं रे,
हवे थयुं छे हरिरस मातुं, घेर घेर हींडे छे गातुं रे।
सघला साथमां हुं एक मुंडो, मुंडा भी वली मुंडो रे,
तमारे मन माने ते कहेजो, स्नेह लाग्यो छे मने ऊंडो रे।
कर्म धर्म नी वात छे जेटली, ते मुज ने नव भावे रे,
सघला पदारथ जे थकी पामे, मारा प्रभु नी तोले नावे रे।
हलवा कर्म नी हुं नरसैंयों, मुजने तो वैष्णव वहाला रे,
हरिजन थी जे अन्तर गणशे, तेना फोगट फेरा ठाला रे।

भक्ति के पद—२३

भक्तों की इस प्रकार की वाणियां तत्कालीन सामाजिक मनो वृत्ति का भी सुन्दर परिचय देती है। समाज में प्रसरित वर्ग-भावना तथा धर्म कर्म की कट्टरता इन भावों से स्पष्ट होती है।

नरसिंह के स्वजन तथा ज्ञाति-जन उनकी भक्ति से अत्यन्त रुष्ट थे। नरसिंह का निशदिन भगवान के भजन कीर्तन में मग्न रहना, उनका तिलक लगाना, साधु संग करना, कथा कीर्तन में बैठना अन्य स्वजनों को रुचिकर नहीं लगता था। वे बारम्बार नरसिंह को समझाने तथा अपनी बुद्धि के अनुसार सम्मति देने का प्रयत्न करते. किंतु नरसिंह को अपनी वैष्णव भक्ति पर पूर्ण विश्वास था। जाति एवं कुल के

नियमों का खोखलापन उन्हें ज्ञात था। उन्हें आत्म विश्वास था कि भक्ति करने वाले को कुल तथा घरबार का त्याग करना ही पड़ेगा। और भगवान उसी को मिलेंगे जो भक्ति करता रहेगा। भक्ति छोड़ने की सलाह देने वालों को नरसिंह ने दुरमतिया कहा है।

> दुरमतिया डाह्या थई आवे, शाणा थई समझावे रे,
> प्रेम भक्तिमां भंग पड़ाव, अज्ञान आगल लावे रे।
> आपणा कुलमां कोणे ना कीधुं. ते आपणे केम करीए रे,
> वैरागी थई नाटक नाचीए, तुलसी तिलक केम धरीए रे।
> सेवा तेवा होय ते हरिगुण गाये, ते आपणे केम गाइए रे,
> कृष्ण रामनी कथा थाय ज्यां, त्यां आपणे नव जईए रे।
> आप क्लेश ने क्रोधना भरिया, सघला ने समझावे रे,
> जम किंकर ना मारज पडशे, त्यारे आडो कोई नहीं आवे रे।
> कुल ने तजशे ते हरि ने भजशे. सहेशे संसारनुं मेणुं रे,
> भणे नरसैंयो शरि तेने मलशे, बीजी वाते वाशे वेणुं रे।

भक्तों के प्रति समाज का कठोर एवं उपेक्षा पूर्ण व्यवहार तथा उनके द्वारा दिये जाने वाले कष्टों के अनुभव उस युग की एक सामान्य बात हो गई थी, इसका प्रमाण हमें मेवाड़ की मीरांबाई के पदों में भी दृष्टिगोचर होता है। भक्ति के रस से सिक्त मीरांका हृदय अब महलों के वैभवपूर्ण वातावरण में लगता नहीं था। उसे साधु संतों के दर्शन कहीं होते नहीं। साधारण लोग मोह माया में निमग्न हीन कर्म करने वाले कूड़े-कर्कट सा जीवन व्यतीत कर रहे थे। साज-शृंगार अब उसे अरुचिकर प्रतीत होता था। इन सबका त्याग कर मीरां केवल गिरधर नागर की भक्ति में लीन रहना चाहती थी।

> नहिं भावे थारो देसलड़ो रंगेलड़ो।
> थांरे देसों में राणा साध नहीं छे, लोग बसे सब कूडो।
> गहणा गांठी राणा हम सब त्यागा, त्याग्यो कर रो चूड़ो।
> काजल टीकी हम सब त्यागा, त्याग्यो छे बांधन जूड़ो।
> मीरां के प्रभु गिरधर नागर, वर पायो छे पूरो।।

मीरांबाई की पदावली पद–३२

मीरां की भगवान से प्रीति और भक्ति को छुड़ाने के लिए राज परिवार के लोगों ने उसे अनेक कष्ट दिये। सास, ननन्द, और राणा के कोप का भाजन मीरां

को हमेशा बनना पड़ा। उसे रोकने की चेष्टा में स्वजनों ने उसे घर में कैद भी किया, दरवाजे पर ताले लगाये, प्रहरियों के कठोर पहरे बैठाये। किन्तु मीरां की प्रीति पूर्व जन्म की प्रीति है। उसे वह कैसे छोड़ सकती है ? गिरधर नागर कृष्ण के अतिरिक्त उसे कोई भाता ही नहीं।

हेली म्हासूं हरि बिन रह्यो न जाय।
सास लड़े मेरी नन्द खिजावे राणा रह्या रिसाय॥
पहरो भी राख्यो चौकी बिठारयो, ताला दियो जड़ाय।
पूर्व जनम की प्रीत पुराणी, सो क्यूं छोड़ी जाय।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, अवरू न आवे म्हारी दाय॥

मीरां की भक्ति से रुष्ट राणा के कठोर व्यवहार की पराकाष्ठा तो तब होती है जब उसके प्राण लेने के तरह तरह के उपाय किये जाते हैं। परन्तु भक्त मीरां इस कठोर परीक्षा में निर्विघ्न सफल होती है। विष का प्याला, सांप का पिटारा, शूलों की सेज भी मीरां को भगवान की अटल भक्ति से डिगा नहीं सकते। मीरां इन समस्त कष्टों को सहती हुई भक्ति में मस्ती से डोलती रहती है।

मीरां मगन भई हरिके गुण गाय।
सांप पिटारा राणा भेज्यो, मीरां हाथ दियो जाय।
न्हाय धोय जब देखण लागी सालिगराम गई पाय॥
जहर का प्याला राणा भेज्या, अमृत दी है बनाई।
न्हाय धोय जब पीवण लागी, हो अमर अंचाय॥
सूल सेज राणा ने भेजी, दीज्यो मीरां सुलाय।
सांझ भई मीरां सोवण लागी, मानो फूल बिछाय॥
मीरां के प्रभु सदा सहाई राखे विघन हटाय।
भजन भाव में मस्त डोलती गिरधर पै बलि जाय॥

मीरांबाई की पदावली पद–४१

संत-काव्य

आत्म निवेदन—

वैष्णव भक्तों के समान संत कवियों ने भी अपने निर्गुण ब्रह्म के प्रति आत्म निवेदन प्रकट किये हैं, अपनी दीनता एवं दुर्बलता को विह्वल भाव से प्रकट करके अपने इष्ट से, ब्रह्म से, दया तथा क्षमा की याचना संतों ने भी सामान्य रूप से की

है। राजस्थान एवं गुजरात के संतों ने इस प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति समान रूप से की है। यहाँ प्रदेशों के प्रमुख संतों की समानता पर विचार करेंगे।

राजस्थान के संत कवि दादू दयाल को इस का पश्चाताप है कि इस संसार में आकर मुझसे ऐसा कोई कार्य नहीं हो सका, जो ब्रह्म की प्राप्ति के लिये जीव को करना चाहिये। न मैंने प्रेम रस पिया, न शीश दिया, न नाम स्मरण में स्वयं को लीन कर सका और न मैंने अपने प्रिय को ही पाया, केवल अपनी मन मानी करता रहा और समय व्यर्थ गवांता रहा। इस प्रकार विनम्रता से अपने दोषों की स्वीकृति, संतों का सामान्य गुण रहा है।

मुझसे कुछ न भया है, यह यूंहि भयारे, पछितावा रह्या रे।
मैं शीस न दिया रे, मरी प्रेम न पीयारे, मैं क्या किया रे॥
हो रंग न राता रे, रस प्रेम न भाता रे, नहिं गल्लित गाता रे।
मैं पीव न पाया रे, कीया मनका भाया रे, कुछ हारन आया रे।
मैं रहूँ उदास रे, मुझ तेरी आशा रे, कहे दादू दासा रे॥

दादू वाणी—१५

संत कवियों की अभिव्यक्ति अत्यन्त सरल एव स्पष्ट होती है। सहज रूप से अपनी अनुभूतियों को प्रकट करने का प्रयास स्तुत्य कहा जा सकता है। साधुजन के सत्संग में रहकर उस अगम अपार निर्गुण फल को प्राप्त करना ही संत की कामना होती है। दादू ने अपने मन को सम्बोधित करके अमृतवन में साधु संतों की संगति में जाकर रहने को कहा है। निर्गुण के चरण सरोवर का निर्मल नीर प्रवाहित होता है, जहाँ शीतल छाया तन को सुख देती है, जहाँ बारहों मास संतवाणी और अमृत ध्वनि का प्रकाश प्राप्त होता है वहीं दादू अपने मन को जाकर बसने के लिए कहते हैं।

चलु रे मन, जहां अमृत वनां, निर्मल नीके सन्त जनां।
निर्गुण नांउं फल अगम अपार, संतन जीवनि प्राण आधार॥
शीतल छाया सुखी शरीर, चरण सरोवर निर्मल नीर।
सुफल सदा बारह मास, नानां वाणी धुनि परकास।
तहां वास वसि अमर अनेक, तहँ चलि दादू इहैं विवेक॥

वही—२५

दादू ने अपने साईं से यही निवेदन किया है कि मेरा मन माया के विकार से दूर हो और मुझ से ऐसा कोई कार्य न हो जो तुझे अच्छा न लगे। ऐसा कार्य

जिससे नो सतगुरु को लज्जित होना पड़े। संसार की माया से तथा हीन कर्मों से दूर रहने की कामना संत कवियों की एक मात्र कामना रही है।

माया विषे विकार थें, मेरा मन भागे।
सोई की जे सांइयां, तूं मीठा लगे॥
जे साहिबा कूं भावे नहीं सो हम थें जिनि होइ।
सतगुरु लाजे आपणा, साध बन माने कोई॥

दादूवाणी साखी ७४–७५

दादू ने ब्रह्म के साथ एकत्व का अनुभव किया और अपने आत्मानुभव को व्यक्त करते हुए लिखा है कि उन क्षणों मे दसों दिशाओ में केवल प्रिय के ही दर्शन होते हैं। उस समय तन मन की सुधि नहीं रहती। जीव का अपनत्व अथवा अहं भी मिट जाता है। तब न माया होती है न जीव होता है।

ब्रह्म का वर्णन करते हुए दादू कहते है कि अविनाशी ब्रह्म का अंश प्रकाश का होता है। वह एक अद्भुत तत्व है। हमने नेत्र भर कर उस सुन्दर सहज रूप को देखा है। जब वह परम तेज प्रकट हुआ तब मन उसी में समा गया।

दादू अपने प्रिय से मिलकर उसके साथ ही खेलने लगे। वह न कहीं आता है न कहीं जाता है।

तन मन नाहीं मैं नहीं, नहिं माया नहिं जीव।
दादू एके देखिये, दह दिसि मेरा पीव॥
दादू अविनासी अङ्ग तेजका ऐसा तत्त अनूप।
सो हम देख्या नैन भरि, सुन्दर सहज सरूप॥
परम तेज परगट भया, तहं मन रह्या समाई।
दादू खेले पीव सों, नहिं आवे नहिं जाई॥

दादू वाणी—
परचाका अंग–८ से १०

संत कवि गरीबदास आत्म निवेदन के रूप में परमात्मा के सामने उन कठिनाइयों को प्रकट करते हैं जो ससार को पार करने में इस जीवन में आती है, साधना के मार्ग में आने वाली सबसे बड़ी कठिनाई माया तथा मोह की हैं। जीवन के यौवन काल में मनुष्य के मन को माया के बन्धन से मुक्त करना अत्यन्त कठिन होता है। ऐसे समय में परमात्मा के नाम रूपी नाव ही मनुष्य को बचा सकती है, गरीबदास के

इस निवेदन में एक संत-हृदय की स्वाभाविक अनुभूति एवं मन की दुर्बलता की सहज स्वीकृति का सुन्दर परिचय मिलता है। गरीबदास ने लिखा है कि मैं इस संसार सागर के पार कैसे जा सकूंगा ? माया की प्रबल तंरगों में यौवन का जल बह रहा है नेत्र रूप के पीछे, नासिका सुगन्ध, जिह्वा स्वाद, और कान श्रवण के लिये भटकते हैं। मन मोहित हो रहा है। पांचों इन्द्रियां चंचल होकर घूमती हैं। अब केवल तुम्हारे नाम की नाव ही पार उतार सकती है।

पार पाऊँ कैसे !
माया सरिता तरुन तरंगनि, जल जोबन को वैसे ।।
नैननिरूप नासिका परिमल, जिभ्या स्वाद श्रवण सुनिबे को ।
मन मारे मोहे ऐसे ।।
पंचो इन्हीं चञ्चल चहुँ दिसि, असथिर होहि करहु तुम तैसे ।।
गरीबदास कहै नाँव नाव दो, खेह उतारो जैसे ।।

गरीबदासजी की वाणी ४६—५०

संत साधक के जीवन का सबसे सुखी दिन वह होता है जब से उसे परमात्मा के दर्शन की अनुभूति होती है। वह उसकी साधना की सफलता के क्षण होते हैं। गरीबदास ने अपनी आत्मानुभूति को प्रकट करते हुए लिखा है कि जब से मैंने तुम्हारे दर्शन पाये हैं तब से मेरे समस्त बोल सिद्ध हुए हैं। तन मन धन न्योछावर करने के पश्चात् दर्शन स्पर्श तथा प्रेम की मेरी अनुभूति में वृद्धि हुई है। मेरे सारे दु:ख दूर हुए हैं। मेरे प्रीतम के दर्शन प्राप्त हुए हैं। मेरे अंग अंग में आनन्द का संचार हुआ है। मैं तुम्हारा शोभा का वर्णन कैसे करूँ ?

जब ही तुम दरसन पायो ।
सकल दोष भयो सिद्ध, आजु भलो दिन आयो ।
तन मन धन नवछावरि अरपण, दरसन परसन प्रेम वढ़ायो।।
सब दुख गये हुते जे जिय में, पीतम पेखन भायो ।
गरीबदास सोया कहा बरणों, आनन्द अंग न मायो ।

वही पद—७

राजस्थान के संत वषना जी को इस बात का पश्चाताप होता है कि मन माया के मोह फंसकर परमात्मा को भूल गया है। मनुष्य जन्म को व्यर्थ गवां रहा है। मूल तत्व को छोड़कर निरर्थक तत्व को मन धारणा कर रहा है। संसार के खोखलेपन को, निस्सार वस्तु को पाने का प्रयास करता है। इसी लिए उसे कुछ

प्राप्त नहीं होता। सत्य को छोड़कर असत्य पर विश्वास करता है। इस प्रकार असत्य मार्ग पर चलने के कारण परमात्मा के रहस्य को समझ नहीं सकता। मन की ऐसी विचित्र तथा विरुद्ध गति को देखकर संत का दुःख होना स्वाभाविक है। संत की कामना केवल ब्रह्म से साक्षात्कार करने की होती है। और मन को माया से मुक्त किये विना तथा सत्य मार्ग की ओर प्रवृत किये विना परमात्मा के दर्शन का अनुभव सम्भव नहीं हो सकता। बषना जी ने अपने आत्म-निवेदन को इन शब्दों में व्यक्त किया है।

मन रे हरत परत दिन हारयो,
राम चरण जो तें हिरधों विसारयो।
माया मोह्यो रे क्यूं चित्त न आयो,
मनिष जन्म तें अहलो गमायो॥
कण छाड्यो, निकणे चित्त लायो,
थोयरो पिछाड्यो क्यूँ हाथ न आयो।
साँच तज्यो सूठें मन मान्यो,
बषना भूल्यो रे तें भेद न जान्यो॥

—बषनाजी के पद—१३, संत-सुधा सार

परन्तु जब हरि कीर्तन करते हुए परमात्मा के दर्शन की अनुभूति होती है तब संत के आनन्द की सीमा नहीं रहती। वह दिन उसके जीवन का धन्य दिवस होता है। बषनाजी ने अपनी इस प्रकार की आत्मानुभूति को प्रकट करते हुए लिखा है कि आज का दिन धन्य है आज संत जनों के साथ हरि कीर्तन होगा। जिनकी प्रतीक्षा वे करते रहते थे, वे आज घर आये हैं। साथ ही भाव-भक्ति अन्तर में उत्पन्न हुई। हृदय में भगवान के दर्शन हुए हृदय कमल अति प्रफुल्लित होकर विकसित हुआ। मन के मनोरथ पूर्ण हुए। संत और भगवान के साथ साथ मिलने के इस आनन्द का वर्णन नही हो सकता।

धन रे दिहाड़ो आज को रे लोइ,
हरिजन आया म्हारे हरिजस होइ।
ज्यांह को मारग हेरता हरि,
सो जन आया म्हारे कृपा करी॥
भाव भगति रुचि उपजी घणी,
हिरदे आया म्हारे त्रिभुवन धणी।

परफुलित अति कंवल विगास,
मन का मनोरथ पुरकी आस।
वपना महिमा वरणी न जाय,
राम सहित जन मिलिया आइ ।।

वही पद—२०

आत्म ज्ञान हो जाने पर संत को भगवान की पूजा, अर्चना इत्यादि निस्सार प्रतीत होने लगते हैं। क्योंकि ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त होता है। संत को उपासना के साधनो मे भी ईश्वर के निहित होने का आभास होने लगता है तव फिर पूजा, आरती किस की की जाय ? आत्मा और परमात्मा में अभेद का दर्शन जव होने लगता है तव संत की दृष्टि में साधक और साध्य में कोई अन्तर नही रहता। आत्म निवेदन के रूप में स्वामी सुन्दर दास ने परमात्मा के प्रति अपने भावों को प्रकट करते हुए कहा है कि मैं तुम्हारी आरती कैसे करूँ। तुम तो सर्वत्र वर्तमान हो। कुंभ भी तुम और जल भी तुम ही हो। तुम अलक्ष्य और अभेद कहे जाते हो। दीप, धूप, घन्टानाद के रूप में भी तुम ही हो पत्र तथा पुष्प भी तुम हो,स्वामी और दास भी तुम ही हो। जल, स्थल, अग्नि तथा पवन भी तुम हो। उस अवर्णनीय का वर्णन करने में दास की वाणी भी असमर्थ है।

आरती कैसे करों गुसाई। तुम ही व्यापि रहे सब ठाई ।।
तुम हीं कुंभ नीर तुम देवा, तुम हीं कहियत मलख अमेवा।
तुमहीं दीपक धूप अनूप. तुम ही घण्टा नाद स्वरूप ।।
तुम ही पाती पुहुप प्रकाशा, तुम ही ठाकुर तुम ही दासा।
तुमही जल थल पावक पौना, सुन्दर पकरि रहे मुख मौना ।।

स्वामी सुन्दरदास के पद—२५
सन्त सुधासार

परमात्मा से मिलन और साक्षात्कार करने का आनन्द अवर्णनीय होता है। लगभग सव संत साधकों ने इस आनन्द के अनुभव का वर्णन करने में अपनी असमर्थता प्रकट की है। इस अकथनीय आनन्द के सम्बन्ध में स्वामी सुन्दरदास कहते हैं कि अनुभव का आनन्द मुख से नही कहा जा सकता। वह एक अद्वैत की ऐसी स्थिति है जिसको संत आप ही समझ सकता है। अन्तर में से भाव उमडते हैं किन्तु कुछ कहा नहीं जाता, जिस प्रकार समुद्र में से लहरें उठ करके वापस उसी मे समा जाती है उसी प्रकार की दशा इन आनन्द के भावो की होती है।

आत्मा का यह सुख कहा नहीं जाता। शब्द कंठ तक आते हैं किन्तु मुख में से बाहर नहीं निकल सकते। इस आनन्द की तुलना सुन्दरदास ने धनिक के उस अपार धन से की है जिसको वह गुप्त रखता है। इससे प्रतिकुल जो निर्धन होता है वह अपनी एक कौड़ी भी सब को बतलाने के लिये उछाला करता है।

मुख ते कह्यो न जात हैं, अनुभव को आनन्द।
सुन्दर समुझे आपको, जहाँ न कोई द्वन्द॥
उमगि चलत हैं कहन को, कछू कह्यो नहिं जाइ।
सुन्दर लहरि समुद्र में उपजे बहुरि समाइ॥
कह्या कछू नहिं जात है, अनुभव आतम सुक्ख।
सुन्दर आवे कंठलौं, निकलत नाहिन मुक्ख॥
सुन्दर जाके बित्त है सो वह राखे गोइ।
कौड़ी फिरे उछालतो, जो टटपूंज्यौ होइ॥

वही—आत्मानुभव का अंग दोहा—१ से ४

राजस्थान के संत दरिया साहब (मारवाड़ वाले) ने भी केवल राम नाम के स्मरण की आकांक्षा की है। अन्य संतों की तरह दरिया साहब ने भी ब्रह्म को राम-नाम से स्मरण किया है। उनके राम निर्गुण, अदृश्य परमात्मा हैं। उनका कहना है कि अन्य देवों की उपासना की कोई आवश्यकता नहीं, यदि केवल ब्रह्म का स्मरण किया जाय तो अन्य सभी देवों का स्मरण हो जाता है क्योंकि ब्रह्म सर्वोपरि है। सत दरिया ने अपने आत्म निवेदन में कहा है कि मेरा साईं आदि भी है और अनादि भी। वह अदृश्य और अगम्य है। संसार की सारी माया उन्हीं की बनाई हुई है। केवल ब्रह्म का स्मरण करने से उनके अन्य स्वरूपों का स्मरण भी हो जाता है। इस तथ्य को समझाने के लिये दरिया साहब ने भिन्न-भिन्न दृष्टांत दिये है। जैसे बनमाली वृक्ष के मूल को पानी पिलाता है तब उसकी शाखायें तथा फल फूल भी पानी पी लेते है। किसी राजा को बुलाये जाने पर उसकी सेना साथ ही आती है। जैसे सूर्य के प्रकाशित होने पर तारे अपने आप भाग जाते हैं और गरुड़ को घर में लाने से सर्प वहाँ कभी रहने नहीं पाते, इसी प्रकार ब्रह्म का स्मरण करने से माया के सारे प्रपच नष्ट हो जाते हैं।

आदि अनादि मेरा साईं।
द्रष्ट न मुष्ट है अगम अगोचर,
यह सब माया उनहीं माई॥

जो बन मानी सींचे मूल,
सहजे पिवे डाल फल फूल।
जो नरपति को गिरह बुलावै,
सेना सकल सहज ही आवे ।।
जो कोई कर भान प्रकासे,
तो निस तारा सहजहि नासे ।।
गरुड़ पंख जो घर में लावे,
सर्प जाति रहने नहिं पावे।
दरिया सुमरे एकहि राम,
एक राम सारे सब काम ।।

दरिया साहब की बानी—पद—४

गुजराती कवि अखा ने अन्य संतों के समान निर्गुण ब्रह्म की उपासना एवं नाम स्मरण की आकांक्षा अपने पदों में प्रकट की है मानव जीवन अमूल्य वस्तु है, किंतु इस जीवन में असत्य के पीछे भाग कर उसे व्यर्थ गँवाना नहीं चाहिये। पल पल और क्षणक्षण चिद्घन ब्रह्म का स्मरण करें। सद्गुरु की शरण में जाकर सद् वचनों का श्रवण करें। जगत् में सर्वत्र व्याप्त प्रभु की शक्ति हृदय में धारण करें। निशदिन ब्रह्म का स्मरण करके कामादि विकारों का त्याग करें तथा अनुभव करें तथा मन में अखंड आनन्द का अनुभव करे। राजस्थान के संत कवि तथा अखा की अभिव्यक्ति का भाव-साम्य दृष्टव्य है।

आवुं रुडुं नरतन पामी, भजिये चिद्घन स्वामी रे,
जूठामां न जीवन गमावीये रे।
क्षण पल घड़ी दिन रात्री थाये, आयुष्य चाल्युं जाये रे,
चेती ने सद्गुरु ने शरणे, आवीये रे।
साँचे भावे गुरु सेवी ने; शुणीये वचन प्रमाण रे,
जगव्यापक प्रभु अमित शक्ति उर धारीये रे।
सांज संवार बपोरे भजतां, कामादि ने तजतां रे,
अखण्ड आनन्द मनमां लावीये रे।

अखानी वाणी—मनहर पद-६३

सच्चिदानन्द ब्रह्म निर्गुण, निर्मल, अकल तथा अनुपम है। माया के द्वारा इस जगत का विस्तार वही करता है, अपनी इच्छा से ही नाना रूप धारण करता है। यह विश्व ब्रह्म का ही विराट स्वरूप है। अखाने इसी रूप का स्मरण करने की कामना प्रकट की है।

ते प्रभु ने तुं भज निरधार।
जे सच्चिदानन्द व्यापक रूप, निर्गुण निर्मल अकल अरूप,
माया करे जग विस्तार, ते प्रभु ने तुं भज निरधार।
इच्छा थी ईश्वर कहेवाय, हिरण्यगर्भ संकल्पे गाय,
विश्वरूप विराट धरनार, ते प्रभु ने तुं भज निरधार।

वही—पद—४८

संत को जब हृदय में राम के प्रकट होने का और उनसे मिलने का अनुभव होने लगता है तब उसके मन में परिवर्तन हो जाता है। हृदय रूपी गुफा में राम प्रकट हुए हैं और मन परिवर्तित हो गया है अब तो माया के स्थान पर ब्रह्म के ही दर्शन होते हैं। जिस प्रकार सूर्य से तेज से बर्फ पिघल कर पानी हो जाता है उसी प्रकार आत्म ज्ञान होने पर माया के सारे दोष स्वयं जल जाते हैं। जब तक जीव में माया का प्रभाव रहता है तब तक आत्मा का ज्ञान प्राप्त नही होता। ज्यों गत-यौवना स्त्री प्रसवकाल तक बढ़ती रहती है। जिस प्रकार दूध में से घी निकाल लेने पर दहीं छाछ हो जाता है। उसी प्रकार आतमा को पहचान लेने पर माया नष्ट हो जाती है।

हृदे गुहामां राम प्रगट्या, तेणे पालटो मननो थयो,
माया ने ठामे ब्रह्म भासे, संसार नो सम्भव थयो।
जेम रवि ने तेजे आंगले, पालो ते पाणी थइ वहे,
तेम जेहने प्रगटे आत्मा, ते माया दोष सहेजे दहे।
भाई माया नुं बल तिहों लगी, जिहाँ आत्मा जाण्यो नहीं
जेम गत यौवन थई युवती, ते प्रसव लगि वाधी रही।
जेम गोरस मांथी आज्य काढे, ते जेम तक्र थयुं दही।
आतमा जाणे एम माया, विचारे दीसे नहीं।

अखेगीता—कडवुं—११

जब साधक को ब्रह्म ज्ञान हो जाता है तब पूर्ण अद्वैत भाव हृदय में जागृत होता है। तब जीव और ब्रह्म में कोई भेद दृष्टि गोचर नही होता। माया के समस्त प्रपंच बन्द हो जाते हैं। जब अन्तर में ही व्याप्त ब्रह्म को जीव पहचान लेता है तब सत्य का ज्ञान प्राप्त होता है। अखा ने अपने इस साक्षात्कार के आत्मानुभव को इस प्रकार व्यक्त किया है। आतमा स्वयं ब्रह्म स्वरुप है। जगत निर्गुण सगुण, सत, रज तम, सर्वस्व इसी आत्मा में ही है जो परमात्मा स्वरूप हैं। इस तथ्य का साक्षात्कार होने लगता है।

ते हुँ जाणीओ रे, जो जाणणिहारो स्वें आप,
प्रपंच सघणा समीगया ज्यारे आपनां जाण्यो व्याप।
सोहे तेज सनातन ज्यां, निगम रह्या वल हार,
ते हूँ जगत मुज माहे, हुं निर्गुण गुणनो भंडार।
अनल,अनिल ने वली अवनी,अदि आकाश मुझ मांहे,
सत रज तम सत्ता सर्व भारी, एते हुँ नहि प्राये।

अखानी वाणी—पद—६

ज्ञानी कवि गोपाल ने परमात्मा के चरणो मे शरणागति प्राप्त करने की अभिलाषा अपने निवेदन मे प्रकट की है। सर्व धर्मों का कारण ब्रह्म ही है विधाता भी उसकी स्तुति करते है। धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष चारों फल का दाता भी वही है। सृष्टि मे ब्रह्म से अधिक कोई समर्थ नही है। करोडो कला का कर्ता है उसे कोई जान नही सकता। वह कृपा निधान तथा दीन दयाल है। गोपाल उन्ही की शरण चाहते है।

धर्म सकल तणुं तमो कारण जोहनी स्तुत करे विधाता।
धर्म अर्थ ने काम मोक्ष फल चयार पदारथ दाता॥
नहीं समरथ त्रिभोवन को तम थी बुद्धसागर माहाबलीया।
कोटिक कोट कला ना करता कोणे न जाए कलीया॥
दीनदयाल कृपाल कृपानीध्य, तम्यो छो अंतर ज्यामी।
आस करी आव्यो तम चरणे शरणागत हुं स्वामी॥

ज्ञान प्रकाश कडवुं—१

गुजराती ज्ञानी कवि श्री नरहरि ने साधना और भक्ति के सम्बन्ध मे अपने स्वानुभव को व्यक्त करते हुए लिखा है कि जीव को जब आत्मा दृष्टि प्राप्त हो जाती है तब उसके सर्व कार्य पूर्ण होते है। और वह भवसागर को सुख पूर्वक पार करता है। आत्मदृष्टि से ही ईश्वर का साक्षात्कार हो सकता है। इसके लिये मनुष्य को सचेत रहना चाहिए। आत्मदृष्टि प्राप्त होने पर मन मे अति आनन्द होता है। उस अवस्था मे मन इधर उधर नही भटकता, केवल हरि को देखकर प्रसन्न होता है। अटल रूप से मन हरि के चरणो मे रहता है और सदा उसी का नाम स्मरण करता है।

आत्म द्दष्टे अर्थ सर्व सरे जीव भवार्णव सुणे उतरे।
आतमद्रष्टी जीव होय साक्षात्कार एक करे नरहरय सारोद्धार॥

ते माटे सावधान ते थई रोहो, जन हृदे आत्म दृष्टि ग्रहो।
आत्मदृष्टे आत्मा नीरखीये, कहे नरहृदय हरी जोई हरखीये ॥
हरी जोतां होये अत्यंप्रसन अहरु पहरु धाये नहीं मन।
हरीशरण मन निश्चल थै रहे ते हरि हरी निरंतर केहे ॥

प्रबोध मंजरी—पद २१ से २३

गुरु महिमा—

संत कवियों के काव्य साहित्य में आत्मानुभव तथा आत्म निवेदन के पदों के पश्चात् गुरु-महिमा के पद प्रचुर-मात्रा में प्राप्त होते है। संत साधना में गुरु की महिमा सर्वोपरि है। सद्गुरु की शिक्षा के अभाव में सत्य के ज्ञान की प्राप्ति असंभव है इस बात का विश्वास संत-साधना का प्राण है। राजस्थानी एव गुजराती संत तथा ज्ञानी कवियों ने गुरु की महत्ता का वर्णन अत्यन्त श्रद्धा एवं विश्वास के साथ किया है।

दादू ने गुरु की शक्ति का परिचय देते हुए लिखा है एक लाख चन्द्र और एक करोड़ सूर्य मिल कर प्रकाश करें तब भी वे अज्ञान के अन्धकार को नष्ट नहीं कर सकते, वह केवल गुरु ही कर सकता है।

इक लख चंदा आणि धरि, सूरज कोटि मिलाय।
दादू गुरु गोव्यंद बिन तो भी तिमिर न जाय ॥

दादूवाणी—गुरुदेव को अंग—८

जीव के मन में भ्रम का परदा छाया हुआ है। यदि गुरु की कृपा प्राप्त हो तो वह सहज ही मिट सकता है।

दादू पड़दा भरम का, रह्या सकल घटि छाइ।
गुरु गोव्यंद कृपा करें, तौ सहजै ही मिटि जाइ ॥

वही—११

शास्त्रों की शिक्षा में वह शक्ति नही जो गुरु की शिक्षा मे होती है। क्योंकि गुरु की शिक्षा अनुभव के आधार पर प्राप्त व्यावहारिक एवं अधिक प्रमाणभूत होती है। दादू को गुरु ने वह मार्ग बतला दिया जिस पर चल कर वे परमात्मा मे मिल सकते है। वेद और कुरान भी उस मार्ग को नही बतला सके।

दादू सोई मारग मनि गह्या, जेहिं मारग मिलिये जाइ।
वेद कुरानूं ना कह्या, सो गुर दिया दिखाई ॥

वही—१२

गुरु केवल ज्ञान ही नही देता, किन्तु अपने शिष्य को दु:ख के समय सच्ची सहायता भी वही करता है। दादू के इस पद मे गुरु के प्रति आन्तरिक प्रेम प्रकट हुआ है। दादू कहते है कि सुख मे तो सारा संसार साथ देता है किन्तु दु:ख मे केवल सत्गुरु ही सहायता करता है।

सुख का साथी जगत सब, दु.ख का नाहीं कोइ।
दु ख का साथी सांइयाँ, दादू सतगुर होइ।।

वही—२८

संत रज्जबजी ने गुरु की महिमा बतलाते हुए लिखा है कि साधक के मन मे उत्पन्न होने वाले सन्देह को गुरु के अतिरिक्त और कौन दूर कर सकता है। सकल लोक मे तथा तीनो भुवन मे गुरु के सिवा ऐसा कोई नही मिला जो सन्देह का निवारण कर सके।

सतगुरु बिन सन्देह कूँ, रज्जब माने कौन।
सकल लोक फिर देखिया, निरखे तीन्यूं भौन।।

रज्जबजी की वाणी—साखी—७

संतों ने गुरु को ईश्वर से भी ऊंचा स्थान दिया है। क्यो कि परमात्मा से मिलन गुरु ही करवाता है रज्जबजी ने इस तथ्य को अपनी साखी मे स्पष्ट करते हुए लिखा है कि जगदीश ने जीव रचना की और उसे इस शरीर मे बाँध दिया। परन्तु गुरु ने उस पुन: ईश से मिला दिया।

जीव रच्या जगदीस ने, बांध्या काया माहिं।
जन रज्जब मुक्ता किया, तौ गुरुसम कोई नाहिं।।

वही—साखी–१०

सत्गुरु को प्राप्त करने मे सफल होना संत के जीवन की सबसे बडी घटना है। स्वामी सुन्दर दास ने सतगुरु के मिलने से होने वाले आनन्द को इन शब्दो मे व्यक्त किया है :—

खोजते-खोजते सद्गुरु को प्राप्त कर लिया है। मेरा आज भाग्योदय हुआ है। उसे देखते ही आनन्द हुआ है। परमात्मा ने मुझ पर बडी कृपा की है।

खोजते खोजते सद्गुरू पाया, भूरि भाग्य जाग्यो शिष आया।
देखत दृष्टि भयो आनन्दा, यह तो कृपा करी गोविंदा।।

गुरु की वाणी का महत्व शिष्य के लिये अकथनीय होता है सुन्दर दास ने

गुरु की वाणी की तुलना सूर्य तथा चन्द्र के प्रकाश, समुद्र की गंभीरता, तरु की छाया तथा मेघ की वर्षा से की है। गुरु की वाणी अज्ञान के अंधकार को मिटाती है, अमृत रस का पान कराती है, गुरु की वाणी में समुद्र का गाम्भीर्य तथा तरुवर की छाया होती है। सुन्दर दास ने लिखा है :—

रवि ज्यों प्रगट प्रकाश में जिन तिमिर मिटाया।
शशि ज्यों शीतल है सदा रस अमृत पिवाया।।
अति गम्भीर समुद्र ज्यों तर पर ज्यों छाया।
बानी बरिखे मेघ ज्यूँ आनन्द बढ़ाया।।

सुन्दर ग्रन्थावली—
सुन्दरदास महिमा निसांनी ९-१०

गुजराती में कवि अखा ने गुरु की महिमा का वर्णन करते हुए कहा है कि शरदकाल में आकाश निर्मल एवं स्वच्छ होता है उसी प्रकार शिष्य का मन भी गुरु के प्रताप से निर्मल बन जाता है।

जेम शरद काले अम्बर ओपे, नीर निर्मल होय घणुं,
सद्गुरु सन्त प्रताप प्राये, एहवुं करे मन जंत तणुं।। ७.

अखेगीता—कडवुं—३६

सद्गुरु जब शिष्य की सुध लेता है तब शिष्य को आत्मा का ज्ञान प्राप्त होता है। अखा ने गुरु की कृपा से प्राप्त सफलता का वर्णन करते हुए लिखा है कि सद्गुरु ने मुझे हरि का सच्चा धाम बतलाया। हरि रूपी हीरा गुरु ने हाथ में दिया। गुरु ने मुझे सान में हर सत्य का ज्ञान दे दिया। गुरु ने मेरे कान में सच्चा मन्त्र मुझे दे दिया है। मेरा मन डांवाडोल रहता था। गुरु ने उसे स्थिर बनाया। मैं तो संसार में मार्ग भूला था। गुरु की कृपा से ही मुझे हरि का घर मिल सका।

सतगुरु सन्ते लीधी मारी सार रे,
ओलखाव्यो निज आतमा रे।
धीरज दई ने बताव्युं छे धाम,
हरि हीरो दीधो हाथ मां रे।।
गुरु ए मुंने बताव्युं छे ज्ञान रे,
समजाव्यां रूडो सान मां रे।
मन्त्र भणांता मारा मन्दिर मांय,
कीधुं गुरुवें मैने कान मां रे।।

दया करी ने डगतुं राख्युं दील रे,
अस्थिर मन ने स्थिर क्युं रे।
सुं तो मांस भूलती भुवन रे,
जागुं त्या मारूं घर जड्युं रे॥

अखानां पद—१४५

ज्ञानी कवि गोपाल ने गुरु का गुणगान करते हुए सद्गुरु को अहंकार दूर करने वाला, व्यापक विश्व का परिचय कराने वाला तथा ब्रह्मवेत्ता कहा है। अपने गुरु की इतनी प्रशसा करने के उपरात भी कवि अपने आप को गुरु का गुण गान करने मे असमर्थ पाता है।

अहं भाव ते व्याध अपार तेह तणा तमो निवारन हार।
नेत्र पड़ल उतारे जे वेद शिरोमण मणीए तेह॥
व्यापक विश्व ओलखावे राम ए ब्रह्मवेत्ता मोहोटा तेनांक म।
कीधा एक गुरुना गुण बहु मदमती हुँ क्यांहां लगी कहुँ॥

कडवुं—३

गुजराती ज्ञानी कवि नरहरि ने अपने वासिष्ठ सार गीता ग्रन्थ मे गुरु की महिमा का वर्णन करते हुए गुरु से आत्म विचार प्राप्त करने तथा सद्गुरु की शरण मे जाने का उल्लेख किया है। यह संसार एक महारोग है तथा मनुष्य का अहं भी निरर्थक है। जीव की भवभ्रान्ति को नष्ट करने की औषधि आत्म विचार ही है। इसलिये कवि नरहरि के विचार से गुरु के चरणो में नमन ही एक मात्र उपाय है।

दीर्घ रोग तां ए संसार तेहनू औषद् आत्म विचार।
कवण अहं अनि कवण संसार एणि विवेक होय निस्तार॥
यम उषदि रोग नी शांत त्यम आत्म वीचारि भाजि भवभ्रांत्य।
आत्म विचार गुरथी पामीय सद्गुरू चरणे शीस नामीय॥

वासिष्ठसार गीता—३१—३२

अखा के गुरु महिमा के पद दो तरह के प्राप्त होते हैं। कही उसने गुरु के रूप मे सत के गुण गाये है और कही स्वयं परमात्मा को ही सद्गुरु मानकर उनकी महिमा का वर्णन किया है। ऐसे पदों के आधार पर प्रतीत होता है कि अखा की दृष्टि मे पर ब्रह्म ही सच्चा सद्गुरु हो सकता है। उदाहरणार्थ प्रस्तुत पद मे अखा ने लिखा है कि आज सद्गुरु की शरण में आते ही आनन्द उमड पड़ा है। मै अन्तर

का अन्धकार दूर हो गया तथा ज्ञान का सूर्य उदित हुआ। मैंने अखंड स्वरूप हरि को पहचान लिया, मेरे समस्त कार्य पूर्ण हुए हैं। भवसागर का भय दूर हो गया। निर्भयता के निशान बजे। मेरे विकार दूर हुए, मैं आज अखंड स्वरूप हूँ। शील और संतोष मेरे ससुराल हैं। गुरु ने मुझे जो याचनी की वही दिया है। मेरे मन की आशा पूर्ण की। अखा पर कृपा करके हरि ने आज अपनी शरण में लिया है।

आनन्द वाह्यो ने रङ्ग उलट्यो रे,
प्रगट्या छे कांइ पूरण ब्रह्म रे,
सतगुरु ने चरणे आवतां रे।
तिमिर हतां ने मारां टली गयां रे।
उदीयो छे कांइ ज्ञान फेरो भाण रे।
अखण्ड स्वरूपे हरि ने ओलख्या रे,
सरीयां मारा काम ने काज रे।
भवने सागरनो मारे भय टल्यो रे,
वाग्यां छे कांइ निरभें निशान रे।
अखण्ड स्वरूप वेनी माहूंस रे,
टलीया मारा हृश्य ने विकार रे।
पीयर पनोती वेनी हुं थई रे।
सासरियुं छे शील ने संतोष रे।
लेरे माग्युं ते गुरुवें आपीयुं रे,
पुरी मारा मनडा नी आश रे।
अखानी ऊपर दया उपजी रे,
राख्या हरियें चरण नी पास रे॥

अखाना पद—१४४

विरहानुभूति—

संत मत की साधना में प्रेम तत्व का विशेष महत्व है। निर्गुण ब्रह्म के प्रति प्रेम की तन्मयता तथा उस अदृश्यप्रिय से मिलने की तीव्र आकांक्षा संत काव्य साहित्य में सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है! संत साधक का हृदय एक विरहिणी के हृदय की भाँति अपने प्रिय के वियोग में व्याकुल रहता है! राजस्थान तथा गुजरात के संतों के प्रेम की उत्कृष्ट भावना तथा विरह की अनुभूति उनके काव्यो मे बड़े मार्मिक रूप मे अभिव्यक्त हुई है।

संत दादू की प्रिय मिलन आकांक्षा इतनी तीव्र है कि उसके वियोग में वे सदा रोते रहते हैं। उन्हें ऐसा लगता है मानो संसार में उनके समान दुःखी कोई नहीं है।

दादू इस संसार में मुझसा दुःखी न कोई।
पीव मिलन के कारणे, मैं जग मरिया रोई॥

दादू वाणी—विरहको अंग—५

विरह की व्यथा बढ़ते बढ़ते इतनी असह्य हो गई है कि अब बिना दर्शन किये रहा नहीं जाता। दादू का वियोगी अन्तः करण पुकार कर कह रहा है कि मेरे प्रिय से जाकर कोई कहो कि आकर दर्शन दे। इन पंक्तियों में संत के दर्शनाभिलाषी हृदय के व्याकुल उद्गार हृदय स्पर्शी लगते है।

दादू विरह वियोग न सहि सकों मोपैं रह्या न जाई।
कोई कहो मेरे पीव कौं दरस दिखावै आई॥

वही—२१

दादू को विश्वास है कि वियोग में विलाप करते करते प्रिय अवश्य मिलेंगे। जब वह ध्यान से उनके रुदन सुनेगा तब अपने आप प्रकट होगा।

दादू तौ पिव पाइये, करि मंसे बिलाप।
सुनिहै कबहूँ चित्तधरि, परगट होवे आप॥

वही—२६

प्रिय का प्रेम इस तन में इस तरह व्याप्त हो गया है कि रोम रोम केवल प्रिय की रट लगा रहा है। उन्हें और कुछ सूझता ही नहीं।

प्रीत जुमें रे पीव की, पैठी पिंजर माँहि।
रोम-रोम पिव-पिव करे, दादू दूसर नाँहि॥

वही—३१

रोम रोम व्याप्त प्रेम की प्यास तृप्त करने के लिये दादू अपने प्रिय राम से धन-धरा बनकर बरसने का निवेदन करते हैं।

रोम-रोम रस प्यास है, दादू करहि पुकार।
रोम घटादल उमङ्गि कटि, बरसहु सिरजनहार॥

वही—३०

संत गरीब दास के विरह वर्णन में प्रकृति के उद्दीपन स्वरुप का चित्रण कवि की विरहानुभूति के साथ-साथ उनकी कवित्व शक्ति का भी सुन्दर परिचय देता है। प्रिय की याद जब आती है तब विरह की ज्वाला तन को जलाती रहती है। मन में यही वेदना बनी रहती है कि प्रिय का कब दर्शन हो और कब उनके वचन सुनने मिले। पावस ऋतु में सारी धरती शृंगार करती है। चातक, मोर और कोयल गीत गाने लगते हैं तब इतनी वेदना होती है मानो शरीर पर करवत चलाने से होती हो। पुष्पों की सुगन्ध भी पीडा बढ़ाती है। वसन्त मे प्रफुल्लित वृक्ष सर्प के समान डसने लगते है। विना दर्शन के विरह हृदय को जलाता रहता है। गरीब दास को सुख तभी प्राप्त होगा जब वे उस परम ज्योति के दर्शन करेगे।

जब-जब सुरति आवती मनमें, तब तब विरह-अनल परजारे।
नैनानि देखों बैन सुनों कब, यहु वेदन जिय मारे॥
चात्रग मोर कोकिला बोलत, मानो करवत नख-सिख सारे।
पावस रितु रङ्गति सब वसुधा, दासन दुख उर दीनों धारे॥
चन्दन चन्दन सुगंध सहित सब, कोमल कुसुम सार की आरे।
रितु बसन्त मोरे द्रुम सब हीं, मानो डसे भुवंगम कारे॥
गरीबदास सुख तबहीं लेखों, जबहीं जोतिहि जोति निहारें॥

श्री गरीबदासजी की वाणी-पद-४

संत रज्जबजी ने भी विरह वर्णन में वर्षाकाल के प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण किया है। संत के विरही हृदय में श्रावण मास की प्रकृति वेदना को अधिक तीव्र करने मे सहायक होती है। विरही संत के लिए प्रिय के वियोग मे श्रावण असह्य बन गया है। राम के वियोग मे संत अन्तर विरह की वेदना से व्याकुल हो रहा है। काली घटाएं छा गई हैं। विरहिणी को दग्ध कर रही है, प्रिय के बिना कनक के आवास भी सूने लगते हैं। ऐसी दशा में विरह नाग के समान डसने आता है। संत कवि ने स्वय को परमात्मा की विरहिणी नारी के रूप में मानकर अपनी अनुभूति व्यक्त की है। सूनी सेज की व्यथा कही नहीं जाती, व अबला को धीरज नही है। दादुर, मोर, पपीहा आदि शोर कर रहे हैं। उनका स्वर तीर के समान चुभता है शृंगार भार स्वरुप लग रहे हैं। कुछ भी सुहाता नहीं। प्रिय ही नही तो प्रेयसी किसके साथ प्रेम क्रीड़ा करे।

राम बिन सावण रह्यो न जाए।
काली घटा काल होइ आइ, कामनि दगधं माइ॥
कनक अवास सब फीके, बिन पिय के परसंग।

महाविपत बेहाल लाल बिन, लागे विरह-भुजंग ।।
सूनी सेज विथा कहूँ कासूँ, अबला धरे न धीर।
दादुर मोर पपीहा बोलें, ते मारत तन तीर ।।
सकल रङ्ग कौन सूँ कीजे, जे पीव नांहीं माहीं ।।

रज्जब जी की वाणी—पद—१४

संत बषना जी के हरि दर्शन के अभिलाषी नेत्र प्रिय की प्रतिक्षा में निश-दिन विलाप करते रहते है विरह की ऐसी तीव्र अनुभूति संतों मे समान रूप से पायी जाती है। बपना जी अपनी दुःख की भावना को व्यक्त करते हुए लिखते है कि हरि को मेरे आंगन में आते हुए में कब देख सकूँगा। यह नयन उनके सुन्दर रूप को देखने के लिए व्याकुल हो रहे हैं। मैं उनके आने पर अपना तन-मन उन पर समर्पित कर दूँ। मेरी रातें तारे गिनते व्यतीत होती है। मुझ वि हिणी का हृदय बिना प्रिय को देखे तड़पता रहता है मोहन के बिना मेरे मन को धैर्य नहीं है। वपना जी अब उस दिन की प्रतीक्षा में है जब दीन दयाल उस पर दया करेंगे :—

हरि अवै हो कब देखों, आँगण म्हारे।
कोई सो दिन होई रे. जा दिन चरणां धारे ।।
सुन्दर रूप तुम्हारो देखों, नैनों भरे।
तन, मन ऊपरि वारी, न्योछावर करे ।।
तारा गिणतां मोहि विहावे, हैणि निरासी।
विरहणी विलाप करे हरि दरसन की प्यसी ।।
विन देखें तन ताला बेली, कामणी करे।
मेरा मन मोहन विना, धीरज ना धरे ।।
वषना वारम्बार हरि का मारिग देखें।
दीनदयाल दयाकरि आवो, सोह दिन लेखे ।।

वषनाजी की वाणी–पद–१६

विरह की व्यथा संत सुन्दर दास के तन को भी उतना ही त्रास दे रही हैं। हरि दर्शन की आशा में उनके नेत्र प्यासे मर रहे हैं पल-पल और क्षण-क्षण चलने वाली श्वास हरि के नाम का सुमिरन करती है। मन निश दिन उदास रहता है, न भीतर चैन है और न बाहर। इसी चिन्ता मे शरीर के रक्त और मांस भी सूखने लगें। विरही संत का अब जीना भी दूभर हो गया है।

माइ हो ! हरि-दरसन की आस।
कब देखों मेरा प्रान-सनेही, नैन मरत दोऊ प्यास।
पल छिन आध घरी नहिं विसरों, सुमिरन सास उसास॥
घर बाहरि मोहि कल न परत है, निश दिन रहत उदास।
यहै सोच सोचत मोहि सजनी, सूके रगत स मांस।
सुन्दर विरहिन कैसे जीवे, विरह विया तन त्रास॥

स्वामी सुन्दरदास के पद—४
सन्त सुधासार

गुजराती कवि अखा ने उपासना के काल में उपासक के हृदय में उत्पन्न होने वाले वैराग्य भाव का तथा विरह व्यथा का वर्णन किया है। विरह की तीव्र वेदना का उल्लेख अखाने कम शब्दों में किन्तु बड़े प्रभाव शाली ढंग से कर दिया है। अखा के कथनानुसार जब मनुष्य में दृढ वैराग्य उत्पन्न होता है तब परमात्मा से मिलने की तीव्र अभिलाषा तन को अग्नि के समान जलाया करती है। उससे उसके सारे राग-द्वेष नष्ट हो जाते हैं। उसकी विरह की व्याकुलता तथा मिलन की आतुरता अकथनीय होती है।

नरने उपजे दृढ़ वैरागजी, आरत केरी मन विषे आग जी।
तेहना टले द्वेष ने रागजी, नहीं आनुरता कहेवा लाग जी॥

अखे गीता—कडवुं—६

ब्रह्म के] विरह में व्याकुलता मन की आतुरता एवं छटपटा वैसी ही होती है जैसी-जल से बिछुड़ी हुई मछली की। विरह का सूर्य जिस प्रकार सिर पर प्रचंड रूप से तपता है और धरती पानी के लिये छटपटाती रहती है उसी प्रकार विरही का मन परमात्मा के लिये तड़पता रहता है।

आतुरता मन अति घणी, जेम मीन विछड्युं नीर थी,
अज्ञान शिचाणो लेइ चड्यो तेणे दूर नाख्युं तीर थी।
तड़फड़े तलपे अति घणुं, विरह सूरज शिर तपे,
संसार रूपी भूमि ताती, नीर नीर अहोनिश जपे॥

अखेगीता कडवुं—६

जिसके हृदय में विरह-वैराग्य उत्पन्न होता है उसका रोम रोम हरि का नाम जपता रहता है। सद्गुरु की शरण में वह अपना सर्वस्व समर्पित कर देता है। परब्रह्म में अपने आप को लीन कर देता है।

विरह वैरागे जेहनुं मन तपेजी, ते रुंरुं मांहे हरि हरि जपेजी ।
सद्गुरु चरणे आपोवुं अपपे जी, परब्रह्म रहेने पोते खपेजी ।।

अखेगीता कडवुं —१०

विरही साधक संसार मे प्राणी मात्र से हेत करने लगता है । वह तब किसी की उपेक्षा नही करता, सर्वत्र वह ब्रह्म के ही दर्शन करता है । उसे ब्रह्म के ही नेत्र, कान और हाथ पैर दिखाई देते है । दाता और पात्र मे भी परब्रह्म के ही दर्शन होते है । जल मे, स्थल में, अग्नि में सर्वत्र ब्रह्म ही दृष्टि गोचर होते हैं । स्वर्ग लोक, मृत्यु लोक, पर्वत पर, गुफा में, बन में तथा वाटिका में जहाँ भी वह देखता है उसे ब्रह्म के दर्शन होते है । ऐसा कोई स्थान नही रहता जहाँ ब्रह्म का दर्शन उसे न होता हो ।

ते हरि हरि देखे सकलमां जेहने जीव जीव करी देखतो,
हरि जाणी हेत करे सकलमां, पहेलां जे उवेखतो ।
देखे नेत्र परब्रह्मनां, परब्रह्मना कर्ण माल,
पाद पाणी परब्रह्मनां, परब्रह्म दाताने पात ।
जले परब्रह्म, स्वर्ग मृत्यु - मृत्यु पाताल,
गिरि गह्वर वन वाटिका, परब्रह्म जाल ने भाल ।

वही कडवु—१०

विरह की ज्वाला मे नयनों के आँसू सूख जाते है और कलेजा सतत् जलता रहता है । जिस ओर वह करवट लेता है उसी ओर तन मे आग सी जलन होती है । तात्पर्य यह है कि परमात्मा के विरह में उपासक का सारा तन जलता रहता है । अखा के विरहानुभूति के वर्णन मे तथा विरही हृदय की कला के चित्रण में अत्यन्त स्वाभाविकता एवं मार्मिकता है ।

नयणें ते नीर देखे नहीं, कलकले काजल जले,
पेटे पूंठे पासु वाले, जेम पड़े तेम दाझे जले ।

वही कडवुं—१०

संसार में जीव की दशा का वर्णन

संत तथा ज्ञानी कवियो ने जगत और जीव की दशा के सम्बन्ध में असंख्य पदों की रचना की है । जीव को परमात्मा से मिलने मे बाधा पहुचाने वाला संसार है । संसार की माया जीव को अपने कठोर पाश मे बांधे रहती है । उसमे मुक्ति

पाना जीव के लिए अत्यन्त कठिन कार्य है। जीव संसार के भ्रम में भटकता रहता है और अज्ञानता के कारण मुक्ति के सच्चे मार्ग से सदा विमुख रहता है। ब्रह्म-ज्ञान से विमुख जीव की कैसी दयनीय दशा होती है इसका वर्णन राजस्थान तथा गुजरात के सन्त कवियों ने बहुत यथार्थ रूप में किया है। इसी प्रकार सन्तों ने अपनी वाणी में उपासना के उस असत्य मार्ग की ओर भी संकेत किया है जो आडम्बर पूर्ण एव अन्ध श्रद्धापूर्ण होता है और जिसका अनुसरण कर मनुष्य कभी भी ब्रह्म को प्राप्ति नही कर सकता।

जब तक तन और मन मे एकता स्थापित होती नही तब तक जीव सदा दुखी रहता है और तब तक मन परमात्मा से नहीं मिल सकता। संसार में मनुष्य का मन चञ्चल रहता है। मन दसों दिशाओं में भटकता रहता है, कोटि उपाय करने पर भी स्थिर नही रहता, केवल राम नाम ही उसे रोकने में समर्थ है। सन्त दादूदयाल ने यह बात स्पष्ट रूप से समझाई है।

तन में मन आवे नहीं चंचल चहुं दिस जाइ।
दादू मेरा जिव दुखी रहै न राम समाइ॥
कोटि जतन करि करि मुये, यहु मन दस दिसि जाइ।
राम नाम रोक्या रहे, नांहि आन उपाय॥

दादू वाणी—मन को अंग—८—९

मनुष्य की अन्ध श्रद्धा की ओर सकेत करते हुए दादू ने लिखा है कि लोग पत्थर को धोकर पीते है और पत्थर की पूजा करते हैं। ऐसे लोग अन्त समय में भी पत्थर ही हो जाते है अर्थात् मुक्ति लाभ से वञ्चित रहते है। मूर्ति पूजा पर दादू का व्यंग दृष्टव्य है। इसी प्रकार तीर्थ आदि की निरर्थकता के प्रति संकेत करते हुए दादू ने लिखा है कि ईश्वर को ढूँढ़ने के लिए कोई द्वारिका की ओर दौड़ता है, कोई काशी जाता है तो कोई मथुरा। किन्तु ईश्वर तो हृदय में ही रहता है इस तथ्य को सब भूल जाते है।

पत्थर पीवें धोइ करि, पत्थर पूजें प्राण।
अन्तिकाल पत्थर भये, बहु बूड़े इहि ग्यान॥
दादू केई दौड़े द्वारिका केई कासी जांहि।
केई मथुरा को चले, साहिब घट ही मांहि॥

दादूवाणी—सांच को अंग २९-३१

जगत के लोग अज्ञान–वश नीद में सोये रहते है कोई जागृत नही रहता। आगे पीछे चारों तरफ जब देखते है तो प्रत्यय ही प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है। दादू ने अज्ञानता वश जीव को होने वाली हानि की ओर निर्देश करते हुए लिखा है कि काल रूपी कीट इस तन रूपी काष्ठ को खाता रहता है और दिन जीव की आयुष्य कम होती है।

सब जग सूता नींद भरि, जागै नांहीं कोइ।
आगे पीछे देखिये. प्रतखि परले होइ॥
काल कीट तन काठ को, जुरा जनम कूं खाइ।
दादू दिन जीव की, आव घटन्ती जाइ॥

वही-काल को अंग—४—२

अज्ञानी बुद्धिहीन मनुष्य इस संसार में सोच समझ कर पांव नही रखता। जीवन मे अनेक अयोग्य कार्य करता है। केवल ईश्वर ही उसकी रक्षा करके उसे बचा सकता है। इस प्रकार मनुष्य की दशा के सम्बन्ध में गरीबदास ने अपना भाव प्रकट किया है।

जीव आयानी अकलिबिन, पांव धरे नहिं थोगि।
रख्या बिन उबरै नहीं, बरते बहुत अजोगि॥

गरीबदासजी की वाणी—साखी—५

भक्ति विहीन मनुष्य संसार में भटकते रहते है। उनकी दशा संसार में राह भूले व्यक्ति की तरह होती है। सन्त रज्जब जी ने मनुष्य की ऐसी विरुद्ध गति को समझते हुए लिखा है कि वह जाना चाहता है पश्चिम में और जाता पूरब को है। हृदय में तनिक भी विचार नही करता उसकी दृष्टि स्वर्ग की ओर रहती है किन्तु जाता है नरक में ही, ऐसा वह मूर्ख गँवार है। विष खाकर जीना चाहता है परन्तु उसे मरते देर नहीं लगती। समुद्र के किनारे पत्थर पर जो बैठे हैं वे सब डूबने वाले हैं। इस प्रकार मनुष्य की आकांक्षा भले ही ऊँची क्यो न हो उसके कर्म निम्न कोटि के होते हैं। रज्जबजी ने हीन मनुष्यों के जीवन की यथार्थ दशा का चित्रण करते हुए कहा है कि बिना नाम स्मरण के ऐसे सांसारिक मनुष्य का उद्धार कभी हो नही सकता। क्षणिक सुख के लोभ में दीर्घ दुःख को प्राप्त करता है और काल की धारा में बह जाता है।

भजन बिन भूलि पर्‌यो संसार।
चाहे पच्छिम जात पूरब दिग, हिरदे नहीं विचार॥

वाछें ऊरध अरध सुं लागे, मूले भुगध गंवार।
खाइ हलाहल जीयो चाहे, मरत न लागे बार॥
बैठे सिला समुद्र तिरन कूं, सो सब बूडनहार।
नाम बिना नाहीं निसतारा, कबहुं न पहुंचे पार॥
सुख रे काज घसे दीरघ दुख, बहे काल की धार।
जन रज्जब यूं जगत बिगुच्यो इत्त माया की लार॥

—रज्जबजी की वानी—पद—१५

स्वामी सुन्दरदास जी ने मनुष्य की विपरीत बुद्धि पर तरस खाते हुए लिखा है कि संसार में मनुष्य आठों प्रहर विषय रस में डूबा रहता है, अपना तन, मन और धन स्त्री पर न्योछावर कर देता है। उसे विषय ही प्रिय लगते हैं। वृद्धावस्था में जब हाथ पैर काँपने लगते हैं, जीवन मृतप्राय सा हो जाता है तब भी मन के अहंकार कर छोड़ नहीं सकता ऐसी मनुष्य की विपरीत बुद्धि होती है।

आठहुं पहर विषे रस भीनां।
तन मन धन जुवती कों दीनां॥
ऐसी विषया लागी प्यारी।
अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥
उठि न सके कंपै कर चरना।
या जीवन तें नीको मरना॥
तोहूं मन में अति अहङ्कारी।
अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥

—सुन्दर ग्रन्थावली
तर्क चितावनी ७—२१

गुजराती कवि अखा ने अज्ञानी जीव की दशा का वर्णन अपने अनेक पदों में किया है। मनुष्य संसार के सुखों को देखकर भोग के लिए लालायित होता है। दैहिक सुखों को सत्य मान कर कर्म के लड्डू नित्य खाया करता है। जड़ जीवन के कर्म उसे प्रिय लगते हैं और वास्तविक रहस्य को वह कभी समझ नहीं सकता। बारम्बार इन कर्मों का आचरण वह करता है किन्तु उसे इस देह से मुक्ति नहीं मिलती। संसार के अपार सुखों को देखकर मनुष्य उन्हें ईश्वर की कृपा मान बैठता है। उनसे होने वाली हानि को समझता नहीं। ऐसा वह मनुष्य ईश्वर को भूल गया है।

ते भोग देखी भूर थाये लडावा इन्द्रि विषे ,
संसार नां सुख सत्य जाणी, कर्म-मोदक नित्य चले ।।
कर्म जड़ने कर्म बहालां, मर्म न समझे ब्रह्मनो ,
फरी फरी ते आचरे, पण टले नहीं देह चर्म नो ।
संसारना सुख अधिक देखी, कृपा माने इश्वरी ,
अंतरमांहे नुं ज्यान न जाणे, प्राणपति गयो बिसरी ।

अखे गीता—कडवुं—४

आत्म ज्ञान से बिमुख मानव अपने जन्म को तथा अपनी आयु को व्यर्थ ही गवां रहा है । अहं की गठरी लेकर ससार कूप में डूबता जाता है । अखान ऐसे अज्ञानी मनुष्य को चेतावनी देते हुए कहा है कि तू अपने झूठे ज्ञान को छोड़ दे । अधर्म और अन्याय करके मुक्ति के शुद्ध मार्ग को तू नहीं समझ सकता । मंदमति मनुष्य ने अपने आप का बहुत नाश किया है ।

आत्मज्ञान बिना रे भूले आयुष्य गयें रे ,
मूढ़मति शी करे फुला रे फुल ।
बाल्य तारुं डापण के बुड्यो भवकूपमां रे ,
करी घणो अन्याय अधम अपार ,
मुक्ति नो मारग रे शुद्धो समझ्यो नहिं रे ,
मंदमति घणो थयो रे लुवार ।।

अखानी वाणी—पद—१२७

मानव देह वस्तुत: बड़ी अमूल्य वस्तु है । किन्तु जीव आलस्य और अज्ञानता के कारण उसे व्यर्थ खो देता है । अखा ने इस तथ्य की ओर मनुष्य को सचेत करते हुए लिखा है कि तुम्हें मानव देह प्राप्त करने का सुअवसर मिला है । किन्तु तुम आलस्य में सोये हुए हो । माया की बाजी तो मिथ्या है । मोहमाया के सुख के मोह में कोई सदा के लिये ठहर नहीं सका है । बड़े बड़े लोग भी मार्ग के बीच में लूटे गये हैं । अर्थात् मोहमाया में फंसे हुए लोगों का विना मुक्ति प्राप्त किये ही अंत हो गया है । और इस प्रकार इस जीवन के मार्ग में कई लोग दु:खी हो गये हैं ।

अवसर जाय छे रे मनुषादेह नो मोंघो ,
आलस करीने शुं अज्ञानी ऊघों ।
मिथ्या बजी रे माया केरी गुठी ,
मोटा मोटा वाया रे अधवच लीध लुटी।

कोये नव ठरीया रे माया सुखना मोहनां,
थई गया दुःखिया रे घणुं खडखडता रोहमां।

अखानी वाणी—पद—१४२

गुजराती कवि नरहरि ने गीता के आधार पर रची गयी अपनी पद्य रचना में संसार को वृक्ष का सवक दिया है। संसार को वृक्ष के रूप में चित्रित कर राग-द्वेष, विषय-वासना, कर्म-बन्धन इत्यादि को मनुष्य पर प्रभाव दिखलाया है। नरहरि के कथनानुसार संसार एक ऐसा वृक्ष है जिसके अंकुर विष विकार हैं, वासना मूल है, कर्म उसके चारों तरफ बनाई हुई बाड़ है, राग-द्वेष उसकी नीचे की शाखायें हैं तथा कर्म फल ऊपर की शाखायें। सत्व, रज, तम—इत्यादि गुण उसके स्थल हैं। इस संसार वृक्ष में मनुष्य परस्पर स्नेह के बन्धन से बँधा हुआ है।

विषय तेहना अंकुर मिश्र, मूल तेहना वासना विचित्र,
कर्म रुपिणी वाड़ जेहने, संसार वृक्ष जाणो तेहने।
राग द्वेष अधःशाखा घणी, कर्म फल उर्ध्वशाखा ते तणी।
ते सत्व रज तम स्थल थाय, विषय तेहना अंकुर कहेवाय।
विविध वासना ते मूल अपार, एम संसार वृक्ष पाम्यो विस्तार,
कर्म बन्धन तेने घणां, मनुष्य लोक विषे स्नेह तणां॥

भगवद्गीता—नरहरि

ज्ञानी कवि बूटियाने भी संसार अंधपथ का अनुसरण कर वाद-विवाद करने वाले तथा अपने विभिन्न मत और पंथ चलाने वाले लोगों की ओर संकेत करते हुए कहा है कि सत्य को समझे बिना लोग नाना पंथ के मत-मतान्तरों में अन्धे बने हुए हैं। वादविवाद करने से हरि नहीं मिलता। ऐसे मनुष्य मन मेरु को पकडने का प्रयत्न करते हैं। लेकिन उनके दुर्बल पांव डगमगाते हैं।

जात जाण्या विना मत पंथ बहु थया,
अटको रह्यां आंधलों आप भूल्यां,
वादविवादमां हरि न आवे हाथ मां,
मन मेरु झालवा जाय पण पाय लुला॥

—बूटिया के पद

सारांश यह कि राजस्थानी एवं गुजराती संतों ने अपनी वाणी में भिन्न-भिन्न विषयों पर अपने भावों की अभिव्यक्ति की है। इनकी रचनाओं में भावपक्ष की दृष्टि

से देखने पर हमें इन संतों के व्यापक अनुभव तथा उनकी अद्‌भुत सूझ का परिचय मिलता है। संत मूलतः ईश्वर के उपासक एवं साधक थे। इसलिये इनके भाव वास्तव में बड़े मार्मिक एवं हृदय स्पर्शी लगते है। इसके अतिरिक्त विषय एवं भावों के चयन की दृष्टि से राजस्थान एवं गुजरात के भक्त तथा संत कवियों में समानता भी बहुतायत से पायी जाती है।

कला पक्ष

भाषा—

राजस्थान एवं गुजरात के संत-भक्ति कवियों में निकट सम्बन्ध स्थापित करने वाला तत्व उनके काव्य-साहित्य की भाषा है। यहां के संत एवं भक्त कवियों के काव्य की भाषा सामान्यतः बोलचाल की भाषा रही है। उसमें सरलता एवं स्वाभाविकता का गुण विशेष रहता है। भक्ति भाव को तथा आत्मानुभव को व्यक्त करने के उद्‌देश्य से रचे पदों में शब्दाडंबर का नितांत अभाव होता है। मध्यकालीन भक्त-संत कवियों की रचनाओं में प्रयुक्त भाषा के हमें भिन्न-भिन्न स्वरूप दृष्टिगोचर होते है। राजस्थान के कवियों के काव्य साहित्य में हमें हिन्दी, राजस्थानी, व्रज भाषा एवं गुजराती के स्वरूप देखने मिलते को हैं। जब कि गुजराती कवियों की रचनाओं में मध्यकालीन, गुजराती, गुजराती तथा व्रजभाषा के प्रभाव वाले हिन्दी भाषा के स्वरूप के दर्शन होते हैं। इस प्रकार भाषा के प्रयोग के विचार से इन कवियों में अन्तर कम और साम्य अधिक मिलता है। इसके अतिरिक्त कुछ कवियों के ऐसे पद भी प्राप्त होते हैं, जिनमें हिन्दी एवं गुजराती के मिश्रित स्वरूप का प्रयोग हुआ है। यहां हम दोनों भाषा के कवियों की रचनाओं में से कतिपय पंक्तियां लेकर उन पर विचार करेंगे।

राजस्थान के कवि

राजस्थानी भाषा:—

राजस्थान के भक्त तथा संत कवियों में मीरां, ईसरदास, दादू, वषनाजी, सुन्दरदास इत्यादि कवियों ने राजस्थानी भाषा में पद रचना की है।

मीरां की भाषा सरल बोल चाल की राजस्थानी भाषा है। मीरां के पदों की भाषा में स्वाभाविकता के साथ साथ माधुर्य गुण विशेष होता है।

१—री म्हां बैठ्यां जागा; जगत सब सोवां।
विरहण बैठ्यो रङ्ग महलमां णेणा लड़यां पोवां॥
— मीरांबाई की पदावली—८६

२—मन बसे तेंम तूं मांहरे मो मन वसियो महमहण ।

—ईसरदास

ईसरदास की उपरोक्त पंक्ति में 'तेज तूं'' प्रयोग उनकी भाषा पर गुजराती का प्रभाव स्पष्ट करता है ।

३—सर्व चन्द्र कूँ सुमिरतां, परमचन्द परचे भया ।

—तत्ववेता ।

४—सोही वाण सुवाण, भजे हरि नाम निरन्तर ।

—अल्लूजी

५—दादू होणा था सो है रह्या, और न होवे जाइ ।
लेणा था सो ले रहे और न लीया जाइ ।।

दादूवाणी—बेंवास का अंग—६

६—काष्ठ मांहे जैसे पावक, सब ठां ऐसे जाति पिछानि ।

गरीबदास की वाणी—पद—१

७—म्हारो मन्दिर सूनो राम बिन, विरहिण नींद न आवे रे ।

—रज्जबजी की वाणी पद—५

८—कुणका बीणत क्युं फिरे, पूरी रासि बिहाइ ।
कहि बषना तिहि दास को,करहूँ काल न खाइ ।।

—बषनाजी की वाणी—साखी—१२

९—बकते रहे जीभ नहिं मारे, मरिहूँ न जाइ खाटली तोरे ।
तें खखाटि सब ठौरे बिगारी.अइया मनुवहूँ बूझि तुम्हारी ।

—सुन्दरदास—तर्क चितावनी—१९

सुन्दरदास की भाषा पर ब्रजभाषा का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है । इन्होंने अधिकांश रचनाएं राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा मे ही की है ।

ब्रजभाषा —

भक्त काल में सूरदास तथा अष्ट छाप के भक्त कवियों के काव्य का प्रसार चतुर्दिक भक्त समुदाय में हुआ था । स्वाभाविक है कि उनके प्रभाव से राजस्थान तथा गुजरात के भक्त-संत कवियों ने भी ब्रज भाषा में अपने काव्य का प्रणयन किया ।

राजस्थान के कवियों में ब्रजभाषा का प्रयोग मीरां, कृष्णदास, अग्रदास तथा सुन्दरदास ने सबसे अधिक किया है।

१—कोई स्याम मनोहर ल्योरी, सिर धरे मटकिया डोले।
दधि को नांव बिसर गई ग्वालन हरिल्यो, हरिल्यो बोले॥
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, तेरी भई बिन मोले।
कृष्ण रूप छकी है ग्वालिन, औरहि औरे बोले॥

—मीरांबाई की पदावली—१७८

२—आवत लाल गोवर्द्धन धारी।
आलस नैन सरस रस रंगिन प्रिया प्रेम नूतन अनुहारी॥

—कृष्णदास।

३—रघुवर लागत है मोहि प्यारो।
अवधपुरी सरयू तट विहरे, दशरथ प्राण पियारो।

—अग्रदास।

४—प्रचुर भयो तिहुं लोक, गीत गोविन्द उजागट।

—नाभादास।

५—कर्म-कलंकहि काटत है सब, सुद्ध करें पुनि कंचन तैसो।
सुन्दर वस्तु विचारत हैं वित संतनि को जु प्रभाव है ऐसो॥

—सुन्दरदास—साधु को अंग—१

खड़ी बोली:—

राजस्थान के दादू, गरीबदास, रज्जबजी, बषनाजी, तथा सुन्दरदास प्रभृति संत कवियों ने अपनी रचनाओं में खड़ी बोली, विशेषत: साधु-भाषा का प्रयोग किया है।

१—दादू काया महल में निमाज गुजारूं, तहं और न आवन पावै।
मन मनके करि तसबी फेरूं, तब साहिब के मन भावे॥

—दादूवाणी—साध को अंग—१२

२—देह रहे संसार में, जीव राम के पास।
दादू कुछ व्यापे नहीं, काल झाल दुख त्रास॥

—दादूवाणी—सजीवन को अंग—२

३—काया माया में रहें, लंघे कोई एक ।
आदि अन्तलों मांड में, केते हुए अनेक ॥

—गरीबदास—साखी—११

४—मन हस्ती मैंमन्त सिर गुरु महावत होइ ।
रज्जब रज डारे नहीं, करे अनीति न कोइ ॥

रज्जबजी—साखी—१८

५—सब आया उस एक में, दही मही घृत सूध ।
बषना वाके क्या रह्या, जब दूहि पीया दूध ॥

—बषनाजी—साखी—११

६—एक वचन है पत्र सम, एक वचन है फूल ।
एक वचन है फल समा, समझि देख मति भूल ॥

—सुन्दरदास–वेद विचार–३

गुजराती प्रयोग:—

राजस्थानी कवियों में से मीरां ने अनेक पद गुजराती में रचे हैं। यहां तक कि मीरां का गुजराती साहित्य में भी गुजराती कवयित्री के रूप में प्रतिष्ठित स्थान है। ईसरदास ने भी अनेक पदों की रचना गुजराती में की है। इसके अतिरिक्त दादू की वाणी में भी गुजराती के प्रयोग कहीं-कहीं दृष्टिगोचर होते हैं।

१—भुज अबला ने मोटी नीरांत थई रे।
छाम लो घरेणुं मारे सांचु रे॥
वाली घडापुं विठ्ठल कर केरी,
हार हरी नो मारे हैरे रे।
चित्त माला चतुरभुज चुंडलो,
शिद सोनी घरे जइये रे॥

—मीरांबाई की पदावली—१४१

२—काचे ते तांतणे हरिजीए बांधी, जेम खेंचे तेम तेमनी रे।
मीरां के प्रभु गिरधरनागर शामली सूरत शुभ एमनीरे॥

—मीरांबाई की पदावली–१७३

३—लागू हूँ पहली लुले, पीतांबर गुरु पाय।
भेद महारस भागवत, प्रामूं जास पसाय ॥

—ईसरदास—हरिरस

४—वाहला हूँ जाणू जे रंग भरि रमिये ,
मारो नाथ निमष नहिं मेलुं रे।
अन्तरजामी नाहन आवे ते बिन आव्यो छेलो रे।
वाहला सेज अमारी एकलड़ी रे, तहं तुमने केम न पामूं रे।
आ दत्त अमारे पूरवलो रे, ते तो आव्यो सामो रे॥

—दादू वाणी—पद—१६

गुजरात के कवि

मध्यकालीन गुजराती:—

गुजरात के भक्त-संत कवियों की रचनाओं में भाषा का जो स्वरूप मिलता है उसे श्री शास्त्री, दिवेटिया प्रभृति विद्वानों ने मध्यकालीन अथवा जूनी गुजराती नाम दिया है। श्री के० का० शास्त्री ने मध्यकालीन गुजराती को भी उसमें प्रयुक्त शब्दों के स्वरूपों की विभिन्नता के आधार पर चार भूमिकाओं में विभक्त किया है। इनमें से पहली भूमि का की भाषा प्राचीन गुजराती से अधिक निकट है। जिसमें अपभ्रंश के शब्दों की प्रचुरता पाई जाती है। १५वीं से १७वीं शती के कवियों की भाषा में मध्यकालीन गुजराती की चारों भूमिकाओं के रूप मिलते हैं। मुख्यत: आख्यान-कारों की रचनाओं की भाषा के इस स्वरूप के दर्शन होते हैं किन्तु नरसिंह, प्रेमानन्द, भालण तथा अखा की भाषा में गुजराती भाषा का परिष्कृत रूप भी मिलता है जो अर्वाचीन भाषा के अधिक निकट है। गुजराती कवियों में अखा की भाषा अन्य कवियों की भाषा से अलग पड़ जाती है। उसकी भाषा को कूट भाषा का नाम दिया गया है अर्थात् क्लिष्ट शब्द प्रयोग उसमें अधिक पाये जाते हैं। परन्तु यह बात सत्य है कि अखा के पदों में अर्थ गांभीर्य भी बहुत होता है। अखा की कूट भाषा के सम्बन्ध में श्री उमाशंकर जोषी का मन्तव्य है कि उसकी रचनाओं की प्राप्त हस्त-प्रतियों के अशुद्ध पाठ के कारण यह क्लिष्टता आ गई है[1]। यदि गंभीरतापूर्वक उनका शुद्ध पाठ किया जाय तो अनेक कूट लगने वाले पद सरल हो जायेंगे। वस्तुत: अधिक से अधिक गभीर भावों को सरल शब्दों में व्यक्त करने की कला अखा में थी। मध्यकालीन गुजराती में तत्सम् शब्दों के प्रयोग ही विशेष मिलते है। इसके

१—अखो एक अध्ययन—श्री उमाशंकर जोशी पृ०—२०८

अतिरिक्त भक्त कवियों की रचनाओं पर ब्रज भाषा का तथा नरसिंह की भाषा पर किंचित मराठी का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। गुजराती कवियों में भालण, अखा, प्राणनाथ, आनन्द घन इत्यादि कवियों ब्रज भाषा मिश्रित हिन्दी में भी पद रचे हैं। गुजराती कवियों की भाषा के विभिन्न स्वरूपों के उदाहरणार्थ यहां कुछ पंक्तियां प्रस्तुत की जाती है।

मध्यकालीन गुजराती—

१—कमलपणि कमलवास हरि, मुझ मनि भामिनि-भयहरणा,
मानिनि मयण इम उच्चारइ, हरिलंकी हिव हरिशरणा।

—मयण

कवि मयण की भाषा मध्यकालीन गुजराती की पहली और दूसरी भूमिका की भाषा कही गई है।

२—कहि नरहरि रचि राप्यों ए अर्थ ज्ञान गीता तणो।
परमपद तो सुधि पामो जो ए रास परब्रह्म भणो॥

नरहरि—ज्ञानगीता

नरहरि की इस पद में भाषा मध्य गुजराती की ४ थी भूमिका की भाषा है।

३—यम बधिर न जाणे नादसुख स्वादनों रे रसना वीना।
त्यम गुरु विना हरी नव्य मले यम भोग न पामें निर्धना॥

अणानी वाणी।

४—पुष्प आप्युं हुं ने नाथ लक्ष्मी तणे, मांचु सुमन में रे द्रष्ट दीठुं।
तन सेवा तणां नाम कीरतन करो, नरसहींया ने मन लाग्युं मीठुं।

—नरसिंह मेहता।

५—राजा थोने वधाई, प्रभु प्रकटीआ घरमांह।
ततक्षण तंबालुं वाग्यां, कांशा मे पडीआल॥

भालण—रामचरित्र

गुजराती:—

यहां गुजराती से तात्पर्य मध्यकालीन कवियों की भाषा के उस स्वरूप से है जो अर्वाचीन गुजराती के अधिक निकट है और जिस पर प्राचीन भाषा का प्रभाव कम दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार के पदों में तत्सम शब्दावली का विशेष प्रयोग होता है।

१—महाराज लाज निज दासनी, वधारो छो श्री हरी ,
पछि दरिद्र खोवा दासनां, सौम्य दृष्टि श्यामे करी ।

प्रेमानन्द—सुदामा चरित्र ।

२—धन्य तुं धन्य तुं, राम रणछोडजी दीन जाणी मने मान दीधुं,
नहिं मुक्त जोगते भोग पहोंचाडिया अज अंबरीष थी अधिक कीधुं,

नरसिंह मेहता—पद—६

३—एवा दशरथ ना बाल, लाल पारणे फुले ,
श्याम स्वरूप देखी ने, मारूं मन भूले ।

भालण—श्री रामचरित्र—पद—५

४—अखा हरि जो मलनारा थाय, न गणे ऊँच नीच रंक राय ।
कुल अधिकार अध्ययन चातुरी, पापी मूर्ख त्यां न जुवे हरि ।

अखो—धीरज अंग

ब्रजभाषा हिन्दीः—

गुजराती भक्त-संत कवियों में से भालण, केशवदास तथा अखा इत्यादि कवियों ने ब्रजभाषा अथवा ब्रजभाषा मिश्रित हिन्दी में भी काव्य रचना की है ।

१—ब्रज सुख समरत श्याम
पनकुटी सो बीसरत नाहीं नाही न भावत सुन्दर धाम ।

\+ + + +

मोरपिच्छ गुंजाफल ले ले, वेख बनावत रुचिर ललाम ,
भालन प्रभु विधाता की गति, चरित्र तुमारे सब बाम ।

—भालण ।

२—मत कहो मात रीसानी, बोले यह अवराध हमारो ,
घर में रहे सदा गुन सागर, कोमल कुंवर तम्हारो ।

—केशवदास कायस्थ
कृष्ण क्रीड़ाकाव्य-सर्ग-१४

३—पीवत प्याला विसर गयो, परम तत्व तव लीनारे हो ,
पुरण ब्रह्म अखंड अविनाशी, सोहम ब्रह्म जेणे जाण्या रे हो ।

—बूटियो

ज्ञानी कवि बूटियो ने हिन्दी गुजराती के मिश्र स्वरूप का प्रयोग इस पद में किया है।

४—तज विरोध समान कोन जाने, सकल पुरान,
त्यागि बिना विरोध के बांचत विष्णु पुरान,
सो मानत है विष्णु सोइ, ब्रह्म न दूजो आन।

लखानी वाणी—मनहर पद

५—सुनो रे सत के वनजारे, एक बात कहूँ समझाई।
या फंदबाजी रची माया की, तामे सब कोई रह्या उरझाई॥
आंटी आने के फांसी लगाइ, वे भी उलटियें दई उलटाई।
बंध पर बंध दिये विध-विध के सो खोली किनहूँ न जाई॥

—स्वामी प्राणनाथ—कीर्तन-२

६—अगम पियाला पीयो मतवाला, चिन्ही अध्यातम पासा,
आनन्दघन चेतन ह्वै खेले, देखे लोक तमासा॥

आनन्द पद संग्रह—पद-२८-४

मराठी प्रभाव:—

गुजराती भक्त कवियों में से नरसिंह, भालण तथा भीम की भाषा पर कहीं कहीं मराठी का प्रभाव भी परिलक्षित होता है।

१—नरसिंहाचो स्वामी सुखसागर पोटियो, विरहनी वेदना त्यारे टाली

शृङ्गार के पद—१०

२—नरसिंहा चो स्वामी भले मलियो, भवसागर उतरीए रे।

वही—१२

३—नरसइवाहलाजीनी संगे रमतां, रस वाध्यो चटके।

वही—१५

४—परम भगति लीणी धन्य ते गोलाणी नारी।
भीम वई स्वामी श्री कृष्णई संसार सागर तारी॥

भीम—रासक्रीडा प्रसंग

उपरोक्त पंक्तियों में नरसिंह तथा भीम नाम के अन्त में नाम "का" के स्थान पर "चा" अथवा "चो" प्रत्यय मराठी का प्रभाव लक्षित करता है।

छंद-योजना

हमारे आलोच्य काल के गुजराती कवियों की रचनाएं मुख्यत: तीन प्रकार की शैलियों मे रचित मिलती है। वे क्रमश: आख्यान काव्य पद तथा मुक्तक है। प्रेमानन्द, भालण, भीम प्रभृति कवियों ने आख्यानों की रचना की है। राजस्थान के मध्यकालीन कवियों के काव्य भी तीन शैलियों में लिखे गये है जो क्रमश: चरित्र काव्य, पद एवं मुक्तक है। राजस्थान के कवियो में अग्रदास, जनगोपाल, ईसरदास, सायोंजी इत्यादि कवियो के रचित चरित्र काव्य प्राप्त होते है। गुजराती कवियो मे नरसिंह,प्रेमानन्द,भालण,भीम अखा,नरहरि गोपाल आदि ने तथा राजस्थानी कवियों मे मीरां, गरीबदास, सुन्दरदास, कृष्णदास आदि ने समान रूप से पद एव मुक्तक शैली मे काव्य रचना की है। वस्तुत: उस युग मे कथात्मक रचना के लिए आख्यान-शैली प्रसिद्ध थी, और भक्ति तथा अध्यात्मिक भावों की अभिव्यक्ति के लिये पद एवं मुक्तक शैली ही अधिक उपयुक्त थी। अधिकांश भक्त एव संत अपने उद्गार मधुर राग-रागनियां मे गा-गा कर प्रकट करते थे। इसीलिए उनकी रचनाएं गेय पदो मे अधिक हुई हैं। गुजराती मे नरसिंह तथा राजस्थानी में मीरां के पद संगीतात्मका की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट कहे जा सकते है। आख्यान पद तथा मुक्तक शैली के काव्यों के अन्तर्गत प्रत्येक मे विभिन्न छन्दों का प्रयोग कवियो ने किये है।

आख्यान शैली:—

आख्यान की रचना "कडवाबद्ध" होती है। कडवा को छन्द-योजना ही एक प्रकार कह सकते है। इसमे सामान्यत: तीन विभाग होते हैं। प्रारम्भ मे दो पक्तियों का मुखबन्ध होता है तदनन्तर "ढाल" और अन्त में दो पंक्तियो का "वलण"। कही कही केवल "ढाल" और "वलण" ही होते है। प्रेमानन्द की रचना इसी प्रकार की है। भालण ने "कडवु" नाम न देकर उसे 'पद" ही शीर्षक दिया है। राजस्थान के कवियो ने अधिकांशत: अपनी रचनाओ ने कवित्त और दोहा—छन्द का प्रयोग किया है। गुजराती के "मुख बन्ध" ढाल और वलण के उदाहरण निम्नानुसार है।

कडवुं का मुखबंध:—

> शुकजी भाखे हरिगुण ग्राम जी, दीठुं सुन्दर कंचन धाम जी,
> मेडी अटारी अद्भुत काम जी, ऋषि विचारे शुं भूल्यो ठाम जी।

ढालः—ठाम भूल्यो पण ग्राम निश्चे धाम कोई धनवन्तनां,
ए भुवनमां वसता हशे, जेणे सेव्यां चरण भगवंतना ॥
वलणः-रुपे बीजा कृष्ण जाणे, जरा गई ने जोबन आवियुं,
वेलाडिये वलग्यां दम्पती, रति काम जोडूं लजावियुं ।

प्रेमानन्द—सुदामा चरित्र—कडवुं-१३

"ढाल" में एक से अधिक अनेक पद होते हैं जब कि मुखबन्ध तथा "वलण" में एक एक पद ही होते है।

पद शैलीः—

गुजराती कवियों में नरसिंह तथा भालण ने एवं राजस्थानी कवियों में मीरां, कृष्णदास, अग्रदास, दादू, सुन्दरदास आदि कवियों ने अपनी अधिकांश रचनाए पद शैली मे की हैं। पद के अन्तर्गत विभिन्न छंदों का प्रयोग इन्होंने किया है। पद रचना का मुख्य लक्षण उसकी गेयता है, इसीलिये पद की प्रथम पंक्ति अथवा प्रथम दो पंक्तियाँ "ध्रुवा" अथवा "टेक" के रूप में रखी जाती है जिनको प्रति दो पंक्तियों के अंत में दुहराया जाता है। "पद" रचना में अधिकांश मात्रिक छन्दों के ही प्रयोग हुए है। मीरां के पदों मे विभिन्न छन्दों का मिश्रित रूप कहीं-कहीं मिलता है। राजस्थान एवं गुजरात के कवियों के द्वारा प्रयुक्त प्रमुख छन्दों के उदाहरण इस प्रकार है :—

सार छंद :—

इस छन्द में १६ और १२ के विराम मे कुल २८ मात्राएं होतीं हैं तथा अन्त में दो गुरु तथा कभी कभी एक या तीन गुरु भी आते है।

१—दरस बिना मोहि कछु न सुहावे, तलफ तलफ मर जानी।
मीरां तो चरणन की चेरी, सुन लीजे सुखदानी ॥

मीरां—पदावली—१३०

२—साध संग औ रामभजन विन, काल निरन्तर लूटे।
मल सेती जो मल को धोवे, सो मल कैसे छूटे ॥

—दरिया साहब (मारवाड वाले)

३—जिनके आन भरोसो नाहीं, भजहिं निरंजन देवा

—स्वामी सुन्दरदास

४—अहनिस सदा एक रस लाग्या, दिया दरीबे डेरा।
कुल मरजाद मैंड सब त्यागी, बैठा माठी नेरा।।

—रज्जब जी।

५—*जागी जागी जागी हुं तो, हरि मुख जोया जागी रे,*
भागी भागी भागी मारा, भवनी भावट भागी रे।

—नरसिंह मेहता।

यहां अन्त में रे का प्रयोग आवश्यकता से अधिक है किन्तु वास्तव में गाने की सुविधा से ही वह प्राय: लगाया जाता है।

६—भामणडां मावडी लइने, लइ चाल्या वसुदेव रे।
भालण प्रभु रघुनाथ सूक्या, जशोदा घेर ततखेवरे।।

—भालण—दशम स्कन्ध

ताटक छंद:—

इस छन्द में १६ और १४ के विराम से ३० मात्राएं होती हैं। अन्त मे तीन गुरु अथवा कभी एक गुरु भी होता है।

१—चात्रग स्वाति बूंदमन मांही, पीव पीव उकलांणे हो।
सब जग कूड़ो कंटक दुनिया, दरध न कोइ पिछाणे हो।।

—मीरा की पदावली—७२

२—मूकाव्यो वैष मात ताते, बालक मूक्यां खोलरे।
वे वरसे वालकां ते माताने मलीयां टोले रे।।

—प्रेमानन्द—नलाख्यान।

३—म्हारे मन्दिर सूनो राम बिन, बिरहिण नींद न आवे रे।
पर-उगारी नर मिले, कोइ गोविन्द आन मिलावें रे।।

—रज्जब जी की वली।

विष्णु पद छंद:—

इस छन्द में १६ एवं १० के विराम से कुल २६ मात्राएं होती हैं तथा अन्त में गुरु वर्ण आता है।

१—मोसागर ममोधारा बूड्या, थारी भरण लह्यां।
म्हारे अवगुण पार अपारा थें बिण कूण सह्यां।।

—मीरां की पदावली—१३८

२—आजनो मांडवडो मारो, मोगरडे छांयो ,
राधा जी ने संगे वहालो, रमवाने आयो ।

—नरसिंह—श्रृंगार—पद—८६

३—सोनानी सांकलीए मुने, बांधी रे ताणी ।
मनडानी वातोरे पेले, मोहनिये वाणी ।।

—नरसिंह—श्रृंगार पद—२८

४—क्षण एक पडखोजी मनमोहन लइ उत्संग घरुं .
उमराई जाशे महीमारुं ए नवनीत हरुं ।

—भालण—दशमस्कंध

५—नैनभये तो कौन काम के, नैक न सूझत हैं रे ।
सब में व्यापक अंतरजामी, ताहि न बूझत हैं रे ।।

—स्वामी सुन्दर दास

यहां "रे" का प्रयोग गाने की सुविधा के लिये ही रखा गया होगा ।

उपमान छंद:—

इस छन्द में १३ एवं १० के विराम से कुल २३ मात्राएं होती है तथा अंत में दो गुरु आते हैं ।

१—सावण में झड़ लागियौ, सखि तीजों खेलैं हो ।
भादवे नदिया वहै, दूरी जिन मेलैं हो ।।

—मीरां की पदावली—११५

यहां पर उपरोक्त पद में 'हों' का प्रयोग भी गेयता के लिये ही हुआ है ।

२—जशोदानर जोवन उभा, जमनाना तीरे ।
मोरली वजाडे मोहन मधूरी धीरे ।।

—नरसिंह श्रृंगारना पद—२६

समान सवैया:—

इस छन्द में १६ एवं १६ के विराम से ३२ मात्राएं हैं और अन्त में गुरु लघु लघु होते हैं ।

१—तेरे कारण हम त्यागे, वान पान पै मन नहीं लागे ।

—मीरां की पदावली पद—१२६

२—भरम-करम की निसा बितीती, भोर भयौ रवि प्रगट दिखायो।
अति आनन्दकन्द सुख सागर, दरसन देखत नैन सिराये।।

—स्वामी सुन्दरदास

इन पक्ति में अन्तिम मात्राओं में लघु लघु के स्थान पर गुरु गुरु है

सरसी छंद:—

इसमें १६ और ११ के विराम से कुल २७ मात्राएं होती है और अन्त में गुरु और लघु आते है।

१—या भव में मै बहु दुख पायो, संसा सोग निवार।
अष्ट करम की तलब लगी है, दूर करो दुख भार।।

—मीरां की पदावली—१३५

२—मन्त्री कहे अत्या बोलग विचारी उतरशे अभिमान,
जाभाग शाने बालका कोणे आप्युं कन्यादान।

प्रेमानन्द—ओखाहरण

३—धीनकित धीनकित मृदंग बाजे, गुणका करती गान,
कनक पात्र मुक्ताभरी आप्यां, आप्यां गौ मही दान।

—भालण—श्री रामचरित

इसके अतिरिक्त नरसिंह तथा प्रेमानन्द ने झूलना छन्द का प्रयोग विशेष रूप से किया है। जिसके कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं।

झूलना छंद:—

१—हरि हरि रटण कर कठण कलि कालमां दाम बेसे नहीं काम सरशे।
भक्त आधीन छै श्याम सुन्दर सदा ते तारा कारज सिद्ध करशे।

—नरसिंह मेहता।

२—ध्यान धर हरितणुं, अल्पमति आलसु, जे थकी जन्मनां दुख जाये,
अवरधंधो करे आरथकांई नवसरे माया देखाडी ने मृयुं वहाये।।

—नरसिंह मेहता।

३—पर ब्रह्म निष्कर्ष ते पर्म क्रीडा करे, रास विलास व्यभिचार भासे,
भक्त विश्राम श्री राम करुणा निधि नाम लेतां कोटि कर्म न्हा से।।

—प्रेमानन्द

मुक्तक शैली

गुजराती तथा राजस्थानी कवियों ने, मुख्यत: संत तथा भक्त कवियों ने मुक्तक शैली में अनेक रचनायें की हैं। मुक्तक के अन्तर्गत दोनों प्रदेशों के कवियों ने विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया है। इनके द्वारा प्रयुक्त छन्दों में दोहा, साखी, कवित्त, छप्पय, मात्रिक सवैया तथा सोरठा प्रमुख हैं। इनमें से दोहा एवं साखी वास्तव में एक ही रूप हैं, उसी प्रकार कवित्त और छप्पय भी समान है। इनमें केवल नाम भेद ही पाया जाता है। इसके अतिरिक्त चौपाई एवं गाथा का प्रयोग भी कुछ कवियों ने किया है। प्रमाण के लिये संत-भक्त कवियों के द्वारा प्रयुक्त कतिपय छन्दों के उदाहरण यहाँ दिये हैं।

दोहा

गुजराती:—

१—रूप वस्तु वैराग्य नुं, सांभल कहुँ तुज तन ,
अथव्युं ग्राम विचरतां, नाम टले पुरंजन।

—अखा—अखावाणी

२—रसना ते रस भोगवे, नासिका ले छे गंध ,
नेते निहाले रूप ने, श्रवणे ते शब्द वन्ध॥

—भाणदास

३—ततक्षण त्रिकम छेदशे, दरिद्रकेरां झाड रे।
नाय पधारो द्वारिका हुं मानुं तमारो पाडरे॥

—प्रेमानन्द—सुदामा चरित्र

यहां रे तथा हुं का प्रयोग छन्द में दोष उत्पन्न करते हैं। सभवत: गाने की सुविधा के लिये उनका प्रयोग हुआ है।

राजस्थानी:—

४—पारवती कीनो प्रसन्न है, हे देखने के देव।
सुरमप दुरमप परत है सो भवकहिये मेव॥

—साँईदान

५—सुन्दर प्रभु की चाकरी, हांसी खेल न जानि।
पहले मन को हाथ करि, पीछे पतिव्रत ठानि॥

—स्वामी सुन्दरदास

६—केते पारिख जौहरी, पण्डित हयात ध्यान।
जाण्या जाइ न जाणिये, का कहि कथिये ग्यान ।।

—दादू दयाल।

चौपई छंद:—

इसमें प्रत्येक चरण में १५ मात्रा होती हैं और अन्त में गुरु लघु।

गुजराती:—

१—एक समे भूपति भगवान। सांनिधि न्यरखी सामलवांन।
रमवाने मन कीधूं राम। माया रोग स्मरी मनमांहि ।।

—संत—दशम स्कन्ध

२—को तो मोटा घर ना कुँअर, को कहै आद्य अमारुं घर।
आशा अभिमाने मर्या नर, बांका मुगट धर्या शिर पर ।।

—प्रेमानन्द—नलाख्यान

३—निगुंण नांउं फल अगम अपार संतन जीवन प्राण आधार।
सीतल छाया सुखी सरीर, चरण सरोवर निर्मल नीर ।।

—दादू दयाल।

राजस्थानी:—

४—सब सुखि की निधि आये साध, कंरम कलसे करे अपराध।
दरसन देखि किये दंगैत। अध उतरे, अंकुर-उदौत ।।

—रज्जब जी।

चौपाई छंद:—

इसमें प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ होती हैं।

गुजराती—

१—तीर्थ कोटि हरिजनने चरणे, कृपा हशे ते जाशे शरर्ण।

—अखा तीर्थअंग।

२—नेत्रे अजन आभरण सार मुखे तांदुल केरो आहार।

—प्रेमानन्द—ओखाहरण।

राजस्थानी:—

३—माता पिता वन्धव किसके रे। सुत दारा कोऊ नहिं तेरे।

—स्वामी सुन्दरदास।

४—जव जव सुरति आवती मन में, तव तव विरह अनल परजारै।

—गरीबदास।

सोरठा छन्द—

इसके ११ और १३ के विराम से २४ मात्राएं होती हैं तथा विषम चरण में तुक मिलती है।

१—सत्य सु दोइ प्रकार, येक सत्य जो वोलिये।
मिथ्या सव संसार, दूसर सत्य सुब्रह्म है।।

—स्वामी सुन्दरदास।

गुजराती में इसका प्रयोग बहुत कम हुआ है। केशवदास, भीम आदि कवियों ने कहीं कहीं किया है।

छप्पय तथा कवित्त:—

इसमें छह चरण होते हैं जिनमें से चार रोला छन्द के तथा दो उल्लाल के। रोला मे २४ मात्राएं तथा उल्लाल में २८ मात्राएँ होती हैं। गुजराती में इस छन्द का प्रयोग अखा, केशवदास, मयण तथा भीम ने किया है। राजस्थानी कवियो में सुन्दर दास तथा साईंदान तत्वेता आदि कवियों ने किया है।

गुजराती:—

१—जाणी ने जगदीश; शीश सद्गुरु ने नामी,
अवसर छे आ वार, सार श्रीपति भज स्वामी,
ते जावुं नथी दूर, उर अंतर अवलोकी,
हाल असत अहंकार, चार स्थल रह्यो ह रोकी,
चरणकमल गुरु देवनां, सेवतां साथ हरि मले,
जेम अर्कतणा उद्योतथी, अखा उपकार सेजे टले।।

—अखा—अनुभवविन्दु

राजस्थानी—

२—सदा प्रसन्न सुभाव प्रगट सर्वोपरि राजय।
तृप्त ज्ञान विज्ञान अचल कूटस्थ विराजय।।

सुख निधान सर्वज्ञ मान अपमान न जानैं ।
सारासार विवेक सकल मिथ्या भ्रम मानैं ॥
पुनि भिद्यन्ते हृदिग्रन्थि कौ, छिद्यन्ते सव संशय ।
कहि सुन्दर सो सद्‌गुरु सही, चिदानन्दघन चिन्मय ॥

—स्वामी सुन्दर दास ।

इसके अतिरिक्त गुजराती तथा राजस्थानी कवियों ने रोला, मनहर, कुंडलियाँ उल्लाल आदि छन्दों में भी काव्य रचना की है । अखा ने एक चोखरा छन्द का प्रयोग किया है जो उसके द्वारा प्रयुक्त कवित्त के समान ही है केवल आधी पंक्ति में अंत:रप्रास मिलाने के लिये दो की चार पंक्तियाँ कर दी है ।[1] इस छन्द में अखा ने हिन्दी में रचना की है । उदाहरणार्थ एक पद प्रस्तुत है ।

चोखरा:—

सदा सर्वदा नाटक माया , नाट्य चले देखे परब्रह्म राया ।
सो सब ले अपने शिर जंता, तातें न आवहीं जीव को अंता ॥

—अखा ब्रह्मलीला ।

अलंकार विधान

अलंकार काव्य की शोभा में वृद्धि करने वाला धर्म है। कवि अपनी अनुभूति सुन्दर ढंग से व्यक्त करने के लिये अलंकरों की योजना करता है । राजस्थान एवं गुजरात के संत-भक्त कवियों ने भी अपनी काव्य रचनाओं में विभिन्न अलंकरों के प्रयोग किये है। अलंकारों के विविध प्रयोग की दृष्टि से सगुण भक्त कवियों ने निर्गुण संत कवियों की तुलना में अधिक प्रयोग किये हैं । प्रमाण के लिये यहाँ हम गुजराती एवं राजस्थानी संत भक्त कवियों के काव्य साहित्य में से कुछ उदाहरण देखेंगे ।

शब्दालंकार में अनुप्राशकों

गुजराती:—

१—सांभलो भामिनी कान धरि कामिनी कवण कहावुं हुं कृपण पापी

—नरसिंह मेहता—सुदामा चरित्र

२—घुघरा घमके ढोल ढमके थाय छे संगीत गान ।

—प्रेमानन्द—ओखाहरण

१—अखो एक अध्ययन—श्री उमाशंकर जोषी पृ०—२००

३—डगभग करता डगलां भरता रमता राजकुमार।

—भालण—श्री रामचरित्र

राजस्थानी—

४—तन मन धन करि वारणें, हिरदे धरि लीजै हो।

—मीरां—मीरां पदावली—१६

५—अकह अति अगह अति वर्न नांहि होइ जी।

—स्वामी सुन्दरदास

यमक

गुजराती:—

१—मान तुं मानिनी मान मागी कहुं नहीं तजुं मन्दिर कोल दीधो

—नरसिंह मेहतो—शृंगार के पद-६

२—शून्यवादी ने शून्ये शून्ये विश्व नहीं नहीं पाप ने पुन्य।

—अखा—अखावाणी

राजस्थानी—

३—वह सुन्दर सुन्दर सुन्दर है कोई सुन्दर होइ सुपावता है।

—स्वामी सुन्दरदास

४—जिह जिह विधि रीसै हरी, सोई विधि कीजै हो।

—मीरां की पदावली—१६

अर्थालंकार के अन्तर्गत, उपमा, उत्प्रेक्षा एवं रूपक के प्रयोग विशेष पाये जाते हैं।

उपमा

राजस्थानी:—

१—स्याम विना जियडो मुरझावे जैसे जल विन वेली।

—मीरांवाई—मीरां पदावली—८०

२—घरी पलक में विनासिये, ज्यूं मछरी विन नीर।

—रज्जवजी—रज्जवजी की वाणी।

३—बिलखी सखी सहेलीरे, ज्यूं जल बिननागरवेली रे।

—बषनाजी—वाणी

गुजराती:—

४—मोरली वजाडे जेम वेधाये, मृगनाद सांभलि काने रे,
तेम वेधाई रह्युं मन मारुं, गोविन्द जी ने गाने रे॥

—नरसिंह मेहता—श्रृंगार पद—३८

५—लघु कुंजरनी सूंढ सरखा, शोभिता बे भूज।

—प्रेमानन्द—ओखा हरण।

६—नीलमणि शो शोभे, राघव कौशल्या ओछंग।

—भालण—श्री रामचरित्र

उत्प्रेक्षा

गुजराती:—

१—चतुरां चालती रे जाणे वन त्राठी हरणी।

—नरसिंह मेहतो- श्रृंगार के पद—२३

२—सालुडानी कोर एणीपेर शोभे, जाणे गगनमां विजली चमके रे

—नरसिंह मेहेता—मोहनी स्वरुपनां

३—रुडुं रुप तेनुं कवि शुं वखाणे।
चाल्या कुंभकर्ण मेरुश्रृंग जाणे॥

—प्रेमानन्द

राजस्थानी:—

४—चातग मोर कोकिल बोलत मानो करवत नख-सिख सारे।
तथा-रितु वसन्त मोरे द्रुम-सवहीं मानो इसे भुवगम कारे।

—स्वामी गरीबदास जी—ग० की वाणी

५—आली सांवरो की दृष्टि-मानूं प्रेम री कटारी रे।

—मीरां की पदावली—१७४

रूपक

गुजराती:—

गुजराती भक्त कवियों की रचनाओं में रूपक के प्रयोग विशेष मिलते हैं।

१—भवतणुं नाव ते भक्ति भूधर तणी तेह हुं प्रीछवुं स्नेह आणी ।

—नरसिंह मेहता-सुदामा चरित्र

२—करुणा कटाक्षी कमल नयनी, कमजूभ कन्याय,
वेदकर्म जटा उपनिषद् धर्मशास्त्र ने न्याय ।

प्रेमानन्द—ओखाहरण

३—चरणकमल युगल अतिसार जेनी लक्ष्मी सेवा करे निर्धार ।

—नरहरि । तथा

मृगदतिलक साहे अतिभाल कमलनयन मुख प्रेमरसाल ।

—नरहरि ।

४—पवन वहाला तणां रे एवा जीवतणां रसरुप ।
जेणे भ्रममोरींग उतरे एवा सबीज सतरुप ।

—अखा-अखानी वाणी-पद-४

राजस्थानी:—

राजस्थानी भक्त कवियों में मीरां ने भी रूपक के प्रयोग अधिक किये हैं।

५—रनील घूंघरा वांध तोस निरता करां ।

—मीरां की पदावली-१८३

६—अवलोकत वारिज वदन, विवस भई तन में ।

—मीरां, वही-१८४

७—चन्दनवदनि मृगलोचनी हो, कहत सकल संसार ।

—स्वामी सुन्दरदास

८—मुझे विरह कसाई आई लागा मारने ।

—स्वामी सुन्दरदास

६—जब जब सुरति आवती मन में तब तब विरह अनल परजारे ...

=स्वामी गरीबदासजी

सारांश यह कि गुजराती एवं राजस्थानी कवियो ने प्रमुख रूप से उपरोक्त अलंकारों का प्रयोग किया है। गुजराती भक्त कवियों की रचनाओं में रूपक एवं उत्प्रेक्षा का प्रयोग अधिक सुन्दर हुआ है। इसके अतिरिक्त अनन्वय, दृष्टान्त, सन्देह आदि अलंकारों के प्रयोग भी इन कवियों के द्वारा हुए है।

रस

रस काव्य का प्रमुख तत्व है। प्रसंग एवं भावों के अनुकूल रस का प्रतिपादन काव्य को अधिक प्रभावात्मक बना देता है। भावों की रसयुक्त अभिव्यक्ति अधिक मर्मस्पर्शी होती है।

गुजराती एवं राजस्थान के भक्त-संत कवियों ने अपने काव्यों में विभिन्न रसों का प्रतिपादन किया है। हमारे आलोच्य विषय से सम्बन्धित कवियों की रचनाए मुख्यत: भक्ति एवं आध्यात्मिक विषय की है। सगुण-भक्तों ने कृष्ण तथा राम के रूप एवं गुणों का तथा उनकी लीलाओं का भक्ति भाव से वर्णन किया है। इनकी रचनाओं में वात्सल्य तथा शृंगार का सुन्दर निरूपण हुआ है। जब कि सत कवियों के काव्य में वियोग शृंगार तथा शांत रस का प्रतिपादन हुआ है। भगवान अथवा भक्त की चरित्र-कथा को लेकर लिखे गये आख्यान काव्यों में वात्सल्य एवं शृंगार के अतिरिक्त वीर, हास्य, रौद्र आदि रसों के प्रयोग भी हुए है। राजस्थान के भक्त-संत कवियों द्वारा प्रयुक्त विभिन्न रसों के कुछ उदाहरण यहां हम देखेगे।

वात्सल्य:—

वात्सल्य रस का स्थायी भाव स्नेह तथा उसका आलंबन बालक होता है। बालक की विभिन्न बाल-चेष्टाएं अर्थात् उसका खेलना उसकी चतुराई उसकी मीठी मीठी बोली उसका हठ करना, चलना, गिरना इत्यादि वात्सल्य रस के उद्दीपन मा जाते है। उसे झुलाना, गोद में लेना, चूमना, विलाप करना, उसके साथ खेलना, आह भरना इत्यादि अनुभाव हैं। हर्प, आवेग, मोह, चिन्ता, विपाद, उन्माद, गर्व इत्यादि संचारी है।

गुजराती:—

कौशल्या बालक राम का पालने मे सुलाती है और गाती जाती है—

१—एवा दशरथ ना बाल, लाल पारणे झुले,
श्याम स्वरूप देखने मारु मन फुले।
तैया हालो हालो मुखे हालरु कहे।

मैया ढलकती ढलकती ताणे दौरी,
शिव सनकादिक ने ब्रह्मादिक रहा हेरी।
खांते धावें खेलणी वली पडी रहे मूके,
ऐवा रमता राम नाम ध्यान सांज न चूके।

—भालण—श्री रामचरित्र

२—जसोदा अपने लाल को गोद में बैठाकर भोजन कराती है। खा खाकर बाल कृष्ण खेलने चले जाते है। यह देखकर मन में आनन्द होता है।

जसोदा जी ने खोले बैठा सुन्दर व्रजनो नाथ रे,
भोजन करतां मेहेते दीठा, जैंना जुठडा हाथ रे,
भोजन करी रमवा सवरया, जनुनीए मीडी बाथ रे।
आभ्रण सघलां एठां कीधां, अगे वलग्यो भात रे।
मुख केरा मरकलां जूवे, गोपी जननो साथ रे,
भणे नरसैंयो आनन्द वांध्यो, गोविन्दना गुण गात रे।

—नरसिंह मेहता—वन लीला।

राजस्थानीः—

जसोदा कृष्ण को प्रेम से जगाती है, ग्वाल बाल खेलने के लिए प्रतीक्षा कर रहे हैं। कृष्ण हाथ में माखन रोटी लेकर चले जाते हैं।

३—जागो वंसीवारे ललना, जागो मोरे प्यारे।
रजनी बीती भोर भयो है, घर घर खुले किंवारे।
गोपी दही मथत सुनियत है, कंगना के झनकारे,
उठो लालजी भोर भयो है सुर नर ठाड़े द्वारे।
ग्वाल बाल सब करेत कुलाहल जय जय सबद उचारे,
माखन रोटी हाथ में लीनी गउवन के रखवारे।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, सरण आया कूं तारे।

—मीरां की पदावली—१६५

शृंगार

शृंगार रस के दो पक्ष हैं। संयोग और विप्रलंभ अथवा वियोग। रति भाव अथवा प्रेम शृंगार का स्थायी भाव है नायक, नायिका आलंबन हैं। इनकी वेषभूषा, चेष्टाएं, चन्द्र, चांदनी, बसन्त, वाटिका आदि उद्दीपन हैं। कटाक्ष,

अश्रु, अनुराग पूर्ण दृष्टि आदि अनुभाव है तथा आवेग, मोह, चिन्ता, क्रीड़ा आदि सचारी है।

संयोग शृंगार

गुजराती—

गोपी और कृष्ण की प्रेम क्रीड़ा का वर्णन नरसिंह ने इस प्रकार किया है।

१—हुं रंगराती ने छुं मदमाती, शामलिया संग हींचुं रे,
कोडभर्यो अति कुंवर नंदनो, आलिंगन देइ सींचुरे।
हींडोले हिंचे मारो वहालो हींचंतां केलि कीजे रे,
घुमरडी घुमावे गोकुलपति लहावो लडसड लीजे रे।
अलइने अलवेशर साथे, विलसत जमना मानुं रे,
लेहेरी लेतां अंग समागम, अधर पान कीधुं छानुं रे,
हींडोले हुलरावुं तमने हेते करी ने गाऊं रे,
नरसैंया ना स्वामी संगे रमतां, कानजी कंठे विटाऊंरे।

—नरसिंह मेहता—शृंगारना पद—३१

२—राधा सिर पर मही भरी मटकी लेकर जा रही है तब मार्ग मे कृष्ण उसे रोक लेते है प्रसंग का वर्णन प्रेमानन्द ने इस प्रकार किया है।

मूक्या पिडारिया प्रेरी राधा ने लीधी घेरी,
हृदेमा रोश आणी बोल्या पछे चक्रपाणी।
जाए क्यम दाण लोपी, भली आवी छे गोपी,
दाणनी रीत मांगे, गोप ने लाज लागे।
खलके वेण काली, घूलारी धाबला वाली,
महीनां माट माथे, सोनेरी चूडो हाथे।
हींडे छे के धोली, कसमस थाये चोली,
लटके नाके मोती, मरकलडे जाय जोती।
फेरवे की की काली, मोहो माहें देती ताली,
मन मां गाल देती, मुखे कई जाय कहेती।
पोताना गुण ने गाती, महियारी मदमाती,
छेंडो न आठे शीशे, जोवन नुं जोर दीशे।

—प्रेमानन्द दानलीला

राजस्थानी:—

कृष्ण के रस युक्त सौन्दर्य का वर्णन कृष्ण दास ने इस प्रकार किया है। पद की रचना ब्रज भाषा में है।

१—आवत लाल गोवर्धन धारी,
आलस नैन सरस रस रंगित प्रिया प्रेम नूतन अनुहारी,
विलुलित माल मरगजी उर पर सुरति समर की लगी पराग,
चूंबत स्याम अधर रस गावत, सुरति चाव सुख भैरव राग,
पलटि परे पट नील सखी के रस में झीलत मदन तड़ाग।
वृन्दावन वीथित अवलोकत कृष्णदास लोचन बड़भाग।

—कृष्णदास।

२—कृष्ण गोपियों के साथ होली खेल रहे हैं। मुरली, चंग आदि बाजे बज रहे हैं। केसर चन्दन और गुलाल एक दूसरे पर छिटक रहे हैं। चारों तरफ रस और रंग छा गया है। मीरां इस प्रसंग का वर्णन अपने पद में करती है।

होरी खेलत है गिरधारी।
मुरली चंग बजत डफ न्यारो, संग जुवति ब्रजनारी।
चदन केसर छिरकत मोहन, अपने हाथ बिहारी।
भरि भरि मूठि गुलाल लाल चहूं देत सबन पै डारी।
छैल छबीले नवल कान्ह संग स्यामा प्राण पियारी।
गावत चार धमार राग तह, दै दै कल करतारी।
फागु जू खेलत रसिक सांवरो, बाढ्यो रस ब्रजनारी।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, मोहन लाल बिहारी॥

—मीरां की पदावली—१७४

वियोग शृंगार

गुजराती:—

वर्षा के बादल छा गये लेकिन गोपी के प्रिय कृष्ण अभी तक नहीं आये। बादलों का गर्जन, चपला की चमक, दादुर, मोर पपीहे का शोर विरहिणी के हृदय को भयभीत करते हैं। ऐसे अवसर पर प्रिय कृष्ण का न आना गोपी को अति दुख-दायी लगता है। नरसिंह ने उनके विरह का वर्णन इस प्रकार किया है।

१—ओ दिसे सखी मेहूलो आवे, नाव्या मारा नाथ विदेशी रे
अनंग आहेडीए धनुष्य चढाव्युं, अमे अबलानी पैंर के शीरे ।
घन अति गाजे ने वीज झबूके, मेहूलीए झड मांडी रे,
नगणानाथ ने शुं कहीए मारी वेन, आणे अवसरे छांडी रे ।
आमे दिन दोहेल डानी गम, दाद्दूर मोर बीतरावे रे ।
विरहणियो वाहे जेम चात्रक, सतां साल जगावे रे ।
आणी पैरें जेणे हरि ना भज्या रे, ते नर पशुडां कहीए रे ।
नरसैंया ना स्वामी बिना दहाडा, देवने लेखे लहीए रे ।

—नरसिंह मेहता—श्रृंगार पद-३३

२—नलाख्यान में किये गये दमयन्ति की वियोगावस्था के वर्णन से प्रेमानन्द की अद्भुत कवित्व शक्ति का परिचय हमें मिलता है। नल राजा के वियोग में दमयन्ति निशदिन अश्रु बहाया करती है। वर्षा ऋतु उसकी विरह वेदना को और भी तीव्र बना देती है।

एवे आवी ऋतु वर्षानी, बैंदर भी विरह वधारण रे,
गाजे मेह उधरडे देह, सखी आपे हैया धारण रे।
विनता हींडे वाडी वांहे, द्रुम लताने तले रे,
सुगंध संघाते बिन्दु शीतल, गोरी उपर गले रे ।
कोकिला पपैया बोले ते शब्द भेदे अंग रे,
विरहिणी ते बीजली जाणे, भेदे हृदया संग रे ।
वर्षा काले विजोग पीडे, मानिनी ने मन भालो रे ।

—प्रेमानन्द—नलाख्यान

राजस्थानीः—

श्याम के विरह में मीरां अति व्याकुल हो रही है। प्रिय से मिलने की उक्त अभिलाषा मन को व्यथित कर रही है। विरहानल में निशदिन जल रही है। मीरां के वियोग की बहुत मार्मिक अभिव्यक्ति इस पद में हुई है।

१—स्याम मिलण रे काज सखी, उर आरति जागी।
तलफ तलफ कल ना पड़ां विरहानल लागी ॥
निसदिन पंथ निहारां पिवरो, पलकना पलभर लागी।
पीव पीव म्हाँ रटां रैण दिन लोक लाज कुल त्यागी।
विरह भवंगम डस्यां कलेजा मां लहर हलाहल जागी।
मीरां व्याकुल अति अकुलाणा स्याम उमंगा लागी ।।

—मीरांबाई की पदावली—६१

२—श्याम के दर्शन विना मीरां से अव रहा नहीं जाता, और नहीं अपनी व्यथा किसी के आगे कह सकती है, विरह मे व्याकुल मीरां को न भूख लगती है न नींद आती है। जनम जनम की दासी मीरां प्रिय के दर्शन की प्यासी है।

प्यारे दरसण दीयो आय थें विण रह्या वण जाय ॥
जल विण कंवल चन्द विण रजनी. थें विणा जीवन जाय।
आकुल व्याकुल रैण विहावा, विरह कलेजो खाय।
दिवस ना भूख न निदरा रेणो, मुख सू कह्या न जाय।
कोण सुणे कासूं कहियारी, मिल पिव तपन वुझाय ॥
क्यूं तरसावां अंतर जामी, आय मिलो दुख जाय।
मीरां दासी जनम जनम री, थारो नेह लगाय ॥

—मीरां—वही—१०१

संत कवियों की विरह व्यथा का वर्णन

राजस्थान के संत कवि दादू, सुन्दरदास, गरीबदास, आदि कवियों के पदों में, काव्य में भी विरह व्यथा का बड़ा अन्तर स्पर्शीचित्रण हुआ है।

१—दादू विरह वियोग न सहि सकों, मोपै रह्या न जाइ।
कोइ कहै मेरे पीव कों, दरस दिखावे आइ ॥
दादू प्रीतम के पग पसरिये, मुख देखण का चाव।
तहाँ ले शीस नवाइये, जहाँ धरे थे पाव ॥
प्रीति जु मेरे पीव की, पैठी पिंजर मांहि।
रोम-रोम पिव पिव करे, दादू दूसर नांहि ॥

—दादू—वाणी।

२—प्रकटहु सकल लोक के राइ।
पतितपावन प्रभु भगत बछल हो, तौ यहु तृष्णा जाइ ॥
दरसन विना दुखी अति विरहणि, निमिष बंधे नहिं धीर।
तेजपुंज परस करीजे, यों मेटहुं या पीर ॥

—गरीबदास—वानी

३—प्राणपति न आये हो, विरहिण अति बेहाल।
विन देखे अव जीव जातु हैं, विलम न कीजे लाल ॥
विरहिण व्याकुल केसवा, निस दिन दुखी विहाइ।
जैसे चन्द कुमोदिनी विन, देखे कुमिलाइ ॥

खिन खिन दुखिया दगधिये, बिरह-बिथातन पीर ।
घरी पलक मे बिनसिये, ज्यूं मछरी बिन नीर ॥

—रज्जब जी ।

४—माइ हो, हरि दरसन की आस ।
कब देखों मेरा प्राण-सनेही, नैन मरत दोऊ प्यास ।
पल छिन आध घरी नहिं बिसरों सुमिरत सास उसास ।
घर बाहरि मोहि कल न परत है, निसदिन रहत उदास ।।
यहै सोच सोचत मोहि सजनी, सूके रगत रु मास ।
सुन्दर बिरहिन कैसे जीवे, बिरह बिथा तन त्रास ॥

—सुन्दरदास

इसके अतिरिक्त आख्यान काव्यो मे तथा चरित्र काव्यो मे वीर रौद्र करुण आदि रसो के वर्णन भी प्राप्त होते है किन्तु भक्त एवं संत काव्य के अन्तर्गत वात्सल्य तथा शृंगार के ही विशेष वर्णन हुए है । इस लिये उन्ही के दृष्टात हमने यहाँ लिये है । यद्यपि मध्यकालीन भक्त-संत कवियों का उद्‌देश्य केवल भक्ति की अनुभूति की अभिव्यक्ति देना ही रहा है तथापि काव्य कला की दृष्टि से उनके द्वारा उत्कृष्ट कोटि के समर्थ काव्य की रचना हुई है इसमे कोई सदेह नही ।

उपसंहार

राजस्थान एवं गुजरात के संत-भक्त कवियों के जीवन तथा काव्य-साहित्य के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि इनमें बाह्य रूप से प्रादेशिक भिन्नता है किन्तु आन्तरिक रूप से दोनों एकता के सूत्र में बंधे हुए हैं। राजकीय दृष्टि से भी शासन व्यवस्था के अन्तर्गत वर्तमान गुजरात एवं राजस्थान के सीमा-प्रदेश प्राचीन काल में एक दूसरे से सम्बन्धित रहे हैं। १५ वीं शताब्दी के पूर्व भाषा भी दोनों प्रदेशों की एक ही थी। प्राचीन राजस्थानी एव जूनी गुजराती दोनों में एक-रूपता थी। भेद केवल नाम का ही था। इन दोनों प्रदेशों में सांस्कृतिक एकता बनाये रखने एवं दृढ करने का श्रेय यहाँ के संत-भक्त कवियों को है।

सामान्यतः सगुण एवं निर्गुण भक्ति का विकास दोनों प्रदेशों में १५ वीं शताब्दी से प्रारम्भ हो चुका था, किन्तु विचार करने पर यह ज्ञात होता है कि गुजरात में वैष्णव-भक्ति का प्रसार १५ वीं शताब्दी के अन्तर्गत राजस्थान की तुलना में अधिक हुआ है। उसी काल में राजस्थान में संत-मत अर्थात् निर्गुण भक्ति का प्रसार गुजरात की तुलना में अधिक हुआ है। राजस्थान में वैष्णव भक्ति का प्रभाव १७ वीं शताब्दी और उसके पश्चात् क्रमशः बढ़ता हुआ दृष्टि गोचर होता है। इसके विपरीत गुजरात में संत-मत का प्रभाव १७ वीं शताब्दी से क्रमशः बढ़ता गया है।

इन दोनों प्रदेशों के मध्यकालीन भक्त-समुदाय के बीच मीरां का स्थान केन्द्र बिन्दु के रूप में रहा है। राजस्थानी साहित्य में मीरां का जो स्थान है वही स्थान उसे गुजराती साहित्य में भी प्राप्त हुआ है। मीरां मूलतः राजस्थान की होने के कारण हमने उसे राजस्थानी कवियों के साथ लिया है तथा उसके राजस्थानी में लिखे काव्य साहित्य पर ही विचार किया है। किन्तु मीरां के गुजराती में लिखे पद भी भाव एवं कला की दृष्टि से उतने ही सुन्दर है जितने राजस्थानी के पद। मीरां के गुजराती में लिखे पदों के कुछ उदाहरण हम यहाँ देखेंगे।

कृष्ण गोकुल को छोड़ कर मथुरा चले गये। इधर गोपियां उनके विरह में आकुल-व्याकुल हो रहीं हैं। गोपियों को इस बात का दुःख है कि कृष्ण ने वापस

लौटने का अपना वचन निभाया नहीं। वे वहीं कुब्जा के स्नेह मे बद्ध होकर गोकुल को भूल गये। मीरां ने इस भाव को अपनी गुजराती रचना में इस प्रकार पद्य-बद्ध किया है।

१—नारे आव्या ब्रज फरीने. ओधव जी वालो नारे—
आव्या ब्रजमां फरीने।
आठ दिवस नी अवध करीने नारे जोयुं ब्रजमां फरीने।
कुब्जा ने साथे स्नेहे करीने, वाला रहिया त्यां ठरीने।
वाई मीरां के प्रभु गिरधरना गुण, चित्त म्हारां लीन्हा हरी ने।

—मीरां—वृहद–पद–संग्रह १५८

उपरोक्त पद में अन्तिम पंक्ति में "के" का प्रयोग हिन्दी ब्रज भाषा का प्रभाव लक्षित करता है।

२—मुरली की तान ने गोपी के हृदय को बाण की तरह वेध दिया है। वृन्दावन के मार्ग में अथवा जमुना के तीर पर जहाँ भी वह जाती हैं, कृष्ण उसकी राह रोके खड़े हैं। कृष्ण-गोपी-की प्रेम-लीला का वर्णन मीरां के गुजराती पद में देखें।

मार्या छे मोहन वाण वाली डे मार्या छे मोहन वाण।
तमारी मोरलीए मारां मनडां विधायां विधायां तन-मन-प्राण॥
वृन्दावन ने मारग जातां, हां रे मारो पालवडो मा ताण।
जल जमना जल भरवा गयातां, कांठले उभो पेलो काड़।
मीरांवाई के प्रभु गिरधर नागुण, चरण कमल चित्त आण॥

—मीरां-वृहद-पद-संग्रह—५३१

मीरां अपने जीवन के उत्तर काल में द्वारिका में आकर रही थी किन्तु उसके जीवन का अधिकांश समय मेवाड़ तथा वृन्दावन में व्यतीत हुआ था, इसलिये उसके गुजराती पदों में राजस्थानी अथवा ब्रज भाषा के शब्दों का प्रयोग होना स्वाभाविक ही है। मीरा की भाँति राजस्थान के कवियों में से दादू और ईसर दास ने भी अपनी रचनाओं में गुजराती का प्रयोग किया है। इन दोनों कवियों का भी गुजरात से निकट सम्बन्ध रहा है। दादू दयाल का गुजराती मे रचित एक पद इस प्रकार है।

वहाला हूं जाणुं जे रंगभरि रमिये, मारो नाथ निमिश नहीं मेलूं रे।
अंतरजामी नाह न आवे ते दिन आव्यो छेलो रे।

वाहला सेज अमारी एकलड़ी रे, तहँ तुमने केम पामुं रे।
आ दत्त अमारो पूरबलो रे ते आव्यो सामो रे॥
वहाला मारा हृदया लीतर केम न आवे, मने चरण विलंब न दीजे रे।
दादू तो अपराधी तारो, नाव उधारी लीजे॥

—दादू-संत सुधासार—पृष्ठ—४३४

गुजराती संत-भक्त कवियों में से कइयों ने हिन्दी अथवा व्रज भाषा में काव्य रचना की है। इनमें से भालण, मुकुंद, अखा, प्राणनाथ तथा आनन्द घन प्रमुख हैं। इन गुजराती कवियों द्वारा रचित हिन्दी पदों के कतिपय दृष्टांत हम यहाँ देखेंगे। भालण के व्रज भाषा में रचित पद का एक उदाहरण यहाँ दिया है :—

कौन तप कीनो री माई नंदराणी कौन,
ले उछंग हरिकुं पय पावत मुख चुम्बन मुख भीनोरी।
तृप्त भये मोहन ज्युं हसत है तब उमगत अधरहू कीनोरी।
जसोमती लटपट पूंछत लागी वदन खेंचित वलिनोरी,
रिजे लगाय बरजु मोहि तुं कुलदेवा दीनोरी।
सुन्दरता अंग अंग कए बरनु तेज ही सब जग हीनोरी।
अंतरिख सुर इन्द्रादिक बोलत बृजजन को दुख खीनोरी॥
छह रस सिन्धु गान करी गाहत भालण जन मन भीनोरी॥[1]

—भालण—

गुजराती कवि मुकुंद गुगली ने भी गुजराती के साथ-साथ हिन्दी में भी काव्य रचना की है। दृष्टांत स्वरूप उसका एक हिन्दी कवित यहाँ दिया है:—

करम के माहों नांही, सांच [illegible] केसे सांइ।
पूत आयो हस्त में सो मोक्ष में गड्यो है,
खाने को धमर्यो है पास, लिख्यो नहि तो न पोचे।
आस खास सन्त कहे, आयो हाथ पड्यो है।
प्रारब्ध के पेच बड़े मेरे तेरे मांही लड़े।
कर्म ही के कूप नीक से न कड्यो है,
आनंद सोहो निकंद दुःख को मिले ही दंद।
कर्म मन्द से मुकुंद, सच्चो सो ही खड्यो है।[2]

—मुकुंद गुगली

१—गुजराती कवियों ये साहित्यमां आपेलो फालो—डॉ० पी० दोई पृ०-५
२—श्री के० का० शास्त्री के कवि चरित में से उद्धृत पृ०—६२७

ज्ञानी कवि अखा ने हिन्दी में अनेक पद लिखे हैं।

प्रगट नाथ बूझत घट घट की भरत घर घर शिर पर की।
बाहर भीतर सब जग व्यापक, जा बिन् एक पांत रहे अटकी ।।
ज्यां प्रभु के ढिग श्रीधर शकर, शेष खडा जेसे छोटी सी बटकी।
जाके हुकम से जगत होत पुनि, वाकी रहत नहिं फूटीसी मटकी।
सो प्रभु कबहु न पुतलीसा होवे लालच में क्यों अकल गई फटकी।
सो सच्चिदानन्द ब्रह्म लहे बिन, मूढ़ जरत भवभव में भटकी ।।

—अखा-अखानीवाणी पृ०—४०४

भाषा में मुख्य स्वरूप व्रज भाषा का है किन्तु बटकी, हुक्म, फटकी आदि शब्दों के प्रयोग से भाषा का स्वरूप मिश्रित बन गया है। गुजराती कवि आनन्द घन जी ने हिन्दी गुजराती दोनों भाषाओं में पद-रचना की है। उनके हिन्दी पद का एक दृष्टान्त यहां दिया है:—

अब मेरे पति गति देग निरंजन।
भटकूं कहाँ कहाँ सिर पटकूं, कहा करूं जन रंजन ।।
खंजन दगन दगन लगावुं—चाहूं न चितवन अंजन।
सज्जन पर अन्तर परमातम-सकल-दुरित भयभंजन ।।[1]

—स्वामी सुन्दरदास

सारांश यह है कि राजस्थान एव गुजरात के इन संत-भक्त कवियों ने अपने काव्य में दोनों भाषाओं का प्रयोग करके पारस्परिक एकता को और भी दृढ किया है तथा कवित्व शक्ति के साथ-साथ अपने व्यापक दृष्टि कोण का परिचय दिया है। मध्यकाल में संत-साधु अपना अधिकांश समय यात्रा-पर्यटन मे व्यतीत करते थे। राजस्थान, गुजरात के सत भक्तों का दोनों प्रदेशों में परस्पर आवागमन एवं सत्संग होता रहा है। इसके कारण भी भाषागत एव सास्कृतिक एकता को विशेष बल मिला है। दोनों प्रदेशों के संत-भक्तों कवियों के काव्य साहित्य के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि उनमें ईश्वर-प्रेम और भक्ति की उत्कटता तथा तन्मयता के साथ-साथ उच्चकोटि के आध्यात्मिक विचार तथा जीवन का व्यापक और गहन अनुभव भी है।

१—आनन्द घन पद संग्रह—अध्यात्मक सारक मंडल बम्बई—पृ०२५६-२५७

— ग्रन्थानुक्रमणिका —

हिन्दी—

१. उत्तरी भारत की संत परम्परा—सम्पादक परशुराम चतुर्वेदी
प्रकाशक—भारती भंडार, प्रयाग सं० २००८

२. ओझा निबंध संग्रह—ले० गौरीशंकर ही० ओझा

३. कबीर ग्रंथावली—सं० श्यामसुन्दर दास

४. गुजराती और व्रजभाषा कृष्ण काव्य का
तुलनात्मक अध्ययन—लेखक डॉ० जगदीश गुप्त, प्र० हिन्दी परिषद्,
विश्व विद्यालय, प्रयाग—१९५७

५. दादू सम्प्रदाय का संक्षिप्त परिचय—लेखक स्वामी मंगलदास जी

६. निर्गुण साहित्य सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि—लेखक डा० मोतीसिंह
नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सम्वत् २०१९

७. निजानन्द चरितामृत—लेखक कृष्णदत्त शास्त्री
प्रकाशक—सन्त सभा—नवतनपुरी—जामनगर

८. पुरानी हिन्दी—लेखक तेस्सी तोरी

९. पुरानी राजस्थानी—लेखक चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी'

१०. भागवत सम्प्रदाय—लेखक बलदेव उपाध्याय—प्रका० नागरी प्रचारिणी सभा,
काशी, सम्वत् २०१०

११. भारत की भाषाएं और भाषा सम्बन्धी समस्यायें—
लेखक–सुनीति कुमार चाटुर्ज्या

१२. भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी—लेखक सुनीति कुमार चाटुर्ज्या

१३. मध्ययुगीन वैष्णव संस्कृति और तुलसीदास—लेखक डा० रामरतन भटनागर,
प्रकाशक—हिन्दी साहित्य संसार—दिल्ली—६

१४. मध्यकालीन धर्म-साधना—लेखक डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी प्र०-साहित्य भवन
प्राइवेट लि० इलाहाबाद—१९५६

१५. मध्यकालीन हिन्दी कवयत्रियाँ—लेखिका सावित्री सिन्हा

१६. मीरांबाई की पदावली—संपादक परशुराम चतुर्वेदी–प्रकाशक साहित्य सम्मेलन प्रयाग—सम्वत् २०१३

१७. मीरां-बृहत-पद-संग्रह—ले०-पद्मावती शबनम–प्रकाशक लोक सेवक प्रकाशन, बुलानाला, बनारस। सम्वत् २०००

१८. राजस्थान का पिंगल साहित्य—डा० मोतीलाल मेनारिया—प्रकाशक—हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्राइवेट लि०, हीसबाग–गिरगांव बम्बई–४, द्वितीय संस्करण—१६५८

१९. राजस्थानी भाषा और साहित्य—लेखक पं० मोतीलाल मेनारिया—प्रकाशक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग सम्वत् २००८

२०. राजस्थानी भाषा और साहित्य—लेखक डा० हीरालाल माहेश्वरी प्रकाशक—आधुनिक पुस्तक भवन, कलाकार स्ट्रीट, कलकत्ता—७। १६६०

२१. राधा वल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य—लेखक विजयेन्द्र स्नातक। प्रकाशक—नेशनल पब्लीकेशन हाउस, दिल्ली—२०१४

२२ राजपूताने का इतिहास—लेखक जगदीशसिंह गहलौत।

२३. राजस्थानी भाषा—श्री सुनीति कुमार चाटुर्ज्या।

२४. राजस्थानी भाषा और साहित्य—लेखक डा० सरनामसिंह।

२५. राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रथों की खोज—लेखक अमरचंद नहाटा

२६. राजस्थान साहित्य परम्परा और प्रगति—लेखक डा० सरनामसिंह।

२७. रामचरित मानस—लेखक तुलसीदास।

२८. श्री शंकराचार्य—लेखक श्री राज राज वर्मा

६. सन्त दर्शन—लेखक डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित प्रकाशक—साहित्य निकेतन, कानपुर—१६५३

३०. सन्तमत में साधना का स्वरूप—ले० प्रतापसिंह चौहाण— प्रका०-प्रत्युष-प्रकाशन रामबाग; कानपुर—१६६१

३१. सिद्ध साहित्य—ले० डा० धर्मवीर भारती प्रका० किताब महल, इलाहाबाद—१६५५

३२. सुन्दर ग्रन्थावली—खंड—१—२। संपा० पुरोहित हरिनारायण

३३. सूरदास—ले०—पंडित रामचन्द शुक्ल

३४. संत-काव्य—संपा० परशुराम चतुर्वेदी—प्रका० किताब महल
इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण—१६६१

३५. सत-सुधा-सार—संपा० वियोगी हरि—
प्रका० सस्ता साहित्य मंडल; नई दिल्ली—१६५३

३६. श्री हरि पुरुष जी की वाणी—ले०—साधु देवदास

३७. हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं का वैज्ञानिक इतिहास—
ले०– श्री शमशेरसिंह नरुला।

३८. हिन्दी काव्य की भक्ति कालीन प्रवृत्तियां और उनके मूल स्रोत
ले०—सायदेव चतुर्वेदी—प्रका० हिन्दी साहित्य-
सृजन—परिषद्, चौक, जौनपुर (उत्तर प्रदेश)

३६. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय—डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल।
प्रका० अवध पब्लिशिंग हाउस,
पानदरीबा, चाबाग, लखनऊ।

४०. हिन्दी को मराठी संतों की देन—ले०—श्री विनय मोहन शर्मा

४१. हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास। प्रथम भाग ले०—राजवली पांडे

४२. हिन्दी साहित्य—ले० ,जारी प्रसाद द्विवेदी।

४३. हिन्दी साहित्य का आदिकाल—ले० हजारीप्रसाद द्विवेदी।

४४. हिन्दी और मलयालम में कृष्ण—ले०—डा० के० भास्कर नायर।
प्रका०—राजपाल एन्ड सन्स,
दिल्ली—६। १६६०

४५. हिन्दी के मध्ययुगीन साहित्य पर बौद्ध धर्म का प्रभाव—
ले० श्रीमती सरलादेवी त्रिगुणायत।
प्रका० साहित्य निकेतन श्रद्धानन्द पार्क कानपुर—१६६३

४६. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—ले० डो० रामकुमार
प्रका० रामनारायण लाला बेनी माधव,
इलाहबाद--१६६४

४७. हिन्दी साहित्य का इतिहास—ले० रामचन्द शुक्ल।
प्रका०—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी–सवत-२०१२

गुजराती: —

४८. अखानी वाणी तथा मनहर पद—प्रका० सस्तुं साहित्य वर्धक कार्यालय
'ठे०—भद्र पासे—अमदावाद

४६. अखो (एक अध्ययन)— ले० उमाशंकर जोषी
प्रका० गुजराती वर्नाक्युलर सोसायटी-अमहमदावाद
इ०—सं०—१६४१

५०. श्री आनन्दघनजी कृत चोवीशी—प्रका० श्री जैन धर्म प्रणारक सभा
भावनगर।

५१. आनन्द घन संग्रह—प्रका०-श्री अध्यात्मज्ञान प्रसारक मंडण--मुंवइ

५२. आपणा कविओ—खंड-१ नरसिंह गुनी पहेल। ले०-केशवराम काशीराम शास्त्री
प्रका० गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी,
अमदावाद, भद्र-सं० १६४२

५३. आपणी संस्कृतिना केठलांक वहेणा—ले० शास्त्री दुर्गाशकर।

५४. इतिहासनी केडी—श्री भोगीलाल साडेसरा

५५. कवि चरित (भाग १-२) ले० अध्यापक केशवराम काशीराम शास्त्री,
प्रका० गुजरात विद्या सभा, भद्र, अहमदावाद १६५२

५६. कवि चरित (भाग—२)—ले० केशवराम काशीराम शास्त्री
प्रका० गुज० वर्नाक्युलर सो० अहमदावाद इ०सं०१६४६

५७. गुजरात ना भक्तो—ले० मा० श० राणा

५८ गुजराती भाषान्तर उत्क्रान्ति—ले० दोशी वेचरदास।

५६. गुजराती साहित्य नी रूपरेखा—ले० विजयराम वेद्य।

६०. गुजराती साहित्य नुं रेखा दर्शन। खंड १ ला - लेखक अध्या० केशवराम का०
शास्त्री। प्रकाशक—कुमुंदकुमार के० शास्त्री, मधुवन,एलिसब्रिज,
अहमदावाद-६, ऐलीटवुक सर्वस प्रेमामाह हाल पासे,
भद्र, अहमदाबाद इ० स० १६५१।

६१. गुजराती साहित्य—भाग-१ (मध्यकालीन) —लेखक अनन्तराय म० रावण।
प्रकाशक—मेकमिलन एन्ड कम्पनी, लिमिटेड,
२७६, होर्न्बीरोड, कोट, मुंवई। इ० सं० १६५४

६२. गुजरातीओ ऐ हिन्दी साहित्यनां आपेलो फालो—
लेखक--श्रीयुत डाह्याभाइ पीताम्वरदास देरासरी।
प्रका० गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी, श्री कांटारोड,
वेलामाइनी वाडी—अहमदावाद। इ० सं० १६३७

६३. गुजराती साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास—(प्राचीन साहित्य)
लें०—प्रो० ईश्वरलाल र० दवे—प्रका० खडायता बुकडिपो,
बालाहनुमान, अमदाबाद—१९५६

६४. गुजराती साहित्यनां स्वरुपो (मध्यकालीन ताना वर्तमान) पद्य-विभाग—
लें०—प्रो० मंजुलाल र० मजमुदार—प्रका० आचार्य बुकडिपो,
न्युबीग्री बाग सामे—वडोदरा—१९५४

६५. प्राचीन गुजराती छन्दो—लेखक रा० वी० पाठक।

६६. प्राचीन गुजराती व्रत रचना—लेखक भोगीलाल सांडेसरा।

६७. बृहद् काव्य दोहन—भाग १लो—संपादक—इच्छाराम सूर्यराम देसाई।
प्रका०-गुजराती प्रिन्टिंग प्रेस, सामुन, बिल्डिंगस,
सर्कल, कोट, मुंबई इ० सं० १९२५

६८. श्री भजन सागर। भाग १ तथा २—प्रका० सस्तुं साहित्य वर्धक कार्यालय,
ठे० भद्रपासे अमदावाद अने प्रिन्सेस स्ट्रीट मुंबई-२ सं० २०१४

६९. नालण उद्भव अने भीन—लेखक श्री रामलाल चुन्नीलाल मोदी।
प्रका०-गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी, अमदावाद।

७०. मध्यकाणना साहित्य प्रकारो—लेखक चन्द्रकान्त महेता।

७१. मध्ययुगनी साधना धारा—व्याख्याता आचार्य श्री क्षितिमोहन सेन।
प्रका० गुज० विद्यासभा, भद्र अमदावाद-१९५६

७२. मीरांबाई—लेखक माणेकलाल मुतरीया

७३. मीरां दासी जनम जनम की—लें०-रेवाशंकर ओघड़ भाइ सोमपुरा
प्रकाशक—सस्तं साहित्य वर्धक कार्यालय,
ठे० भद्रपासे. अहमदाबाद, अने कालबादेवी रोड,
मुंबई--२। सम्वत् २००७

७४. मीरांबाई एक मनन—लेखक श्री मंजुलाल मजमुदार

७५. नरसिंह म्हेता—लें० क० पु० जोगीपुरा

७६. नरसिंह म्हेता कृत काव्य संग्रह—लेखक इच्छाराम सूर्यराम देसाई

७७. वैष्णवधर्मनो संक्षिप्त इतिहास—लेखक श्री दुर्गाशंकर केवणराम शास्त्री।
प्रका०—श्री फार्बस गुज० सभा मुंबई-१९३९

७८. शाक्त सम्प्रदाय, तेना सिद्धान्तो, गुजरातमां तेनते प्रचार, अने गुजराती
साहित्य उपर असर—लें० श्री दि० ब० नर्मदाशंकर देवशंकर महेता।
प्रका०—श्री फार्बस गुजराती सभा—मुंबई। इ० सं० १९३२।

७९. शैवधर्मनो संक्षिप्त इतिहास—ले० रा० रा० दुर्गाशंकर केवलराम शास्त्री।
प्रका० श्री फार्बस गुज० सभा मुंबई। इ० सं० १९३६।

८०. सोरठी संतवाणी—सम्पादक—झवेरचन्द मेवाणी।
प्रका०--गूर्जर ग्रन्थरत्न कार्यालय, गाँधी रस्तो, अहमदाबाद—१९४७।

अँग्रेजी:—

८१. एनाल्स एण्ड एण्टीक्वीटीक आफ राजस्थान—कर्नल टाड।
८२. धी अर्ली हिस्ट्री आफ धी वैष्णव सेक्ट—ले० डा० एच० राय चौधरी।
८३. आस्पेक्ट्स आफ अरली विष्णु इसम—ले० जे० जोन्डा।
८४. एन आउटलाइन आफ धी रिलीजियस आफ इण्डिया—ले० फाकनर।
८५. क्लासिकल पोएट्स औफ गुजरात—ले० जी० एम० त्रिपाठी।
८६. गुजरात एण्ड इट्स लीटरेचर्स—के० एम० मुन्शी।
८७. भक्तिकल्ट इन एसियन्ट इण्डिया—ले० श्री बी० के० गोस्वामी।
८८. मीडियेवल इण्डिया—लेखक ईश्वरप्रसाद।
८९. हिस्ट्री आफ इण्डियन फिलोसोफी। भाग ७—लेखक श्री रानाडे।
९०. मीस्टीसीझम इन महाराष्ट्र—लेखक श्री आर० डी० रानाडे।
९१. हिस्ट्री औफ इण्डिया—लेखक—इलियहा।
९२. हिस्ट्री औफ गुजरात—लेखक—कमरनियट।

पत्र-पत्रिकाएँ:—

९३. कल्याण—संत वाणी अंक—लेखक साधु नारायणदास जी।
९४. नागरि प्रचारिणी पत्रिका।
९५. सम्मेलन पत्रिका—लोक संस्कृत अंक। सम्वत् २०१०
९६. साहित्य सन्देश—सन्त साहित्य विशेषाक।